ब्रजमाधुरीसार की टीका

सदानन्द मिश्र 'सा

श्री [illegible]

आलोचना सहित)

भूमिका लेखक

व्रजभाषा-साहित्य के मर्मज्ञ

डा० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' एम० ए०, डी० लि०

[प्रोफेसर—इलाहाबाद यूनिवर्सिटी]

टीकाकार

सदानन्द मिश्र 'साहित्[illegible]'

कृष्णकला-पुस्तक-माला * इलाहाबाद

प्रकाशक
भवानीप्रसाद गुप्त
अध्यक्ष, कृष्णकला-पुस्तक-माला
इलाहाबाद

द्वितीय संस्करण—संवत्

द्वितीय संस्करण

'ब्रजमाधुरीसार की टीका' का यह द्वितीय संस्करण है। इस टीका की प्रशंसा अनेक विद्वानों ने की, अनेक परीक्षार्थियों ने अपने पत्रों द्वारा संतोष प्रकट किया। कुछ ही महीनों में प्रथम संस्करण की समाप्ति से भी इस टीका की उपयोगिता सिद्ध हुई है। मैं बड़ी प्रसन्नता से इसका नवीन संस्करण पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ।

—प्रकाशक

मुद्रक
जगतनारायण लाल, हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग

क्यों ?

पूज्यवर वियोगी हरि जी द्वारा सम्पादित 'व्रजमाधुरीसार' हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की मध्यमा (विशारद) परीक्षा में कई वर्षों से पाठ्य-ग्रन्थ स्वीकृत है। गत वर्ष से यह ग्रन्थ पटना विश्व-विद्यालय की बी० ए० परीक्षा में भी रख दिया गया है। इन दोनो परीक्षाओं के पाठ्य-क्रम में 'व्रजमाधुरीसार' के जिन कवियो की कविताएँ रक्खी गयी हैं, वे प्रायः इतनी क्लिष्ट हैं कि पाद-टिप्पणी में दिये गये शब्दार्थ मात्र से उनका भावार्थ स्पष्ट नही होता। देखने में आया है कि अधिकांश परीक्षार्थी व्रजमाधुरीसार का अधूरा अध्ययन करके ही परीक्षा में प्रविष्ट हो जाया करते हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि आन्ध्रदेशीय छात्रों को इस ग्रन्थ के अध्ययन में विशेष कठिनाई होती है। परीक्षार्थियो की इस असुविधा को देखकर मैंने इस की टीका लिखने का प्रयत्न किया है।

टीका लिखने का कार्य आरम्भ करने के कुछ दिन पश्चात् 'कृष्णकला पुस्तक माला' के व्यवस्थापक बाबू भवानीप्रसाद गुप्त से इसके प्रकाशन के बारे में वार्ता हुई। उन्होंने इसे शीघ्र ही लिख डालने की प्रेरणा दी। पुस्तक के शीघ्र प्रकाशित करने के विचार से उन्होंने यह भी कहा कि एक-एक कवि की टीका लिखकर मुझे देते जाइए, मैं उसे छपाता चलूँ। इस प्रकार पुस्तक की लिखाई और छपाई का कार्य साथ-साथ आरम्भ हुआ।

इस पुस्तक में मैंने मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत श्री सूरदास श्री नन्ददास, रसखानि, आनन्दघन, बिहारी, देव, हरिश्चन्द्र, जगन्नाथदास 'रत्नाकर' और सत्यनारायण के काव्य की टीका की है। प्रत्येक कवि की कविताओ की टीका करने के पूर्व उसके काव्य की पृष्ठभूमि, वर्ण्य विषय, समीक्षा, भाषा और शैली पर प्रकाश डाला है। श्री सूरदास और श्री नन्ददास की

आलोचना में भ्रमरगीत और रासपचाध्यायी जैसे आवश्यक प्रसंगो का उल्लेख कर दिया गया है। टीका करते समय मैंने उन शब्दों का अर्थ नहीं दिया है जिनका उल्लेख मूल पुस्तक की पाद-टिप्पणी में किया गया है। भावार्थ के साथ-साथ आवश्यक सन्दर्भ और टिप्पणी भी दे दी गयी है। अर्थ लिखते समय मूल के भावों को पूर्णतया सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है। ब्रज-भाषा साहित्य की आवश्यक जानकारी कराने के लिये पुस्तक के आरम्भ में 'ब्रजभाषा काव्य-परम्परा' नामक एक संक्षिप्त लेख भी दे दिया गया है। सारांश यह कि जहाँ तक हो सका है, इस टीका को अधिकाधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है। मेरा यह प्रयत्न कहाँ तक सफल हुआ है, यह पाठकों के निर्णय पर निर्भर है। पाठकों और शिक्षकों से निवेदन है कि यदि किसी स्थल पर भ्रान्ति रह गयी हो तो उसे सूचित करने की कृपा करें। मैं एतदर्थ उनका अनुगृहीत होऊँगा और अगले संस्करण में संशोधन कर दूँगा।

ब्रजभाषा के प्रकाण्ड विद्वान आचार्य डा० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' जी ने कृपा करके इसकी भूमिका लिख दी है, एतदर्थ उनका आभार मानता हूँ। मेरे जिन सहृदय मित्रों ने इस टीका के लिखने में उत्साह दिलाया है उन्हें मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। अंत में, कृष्णकला पुस्तक माला के अध्यक्ष बाबू भवानीप्रसाद गुप्त को धन्यवाद देता हूँ जिनके शुभ प्रयत्न से यह टीका प्रकाश में आयी।

प्रयाग
जन्माष्टमी, २००५

विद्वज्जन कृपाकांक्षी
सदानन्द मिश्र

भूमिका

हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग वस्तुतः वह काल है जिसमें महात्मा सूरदास और नंददास आदि अष्टछाप के कवि एक ओर और महात्मा तुलसीदास दूसरी ओर अपनी अमर रचनायें कर रहे थे। गोस्वामी जी ने उस अवधी भाषा को जिसे जायसी ने काव्य क क्षेत्र मे लाकर साहित्यिक भाषा बनाने का प्रयत्न किया था और पूर्णतया सफल न हो सके थें काव्योचित ढंग से परिष्कृत और परिमार्जित करते हुए काव्य भाषा बनाने मे पूर्ण सफलता प्राप्त की। यह भाषा साहित्यिक भाषा तो हो ही गई किन्तु भगवान राम की मंगलकारिणी कथा के संपर्क से परम पवित्र और भाग्यशालिनी भी हो गई। रामचरित्र के लिये अवधी भाषा का आश्रय लेना अनिवार्य था क्योंकि यही भाषा उनके लीलाधाम और जन्मभूमि की भाषा थी किन्तु गोस्वामी जी की अद्वितीय प्रतिभा और कुशल लेखनी के कारण यह भाषा उस उत्कृष्ट स्थान को पहुँच गई कि जिसके समक्ष काव्य-भाषा का स्थान कम कहा जा सकता है। अन्य कवियों का साहस इसलिये इस भाषा में फिर साधारण काव्य रचना करने के लिये न हो सका।

महात्मा सूरदास ने कृष्ण काव्य के लिये स्वामी वल्लभाचार्य के प्रभाव से व्रजभाषा को उठाया क्योंकि ब्रजभाषा भगवान कृष्ण की लीलाभूमि अर्थात् व्रजभूमि की भाषा थी। संभवतः उनसे पूर्व इस भाषा का प्रयोग ऐसे उत्कृष्ट काव्य में अन्य किसी सत् कवि ने न किया था। इसीलिये सूरदास जी को व्रजभाषा और उसके कृष्ण-काव्य का प्रथम महाकवि कहा जाता है। यह विचारणीय है कि सूरदास जी ने व्रजभाषा का उपयोग कृष्ण-काव्य जैसे उत्कृष्ट काव्य मे सबसे प्रथम किया और इतने सुन्दर रूप मे, जिसे देखकर यही कहा जा सकता है कि यह

भाषा कदाचित सूरदास से पूर्व परिष्कृत और परिमार्जित होकर काव्य-भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी किन्तु इसके लिये कोई सुदृढ़ प्रमाण नहीं है। ऐसी दशा में व्रजभाषा के ऐसे सत् प्रयोग के लिये सूरदास जी की जितनी भी सराहना की जाय थोड़ी है। जायसी ने भी ठीक इसी प्रकार जन साधारण की ठेठ अवधी का प्रयोग काव्य में कदाचित सबसे प्रथम किया था किन्तु उनको ऐसी सफलता नहीं मिली. यह भी एक कारण विशेष है जिससे जायसी आदि की अपेक्षा सूरदास जी को विशेष ऊँचा स्थान दिया जाता है और दिया भी जाना चाहिये। सूरदास जी के पश्चात् नन्ददास जी ने इसी व्रजभाषा को अपने काव्य में बड़े सौष्ठव और सौन्दर्य के साथ निखारा किन्तु सूरदास जी की व्रजभाषा में स्वाभाविकता की जो सुन्दरता है वह नंददास की व्रजभाषा में नहीं। नंददास की व्रजभाषा में कुशल कला-कौशल की कान्ति अवश्यमेव कलित है। इसका यह तात्पर्य भी नहीं कि सूरदास की भाषा में कलात्मक-कौशल का अभाव है, यह अवश्यमेव कहा जा सकता है कि कृत्रिमता जो साहित्यिक भाषा में अवश्य आ जाती है सूरदास की भाषा में विशेष नहीं। इन दोनों महाकवियों के साथ ही साथ अष्टछाप के और दूसरे सत्कवियों ने भी व्रजभाषा के द्वारा भगवान कृष्ण की ललित लीलाओं को काव्य के रुचिर रोचक रूप से अलङ्कृत कर व्यापक करने का प्रयत्न किया। यहाँ यह कहना भी अप्रासंगिक नहीं कि कृष्ण-काव्य राम-काव्य की अपेक्षा अधिक साहित्यिक सीमा के अन्दर आया है इसीलिये व्रजभाषा भी काव्य के लिये अधिक उपयोगी समझी जाकर समस्त उत्तर भारत में काव्य की एक मात्र सफल भाषा मानी गई और लगभग तीन सौ वर्षों तक अकेली काव्य-भाषा होकर युक्तप्रान्त से आगे पश्चिम में राजपूताना, पूर्व में विहार और

मिथिला तथा दक्षिण में महाराष्ट्र प्रान्त तक व्यापक रही। यद्यपि आधुनिक युग में इसका वैसा प्राबल्य और प्राधान्य नहीं जैसा खड़ी बोली का है किन्तु यह आज भी स्थायी सत् काव्य की सर्वथा समीचीन भाषा होती हुई जीवित है और अनेक कवियों की रुचिर रचनाओं मे रमती है।

वास्तव मे यदि ब्रजभाषा के साहित्य को हिन्दी साहित्य सदन से हटा दिया जाय तो उस सदन की मानो सभी श्री, धी और निधि निकल जायगी। वह एक साधारण सदन-सा दीन और दुर्बल रूप मे दीखेगा। हिन्दू हृदय, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू सभ्यता की सुरक्षा इसी साहित्य से है। हिन्दुत्व का प्राण इसी साहित्य में मिलता है। इसमें संदेह नहीं कि ब्रजभाषा और उसके काव्य की विशेषतायें ऐसी हैं जिनकी ओर भावुक हृदय बिना समाकृष्ट हुए रह नहीं सकता, इसमें भी संदेह नहीं कि ब्रजभाषा और उसकी काव्य-धारा नवीन युग के प्रवाह के साथ नई प्रगति से नहीं चल सकती क्योंकि वह एक विशेष प्रकार की प्रगति मे अभ्यस्त हो चुकी है, उसकी चिर-प्रचलित परम्परायें ऐसी बन चुकी हैं कि उनसे उसे पृथक कर देना उसी प्रकार है जैसे एक प्रौढ़ और वयोवृद्ध व्यक्ति को उसके चिर-संचित संस्कारों और सुदृढ़ स्वभावों से पृथक कर देना है। यह अवश्यमेव सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मे सामयिक परिवर्तन न्यूनाधिक रूप मे करता ही है, उसी प्रकार ब्रजभाषा में भी समय और समाज के प्रभाव से कुछ थोड़ा-सा परिवर्तन हुआ है और यह स्वाभाविक भी है। आधुनिक काल मे ब्रजभाषा का जो साहित्यिक स्वरूप ब्रजभाषा के कवियों और प्रेमियों मे प्रचलित है वह उस प्राचीन रूप से बहुत कुछ अलग सा है फिर भी ब्रजभाषा की प्रकृति वही बनी हुई है। चूँकि यह भाषा एक विस्तृत भू-भाग में कई शताब्दियों तक शतशः कविवरों के द्वारा व्यवहृत

होती आई है और यह सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि बड़े-बड़े परिवर्तनों के नर्तनों में साथ रही है इसलिये इसमें विविध रूपता का आ जाना नितान्त स्वाभाविक है किन्तु किसी साहित्य को स्थायित्व देने के लिये यह अनिवार्य है कि उसकी भाषा को एक रूपता देकर स्थायी बनाया जाय। इस विचार से इस भाषा को एक रूप देने का प्रयास बहुत पहले से दूरदर्शी सुयोग्य कवियों के द्वारा किया गया है, आचार्य केशव ने इस प्रयत्न का प्रारम्भ सुचारु-रूप से किया यद्यपि इसे वह पूर्णता तक न पहुँचा सके। यह कार्य किसी एक व्यक्ति का न तो होता ही है और न हो ही सकता है। उनके पश्चात् घनानंद, सेनापति जैसे कुछ सुयोग्य सत् कवियों ने इस प्रयास को आगे बढ़ाया। कविवर बिहारीलाल ने इसे और भी सफलता के निकट पहुँचाने का सराहनीय उद्योग किया। बिहारी सतसई की भाषा में व्रजभाषा की एक रूपता बहुत कुछ निखरी हुई है। आधुनिक काल में आकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने नये रूप से व्रजभाषा का प्रशस्त परिष्कार किया और इधर की ओर आकर स्वर्गीय रत्नाकर रामचन्द्र शुक्ल 'सरस' जैसे कवियों ने इसे और भी परिमार्जित करके साहित्य-सौष्ठव प्रदान किया। कविरत्न सत्यनारायण और श्री वियोगी हरि जैसे कुछ सुकवियो ने व्रजभाषा में अद्यतन दृष्टिकोण से नवीन भावों के व्यंजित करने की क्षमता देने का सराहनीय प्रयास किया और इसके प्रमाणित करने की चारु चेष्टा की कि व्रजभाषा आधुनिक कालीन विचार-धारा को सुन्दर रूप में व्यक्त करने के लिए अक्षम नहीं है केवल सत् कवियों को तनिक इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। हरिऔध जी ने इसी विचार को लेकर अपने 'रस-कलस' में व्रजभाषा की व्यंजकता और समर्थता को नूतन रूप से सिद्ध करने का प्रयास किया। यहाँ तक कि उन्होंने व्रजभाषा के ही द्वारा रहस्यवाद

जैसी कथित नवीन विचार-धाराओ को प्राचीन कला-कौशल के साँचे मे ढालते हुए विशेष सराहनीय सफलता से व्यक्त किया है। इसमें सदेह नहीं कि व्रजभाषा के कवियो ने प्राचीन विचार-धारा संस्कृति और विषय परम्परा के साथ ही साथ सदैव नवीन लौकिकता दिखलायी है। कतिपय ऐसी परम्परायें उनके द्वारा प्रचलित की गई जिनका अनुकरण आधुनिक खड़ी बोली के सुकवियों ने भी बड़े चाव-भाव के साथ में किया है।

इस प्रकार संक्षेप मे यहाँ व्रजभाषा और उसके काव्य की प्रगति का विहगावलोकन किया गया है। सब से बडी कठिनाई इस समय यह है कि व्रजभाषा और उसके काव्य को समझने के लिये समीचीन साधनो का बहुत कुछ अभाव है। खड़ी बोली और उसके नवसाहित्य के प्रचुर प्रचार और प्रखर प्राबल्य के कारण जनता से इन दोनो के समझने का संस्कार बहुत कुछ हट गया है। खेद तो यह है कि व्रजभाषा के पास अब तक कोई अच्छा शब्द कोष और व्याकरण नही। यह दोनों साहित्य के समझने के लिये अनिवार्य-साधन हैं। बहुत कुछ प्रयास टीकाओ के द्वारा साहित्य के समझने और समझाने का किया गया है अवश्य, किन्तु वह भी अभी दाल मे नमक के ही बराबर है, व्रजभाषा की बहुत बड़ी काव्य-राशि टीका विहीन पडी है। कुछ थोडे से काव्य-ग्रन्थो की टीकायें इस समय हैं भी वे बहुत सुयोग्य और काव्य मर्मज्ञो के द्वारा नही लिखी गई हैं ऐसी दशा मे परिणाम यही हो सकता है कि व्रजभाषा और उसका काव्य हमसे दूर हट जाय। धन्यवाद है उन महानुभाओ को जिनकी कृपा से व्रजभाषा और उसका काव्य विविध कक्षाओ की पाठ्य पुस्तको में इसलिये रखा जाता है जिससे प्राचीन काव्य-परम्परा विचार-धारा और भाषा का यत् किंचित ज्ञान विद्यार्थियों को हो सके। बहुत बड़ी आशंका इस बात की है कि यदि इस ओर

समुचित ध्यान न दिया गया तो शीघ्र ही हमारी यह काव्य रत्न-राशि भूत के गर्भ में विलीन होकर अज्ञात हो जायगी। बहुधा सुन्दर टीकाओं के न होने से विद्यार्थी वर्ग व्रजभाषा के पाठ्य ग्रन्थ छोड़ दिया करते हैं और पाठ्य निर्धारकों को भी उन ग्रन्थों को पाठ्य-क्रम में रखते हुए सकोच सा होता है। हमारा हिन्दी-हितैषी प्रकाशकों से निवेदन है कि वे इसे एक पुण्य कर्त्तव्य समझकर आश्रय दें और व्रजभाषा काव्य ग्रन्थों से सुसंपादित सुन्दर सटीक ग्रन्थ प्रकाशित कर इस रत्न-राशि को खो जाने से बचायें। हमारा निवेदन उन साहित्य मर्मज्ञों से भी है जो निस्वार्थ भाव से साहित्य सेवा का व्रत लेते हैं उन्हे भी इसे एक पवित्र कर्त्तव्य समझकर व्रजभाषा काव्य ग्रन्थों की सुन्दर टीकायें तैयार करनी चाहिये।

मुझे हर्ष है प्रस्तुत 'व्रजमाधुरीसार' के नवरत्नों की विवेचनात्मक टीका को प्रकाशित होते देखकर। टीका की आलोचना करना मेरा यहाँ कार्य नहीं, यह तो वस्तुतः सहृदय पाठकों, सत् समालोचकों और विशेषतया विद्यार्थियों का ही कार्य है। मैं अपनी ओर से इतना अवश्यमेव कह सकता हूँ कि टीकाकार ने इस टीका को सफल बनाने का यथा साध्य पूरा प्रयास किया है, इसके लिये मैं उन्हे साधुवाद देता हूँ साथ ही मैं इस टीका के प्रकाशक श्री भवानीप्रसाद गुप्त को भी धन्यवाद देता हूँ। मुझे आशा है कि इसी प्रकार और भी टीकायें शीघ्र प्रकाशित हो सकेंगी। मेरा यह अनुमान है कि यह टीका विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकेगी। तथास्तुः

१२ बी० बेली रोड
नया कटरा, प्रयाग
२२—६—४८

रामशंकर शुक्ल 'रसाल'
एम० ए०, डी० लिट्

विषय सूची

प्रकाशकीय

कई वर्ष से मै इस उद्योग में था कि 'व्रजमाधुरीसार' की एक ऐसी उपयोगी टीका निकालूं जिससे सम्मेलन के परीक्षार्थियो और कालेज के विद्यार्थियो को इस ग्रंथ के अध्ययन में पूरी-पूरी सहायता मिल सके। कई असुविधाओं के होते हुए भी विद्यार्थियो के लाभ के हेतु मैंने यथाशक्ति जल्द से जल्द इसका प्रकाशन किया है।

मद्रास और बिहार प्रान्त के उन सैकड़ो अध्यापको और विद्यार्थियो का मैं कृतज्ञ हूँ जो वर्षों पहले से ऐसी टीका तैयार कराने की विशेष आवश्यकता बताकर मुझे प्रोत्साहित करते रहे हैं। मुझे विश्वास है कि वे इसे देखकर प्रसन्न होंगे और यथाशक्ति इसका प्रचार करेंगे।

५।१६ ई० मुट्ठीगंज
२६—९—४८

भवानीप्रसाद गुप्त
प्रकाशक

ब्रजभाषा काव्य-परम्परा

ब्रजभाषा काव्य पर विचार करने के पूर्व 'ब्रज' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार कर लेना आवश्यक है। यह शब्द संस्कृत धातु 'ब्रज' (जिसका अर्थ 'जाना' होता है) से बना है। साधारणतया 'ब्रज' शब्द का अर्थ 'ब्रजन्ति गावो यस्मिन्निति ब्रजः' कहा गया है जिसका तात्पर्य यह होता है कि जिस स्थान पर नित्य गाएँ चलती और चरती हैं, उस स्थान को ब्रज कहते हैं। वेदों में इस शब्द का प्रयोग पशुओं के चरागाह के रूप में हुआ है। संहिताओं और रामायण तथा महाभारत आदि ग्रन्थों तक में यह शब्द देशवाची नहीं हो सका था। पौराणिक युग में भी 'ब्रज' शब्द का प्रयोग नन्द के गोष्ठ विशेष रूप में ही हुआ है। हिन्दी साहित्य में यह पहले-पहल देशवाची हुआ किन्तु सूरदास जी ने गोपियों के विरह के प्रसङ्ग में ब्रज का ऐसा चित्रण किया है जिससे प्रतीत होता है कि ब्रज मथुरा नगर से अलग था। सूरदास ने ब्रज का विशेष प्रयोग गोकुल आदि गांवों के लिये ही किया है।

धीरे-धीरे 'ब्रज' शब्द की व्यापकता बढ़ने लगी। फिर तो इसका अर्थ प्रदेश विशेष तक ही सीमित न रह कर भाषा वाची भी हो गया। ब्रज का प्रदेश वाची अर्थ भी आज विस्तृत हो गया है। अब ब्रज-मण्डल का विस्तार ८४ कोस माना जाता है। इस की सीमा के सम्बन्ध में यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

"इत बरहद इत सोनहद, उत सूरसेन को गावँ।
ब्रज चौरासी कोस में मथुरा मण्डल माँह॥"

अर्थात् व्रजमण्डल के एक ओर की हद बर स्थान है, दूसरी ओर सोन है और तीसरी ओर सूरसेन का गाँव है। मथुरा इसका केन्द्र स्थान है[1]। आज व्रजमण्डल मे सम्पूर्ण मथुरा तथा आगरा, अलीगढ़, गुड़गावँ और भरतपुर का आंशिक भाग सम्मिलित है। व्रज की बोली भी केवल अपने क्षेत्र में ही सीमित नहीं रही प्रत्युत वह व्रजपति श्रीकृष्ण भगवान का सहयोग पाकर काव्य-भाषा बन गयी और धीरे-धीरे देश के कोने मे व्याप्त हो गयी।

ज्यो-ज्यो कृष्ण भक्ति का प्रचार होता गया त्यो-त्यों देश के कोने-कोने से कृष्ण भक्त व्रज की पावन रज का दर्शन करने के लिए आने लगे। आज तो ऐसी स्थिति है कि सावन के महीने मे लाखो यात्री प्रति वर्ष व्रज मे पहुँच जाते हैं और व्रज की रज, व्रज के वन, पहाड़, नदी, पशु, पक्षी और पुरुष-स्त्री सभी को प्रेम भाव से देखकर गद्‌गद् हो जाते हैं। व्रज का दृश्य देखकर उनके नेत्र तृप्त नही होते अपितु उनकी प्यास प्रति क्षण बढ़ती जाती है। उन्हे आज भी ऐसा लगता है मानो श्रीकृष्ण गायें चरा रहे हैं, ग्वाल बालो और गोपियो के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। जब वे व्रज के किसी बच्चे के मुँह से 'मैया-मैया' की पुकार सुन लेते हैं तो उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानो वे बाल-कृष्ण के मधुर बचनों को सुन रहे हो। सावन के महीने मे व्रज की प्रकृति अपना सुन्दर शृंगार करती है व्रज का यह अपूर्व दृश्य पंडित सत्यनारायण कविरत्न के शब्दो में सुनिये—

पावन सावन मास नई उनई बन पाँती।
मुनि मन भाई छई, रसमई मंजुल काँती॥

---

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीनदयालु गुप्त (पृ० २)

सोहत सुन्दर चहुँ सजल सरिता पोखर ताल।
लोल लोल तहँ अति अमल, दादुर बोल रसाल॥
छटा चूई परै॥
अलबेली कहुँ बेलि, द्रुमन सों लिपटि सुहाई।
धोये - धोये पातन की अनुपम कमनाई॥
चातक चलि कोयल ललित, बोलत मधुरे बोल।
कूकि-कूकि केकी कलित, कुञ्जनु करत कलोल॥
निरखि घन घटा॥
इन्द्र धनुष अरु इन्द्र वधूटिन की शुचि सोभा।
को जग जनम्यौ मनुज, जासु मन निरखि न लोभा॥
प्रिय पावन पावस लहरि, लहलहात चहुँ ओर।
छाई छवि छिति पै छहरि, ताको ओर न छोर॥
लखे मन मोहिनी॥
कहूँ बालिका-पुञ्ज कुञ्ज लखि परियत पावन।
सुख-सरसावन सरस सुहावन, हिय हरसावन॥
कोकिल - कंठ - लजावनी, मनभावनी अपार।
मातृ - प्रेम - सरसावनी रागति मञ्जु मल्हार॥
हिंडोरनि झूलतीं॥

व्रज के इस अनूठे दृश्य को देखकर भला कौन विमोहित न होगा। कृष्णोपासक भक्त व्रज को 'गोलोक' मानते हैं। वे व्रज-भूमि में रह कर व्रजपति का गुण-गान करने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। महात्मा सूरदास आदि ऐसे ही भक्त थे जिन्होंने व्रजभूमि, व्रजभाषा और व्रजपति की अनन्य उपासना की है।

व्रजभाषा में कृष्ण काव्य की रचना का समस्त श्रेय स्वामी वल्लभाचार्य को है। इनके पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर और इनका आशीर्वाद पाकर महात्मा सूरदास ने व्रजभाषा-काव्य

१—श्री सूरदास

सूरदास के काव्य की पृष्ठभूमि—वीरगाथा काल की समाप्ति होते-होते हिन्दुओं की शक्ति एकदम क्षीण हो गयी। सारे देश पर मुसलमानों का अधिकार और आतंक छा गया। मंदिरो को लूटना, मूर्तियो को तोड़ना, बलात् हिन्दुओ को मुसलमान बनाना ही इस समय के बर्बर मुसलमानो का एकमात्र कर्त्तव्य हो गया था। हिन्दू जाति नित्य-प्रति अपनी आँखो से विधर्मियों के इस जघन्य कृत्य को देखती थी और अपने मे प्रतिशोध चुकाने की शक्ति का अभाव देखकर वह चुप रह जाती थी। धीरे-धीरे वह जीवन से निराश होती जा रही थी। इसी समय कुछ ऐसे संत आये जिन्होने हिन्दुओं और मुसलमानो में ऐक्य की भावना पैदा की। इन संतो ने अपनी निर्गुण-उपासना का प्रचार किया किन्तु इनकी अटपटी बानी जनता को अधिक विमोहित न कर सकी। अवसर पाकर कुछ मुसलमान सूफी कवियो ने हिन्दुओ की लोक-प्रचलित आदर्श प्रेम-कथाओं को लेकर और बीच-बीच में अपने एकेश्वरवाद की रहस्यमयी भावनाओ को चित्रित करके लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहा किन्तु इस प्रयास मे उन्हें सफलता नहीं मिली; मिलती भी क्यो? हिन्दू जाति इस समय अपनी संस्कृति-रक्षा के लिए सचेष्ट जो थी। अपने चिर-संचित संस्कारो की रक्षा का मोह उसे अब भी था। इसी समय कुछ वैष्णव संतो ने भगवान् के अवतार राम और कृष्ण के लोक-रक्षक और लोक-रंजक रूपो की झाँकी दिखाई। निराश जनता बहुत दिनो से भगवान के अवतार की प्रतीक्षा में थी, उसके प्रभु धर्म-रक्षा हेतु शीघ्र ही

अवतार लेंगे—यह बात सुनकर वह प्रफुल्लित हो गयी और बड़ी ही निष्ठा के साथ अध्यात्म की ओर झुक गयी। श्रीकृष्ण की लीला-भूमि ब्रज में इस समय स्वामी वल्लभाचार्य ने कृष्ण की प्रेम-स्वरूपा भक्ति की प्रतिष्ठा की। उनके अष्टछाप के शिष्यों ने, जिनमें महात्मा सूरदास जी प्रमुख थे, भगवान् श्री कृष्ण के प्रेममय स्वरूप को लेकर दिव्य प्रेम की ऐसी संगीत-धारा बहाई जिससे लोक-हृदय का सम्पूर्ण नैराश्य बह गया और उसमें जीवन के प्रति अनुराग पैदा हो गया।

सूरदास की कविता का वर्ण्य-विषय—महात्मा सूरदासजी ने भगवान् कृष्ण के प्रेममय रूप का ही वर्णन किया है। इसके लिए उन्होंने भगवान् के बाल और यौवन रूप को चुना है। इस प्रकार उनकी रचना प्रेम के तीन रूपों को लेकर चलती है। उनके विनय के पद भगवद्विषयक रति के अंतर्गत आते हैं और बाल लीला के पद 'वात्सल्य' के अन्तर्गत तथा दाम्पत्य रति के पद शृंगार के अंतर्गत आते हैं। सूरदास जी ने भगवान् श्रीकृष्ण के उस लोक-रंजक रूप का, जो दुष्टों का संहार करने वाला और सज्जनों की रक्षा करने वाला है, दिग्दर्शन नहीं कराया है इसलिए उनके काव्य का क्षेत्र बहुत कुछ परिमित और संकुचित हो गया है फिर भी जितना क्षेत्र उन्होंने चुना है, उसको बहुत समृद्ध किया है। शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में हिन्दी साहित्य का कोई भी कवि उनकी समता नहीं कर सकता।

सूरदास के काव्य की समीक्षा—महात्मा सूरदास जी व्रजभाषा के गीत-काव्य के प्रथम महाकवि हैं। इनके पूर्व पद-शैली में कबीर आदि कतिपय निर्गुणी सन्तों ने 'सधुक्कड़ी' अर्थात् मिश्रित भाषा में रचना की थी अतएव

पद-शैली में सगुण-लीला सम्बन्धी गीत रचने का श्रेय सर्वप्रथम सूरदास जी को है। सूरदास जी ने श्रीकृष्ण की बाल-लीला का वर्णन अत्यन्त मनोहारी ढग से किया है। बधाई से लेकर गोचारण की किशोरावस्था तक के सैकड़ो मोहक चित्र दिखाये हैं। बालको की अतःप्रकृति का उद्घाटन जितनी विशदता के साथ इन्होंने किया है वैसा अन्य कोई कवि नही कर सका। मातृ-हृदय की भावनाओ का वर्णन करने में भी सूर की वृत्ति बहुत रमी हुई है। श्रीकृष्ण जी बचपन से ही व्रज मे रह रहे थे। अतएव उनके साहचर्य और सौन्दर्य का प्रभाव गोपियो पर गहरा पड़ा था। सूर ने अपने पदों मे इसको भली-भाँति व्यक्त किया है। उनकी गोपियों का प्रेम किसी साधारण घटना के घटित होने का फल नहीं है। सूरदासजी ने गोपियों के प्रेम का विकास प्रकृत रूप में दिखाया है इसलिए वह अस्वाभाविक नही जान पड़ता। सूरदासजी का सयोग और वियोग वर्णन वास्तव मे संयोग और वियोग वर्णन के लिए ही है। इन्होने गोपियों के मिलन को पूर्ण मिलन तथा वियोग को पूर्ण वियोग के रूप मे दिखाया है और सयोग एवं वियोग के बीच मे पड़ने वाली परिस्थितियो की कहीं भी परवाह नही की है। इसलिए सयोग और वियोग दोनो के वर्णन मे उन्हे पूर्ण सफलता मिली है। पर वियोग वर्णन में जहाँ कही इन्होने ऊहात्मक पद्धति का अनुसरण किया है, वहाँ वर्णन एकदम अस्वाभाविक हो गया है। इन्होने भक्ति-विरोधी ज्ञान की सच्चे प्रेम के सामने जैसी उपेक्षा की है उसका वर्णन 'भ्रमरगीत' के अनेको पदो मे मिलता है। इन्होंने प्रकृति-वर्णन भी बड़े मार्मिक ढंग से किया है। सच पूछिए तो बाल-लीला, गोचारण, रास-लीला और गोपियो के विरह आदि का वर्णन करने में सूर ने जो सफलता पाई है उस

में प्रकृति के नाना रूपो का वर्णन अपनी विशेष महत्ता रखता है। सूरदास जी मे भावुकता और वाग्विदग्धता कूट-कूट कर भरी है। इनके वर्णन का ढग बहुत ही अनोखा है। एक ही बात को ये अनेकों प्रकार से घुमा-फिराकर एक विचित्र भावभंगी के साथ कह जाते हैं। सब से विचित्र बात तो यह है कि इन पदों में नवीनता के ही दर्शन होते हैं। सूरदास जी ने अपने 'सूर-सागर' मे प्राय: सभी राग-रागनियों का वर्णन किया है जिससे उनकी रचनाएँ सङ्गीत प्रेमियो का भी सर्वस्व बन गयी हैं। सूरदासजी की प्रकृति विनोदशील थी इसलिए उन्होंने कुछ दृष्टिकूट पद भी लिखे हैं। ये भाव-राशि के स्वामी तो थे ही, काव्य के बाह्य-उपकरण अर्थात् अलकार आदि भी इनके हाथ से नहीं जाने पाये। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलकारो का प्रयोग इन्होने प्रचुर परिमाण मे किया है। इन्होंने जिस तन्मयता के साथ भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन किया है उसी तन्मयता के साथ प्रभु की विनय भी की है। इन्होंने अपने प्रभु की शक्ति का वर्णन करने में विशेषरुचि नहीं दिखायी है यही कारण है कि भगवान् श्रीकृष्ण का लोक-रञ्जक रूप जनता के सामने न आ सका। श्रीकृष्ण और राधा के प्रेम का जो वर्णन सूरदासजी ने किया उसको साधारण जनता ठीक-ठीक न समझ सकी और कुछ समय बीतने पर इसका फल यह हुआ कि गाँवों के अश्लील गीतो तक मे नायक के स्थान पर श्रीकृष्ण और नायिका के स्थान पर राधिका का नाम आने लगा। कहने का तात्पर्य यह कि सूरदासजी अपनी विचारधारा में सदैव मग्न रहने वाले व्यक्तियों में से थे, संसार में क्या हो रहा है इसकी उन्हे परवाह न थी।

भ्रमरगीत—महात्मा सूरदासजी ने अपने 'सूरसागर' के अन्तर्गत भ्रमरगीत वर्णन बहुत सुन्दर

किया है। भ्रमरगीत की यह कथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के ४७ वें अध्याय से ली गयी है जो इस प्रकार है—

श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ कंस के बुलाने पर मथुरा गये। व्रज से जाते समय उन्होने व्रजवासियो से इस बात का वादा किया था कि वे एक पक्ष के अन्दर मथुरा से लौट आयेगे किन्तु कंस का वध कर चुकने पर भी वे मथुरा से निश्चित अवधि के भीतर वापस न लौट सके। कारण यह था कि वे कस की दासी कुब्जा के प्रेम पास मे फँस गये। जब श्रीकृष्णजी व्रज को नही लौटे तो नन्द, यशोदा और सारे व्रजवासी बहुत दुखी हुए। श्रीकृष्ण की प्राण-प्यारी गोपियो की भी बड़ी बुरी दशा थी, वे सभी कृष्ण की वियोगाग्नि में तड़प रही थी। व्रज से कितने ही सन्देश कृष्ण के पास भेजे गये किन्तु सारा प्रयास व्यर्थ रहा। श्रीकृष्ण जी व्रज को नही लौट सके पर गोपियो की वियोग दशा की चिन्ता कर उन्होंने अपने मित्र उद्धव को उन्हें समझाने-बुझाने के लिये भेजा। भगवान् लीलानायक हैं, उनका कोई भी कार्य व्यर्थ नही होता। उद्धवजी को भेजने में उनका एक विशेष अभिप्राय यह था कि उद्धव जी को अपने ज्ञान का गर्व था। श्रीकृष्ण जब कभी उनसे गोपियों के विशुद्ध प्रेम की चर्चा करते तो वे अपनी ज्ञान-गरिमा द्वारा उसका खण्डन करते थे और अपने मे एक निर्गुण ब्रह्म की प्रतिष्ठा करते थे। श्रीकृष्ण जी ने उद्धव को बहुत समझाया किन्तु उद्धव की समझ में जब कुछ भी न आया तब श्रीकृष्णजी ने सोचा कि उद्धव को व्रज भेज देना चाहिये। वहाँ गोपियो के उमड़ते हुए विरह सागर की तरंगो में इनका यह भक्ति विरोधी ज्ञान आप-से-आप लुप्त हो जायगा। सूरदासजी ने एक पद मे इसका उल्लेख भी किया है—

त्रिगुण तन करि लखत हमको, ब्रह्म मानत और।
बिना गुण क्यों पुहुमि उघरै, यह करत मन डौर॥
बिरह रस को मन्त्र कहिए, क्यों चलै संसार।
कछु कहत यह एक प्रगटत, अति भरयो हंकार॥
प्रेम भजन न नेकु याके, जाय क्यों समझाय?
'सूर' प्रभु मन यहै आनी, ब्रजहिं देहुँ पठाय॥

फिर क्या था, गोपियों को ज्ञान की शुष्क शिक्षा देने और उन्हें समझाने बुझाने के लिए उद्धव जी ब्रज भेजे गए। ब्रज आने पर वहाँ के सभी निवासियों ने उन्हें घेर लिया और श्रीकृष्ण का कुशल-समाचार पूछने लगे। सब को यथोचित उत्तर देकर उद्धवजी ने कृष्ण की उस चिट्ठी को, जो उन्होंने गोपियों के लिए लिखा था, पढ़ना आरम्भ किया किन्तु विरह-विधुरा गोपियों की दशा देखकर उनके नेत्रों में आप-से-आप प्रेम के आँसू उमड़ आये, चिट्ठी पढ़ी न जा सकी, विवश हो उद्धवजी प्रेम-गाथा के बजाय अपनी ज्ञान-गाथा कहने लगे—

जो ब्रत मुनिवर ध्यावहीं, पै पावहिं नहिं पार।
सो ब्रत सीखो गोपिका, हो, छाँड़ि विषय विस्तार॥

इसी बीच में एक भ्रमर कहीं से उड़ता हुआ आकर गोपियों के पास मँडराने लगा। अब गोपियाँ उससे पूछने लगीं—

पूछन लागीं ताहि गोपिका, "कुबजा तोहिं पठायौ?
कैधौं 'सूर' स्यामसुन्दर को, हमैं संदेसो लायौ?"

इसके अनन्तर गोपियाँ इसी भ्रमर को सम्बोधित करती हुई, जो चाहती हैं, कहने लगती हैं। इसी से इस प्रसंग का नाम 'भ्रमरगीत' पड़ा है।

तात्विक-दृष्टि से 'भ्रमरगीत' में योगसाधना, निर्गुण उपासना और भक्ति-विरोधी ज्ञान की उपेक्षा की गयी है। इसमें बताया

गया है कि ये मार्ग ठीक भले ही हो किन्तु साधारण समझ के लोगो के लिए ये अव्यवहार्य हैं। इसमे प्रमुख रूप से भगवान की सगुण भक्ति और प्रेम को ही अधिक महत्व दिया गया है। गोपियाँ इस विषय मे कहती हैं—

जा कोउ पावै सीस दै, ताको कीजै नेम।
मधुप हमारी सौं कहो, हो, जोग भलो की प्रेम ॥
प्रेम प्रेम सों होय, प्रेम सों पारहिं जैए।
प्रेम बध्यौ संसार, प्रेम परमारथ पैए ॥
एकै निहचै प्रेम को, जीवन मुक्ति रसाल।
साँचो निहचै प्रेम को, हो, जो मिलिहैं नन्दलाल ॥

अपने ज्ञान पर गर्व करने वाले उद्धव जी अन्ततोगत्वा गोपियों के प्रेम की लहरो मे बह गए। वे कहने लगे—

उपदेसन आयो हुतो, मोहिं भयो उपदेस

फिर तो उनकी दशा ऐसी हुई कि—

छन गोपिन के पग धरैं, धन्य तिहारो नेम।
धाय धाय द्रुम भेंटहीं, हो ऊधो छाके प्रेम ॥

इस प्रकार लोक-प्रचलित प्रेम की प्रतिष्ठा मान लेने पर 'भ्रमरगीत' की समाप्ति हो जाती है।

सूरदास की गोपियाँ—श्रीकृष्ण के वियोग में तड़पती हुई ब्रजबालाओं का श्रीकृष्णजी से प्रेम करना आकस्मिक बात नही थी वस्तुतः उनका यह 'लरिकाई कौ प्रेम' था जिसे वे श्रीकृष्ण के बिछुड़ने पर भी नही भुला सकी। श्रीकृष्ण के वियोग की आँच से तपकर उनका प्रेम अलौकिक हो उठा था। उनमें कितना विरह था, इसे कौन जान सकता है। इन गोपियो की प्रेम-साधना ऐकान्तिक थी, संसार को ये एकदम भूल चुकीं थी।

इनकी आँखों के सामने सदैव आनन्द-कन्द श्याम की त्रिभंगी मूर्ति दिखाई पड़ती थी। तर्क-वितर्क करना तो ये जानती ही नहीं थीं। ये उद्धव से सीधे-साँधे अपने मन की बात कह देती हैं कि हे उद्धवजी! आप हमें योग की बात न सिखाइए, आप कुछ ऐसी युक्ति बताइए जिससे श्यामसुन्दर के दर्शन हों, देखिए न हमारी ये—

अँखियाँ हरि दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूप-रस राँची, ये बतियाँ सुनि रूखी।
अवधि गनत इकटक मग जोवत, तब एती नहिं झूँखी॥
अब इन जोग सँदेसनि ऊधो, अति अकुलानी दूखी।
बारक वह मुख फेरि दिखाओ, दुहि पय पियत पतूखी॥

इसलिए उद्धव, हमें श्रीकृष्ण की कथा सुनाइये और अपनी इस योग-कथा को मथुरा ही ले जाइये। वहाँ की नगर-नारियाँ इसे अच्छी तरह समझेंगी।

हमको हरि की कथा सुनाव।
अपनी ज्ञान कथा हो ऊधो, मथुरा ही लै जाव॥
नागरि नारि भले बूझैंगी अपने वचन सुभाव।
पालागौं इन बातनि रे अलि! उन ही जाय रिझाव॥

हे उद्धवजी, आप पहले व्रज की दशा को तो देखें फिर अपनी इस योग गाथा को यहाँ प्रचारित करें। जरा सोचें तो सही कि विरह और परमार्थ-साधन में कितना अन्तर है—

ऊधो व्रज की दशा विचारो।
ता पाछे हे सिद्ध! आपनी योग कथा विस्तारो॥
जेहि कारन पठये नंदनन्दन, सो सोचहु मन माहीं।
केतिक बीच विरह परमारथ, जानत हौ किधौं नाहीं॥

इसके पश्चात् गोपियाँ कहती हैं कि हमारी बुद्धि बहुत छोटी है बताइए ऐसी दशा में हम आपकी निर्गुण ब्रह्म की बातें कैसे

समझें ? हाँ, यदि आप अपने ब्रह्म को प्रत्यक्ष पीताम्बरधारी के रूप मे दिखा दें तो हम आपकी बातों पर विश्वास कर ले।

तौ हम मानैं बात तुम्हारी।
अपनो ब्रह्म दिखावहु ऊधो मुकुट पिताम्बर धारी ॥

देखिए, सच्ची बात पहचानने की कितनी सीधी उक्ति है, निश्चय ही बड़े-बड़े तर्क शिरोमणि भी गोपियो के प्रत्यक्ष-प्रमाण के इस दावे को झूठा नही करसकते, औरो की तो बात ही क्या। अब तो उद्धव की कपट-कलई खुल जाती है। गोपियाँ उन्हे धूत और ठग समझने लगती है फिर तो वे कहती हैं—

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
यह ब्यौपार तिहारो ऊधो मथुरा ही फिरि जैहै॥

कही-कही पर तो गोपियो ने उद्धवजी से स्पष्ट कह दिया है—

ऊधो तुमहुँ सुनो इक बात।
जो तुम करत सिखावन सो हमैं, नाहिं न नेकु सुहात ॥

गोपियाँ श्रीकृष्ण के वियोग से दुखी हैं। श्रीकृष्ण के आने पर ही उन्हे चैन मिल सकता है इसलिये वे उद्धवजी से सिफारिश करती हैं—

'सूरदास' अब सोइ करौ जिहि होइ कान्ह को पैबो।

किन्तु वे फिर सोचती हैं कि श्रीकृष्ण अब ब्रज कैसे आ सकेंगे—

अब हरि गोकुल काहे को आवहिं, चाहत नवजोबनियाँ॥
दिना चारि तें पहिरन सीखे, पट पीताम्बर तनियाँ।'
'सूरदास' प्रभु तजी कामरी अब हरि भये चिकनियाँ ॥

भगवान् श्यामसुन्दर ब्रज नही लौटेंगे यह बात उनके हृदय में बैठ-सी जाती हैं और वे सैकड़ों प्रकार से उद्धवजी से यही

अनुरोध करती हैं कि वे उन्हें किसी प्रकार व्रज लावें। अन्त में कहती हैं—

कहा करौं निरगुन लेके हौं, जीवहु कान्ह हमारे।

इस प्रकार आशीर्वाद देती हुई उद्धवजी को विदा करती हैं। उद्धवजी व्रज में ज्ञान की बातें सिखाने आये थे किन्तु गोपियों का विरह-सागर इतना उमड़ा कि उनका सारा ज्ञान-गौरव उसी में पता नहीं कब और कैसे विलीन हो गया। इस प्रकार भक्ति-विरोधी ज्ञान पर सच्चे प्रेम ने विजय पायी। गोपियों से पराजित हुए उद्धवजी मथुरा लौटकर जब श्रीकृष्ण से मिले तो दुखित होकर कहने लगे—

कहो तो सुख आपनो सुनाऊँ।
व्रज जुवतिन कहि कथा जोग की, क्यों न इतो दुख पाऊँ॥
हौं वह बात कहत निरगुन की, वाही में अटकाऊँ।
वे उमड़ी वारिधि तरंग ज्यौं, जाकी थाह न पाऊँ॥
कौन-कौन को उत्तर दीजै, ताते भज्यौं अगाऊँ।

निष्कर्ष यह कि सूरदासजी की गोपियाँ यद्यपि ग्रामीण हैं, अल्प-बुद्धि की गर्वारिनी हैं किन्तु उनके हृदय में विरह का इतना बड़ा अगाध-सागर उमड़ रहा है कि उसकी थाह लगाने या उसको पार करने का कोई साहस ही नहीं कर सकता है। यह बात स्मरणीय है कि सूरदास की गोपियों की विजय उनके हृदय-स्थित विशुद्ध प्रेम के कारण हुई है, पांडित्य अथवा तर्क से नहीं।

भाषा और शैली—सूरदासजी की भाषा बहुत ही स्वाभाविक, कोमल और चलती हुई है। इन्होंने लोकप्रचलित मुहाविरों और कहावतों का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। शब्दों को बहुत-कम तोड़ा-मरोड़ा है। भाषा की स्वाभाविक

गति में कहीं भी अलंकारो के कारण वाधा नही पड़ने दी है। 'कूट' के पदों में ही इन्होंने अलंकारों की भरती की है। भाषा में इन्होने संगीतात्माकता की ओर रुचि दिखायी है। इनकी शैली वड़ी ही अनूठी है, भावाभिव्यजन का ऐसा आकर्षक ढग हिन्दी के कुछ इने-गिने कवियो में ही ढूँढ़ने पर मिलता है। सूरदासजी की शैली की यह सब से वड़ी विशेषता है कि वे वड़ी-से-वड़ी या छोटी-से-छोटी बात को ऐसी भावभंगी से व्यक्त कर देते हैं कि पाठक तत्काल उससे प्रभावित हो जाता है। इनकी भाषा में स्थान-स्थान पर व्यंग का रग चढ़ा हुआ है।

१—श्री सूरदास

बिलावल

१—शब्दार्थ—बन्दौं—वन्दना करता हूँ; हरि राई—स्वामी कृष्ण; जाकी—जिसकी; गिरि—पर्वत; दरसाई—दिखाई देता है, मूक—गूँगा; रंक—गरीब; धराई—धारण करके; पाई—पद, चरण।

भावार्थ—महात्मा सूरदासजी कहते हैं कि मैं स्वामी कृष्ण के चरण कमल की वन्दना करता हूँ जिसकी कृपा से लंगड़ा व्यक्ति पर्वत को पार कर जाता है' अन्धा व्यक्ति सब कुछ देखने लगता है, बहिरा व्यक्ति सुनने लगता है, गूँगा फिरसे बोलने लगता है और अत्यन्त गरीब व्यक्ति सिर पर छत्र धारण कराकर चलने लगता है अर्थात् सम्राट हो जाता है; ऐसे करुणामय स्वामी के चरणों की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ।

टिप्पणी—इस पद में माहात्मा सूरदासजी ने भगवत्-कृपा की महत्ता प्रतिपादित की है। 'अन्धे को सब कुछ दरसाई' से कवि की ओर भी संकेत है। यह पद वैराग्य प्रधान है, इसमें शान्त रस प्रधान है।

गौरी

२—शब्दार्थ—गति—पहुँच ; पति—स्वामी ; अन्तहि—अन्यत्र ; हौं—मैं ; तिहारो—तुम्हारा , हय—घोड़ा ; गयंद—हाथी , गर्दभ—गधा ; पाटंबर—रेशमी वस्त्र ; अम्बर—वस्त्र ; तजि—छोड़कर ; गूदर—चिथड़ा।

भावार्थ—महात्मा सूरदासजी कहते हैं कि हे स्वामी कृष्ण ! तुम्ही तक मेरी पहुँच है। अन्यत्र जाने पर मुझे दुःख मिलता है। अब तक तो मैं तुम्हारा दास प्रसिद्ध रहा किन्तु अब (तुम्हारे त्याग देने पर) किसका दास कहलाऊँ ? आपकी भक्ति कामधेनु के सदृश्य है, भला उसको छोड़कर बकरी के दूध के समान फलप्रद अन्य देवी-देवताओं की उपासना कैसे करूँ ? मैं जब घोड़े और हाथी की सवारी कर चुका तो गधे पर चढ़कर कैसे दौड़ूँ ? जब मैं सुवर्ण की मणियों की माला पहन चुका तो काँच की माला कैसे पहनूँ ? मैं कुंकुम के तिलक को मिटाकर मुख में कालिख कैसे पोतूँ ? सुन्दर रेशमी वस्त्रों का पहिनना छोड़कर चिथड़े फटे-पुराने वस्त्रों को कैसे धारण करूँ ? आम के फल को छोड़कर सेमल के फल की ओर क्यों दौड़ूँ ? सागर की लहरों में स्नान करना छोड़कर पोखरी या तालाब में कैसे स्नान करूँ ? हे नाथ ! यह सब अब मुझसे न हो सकेगा। मैं हठी और अन्धा व्यक्ति हूँ मैं आपके ही द्वार पर पड़ा रहकर आपका गुणगान करूँगा।

टिप्पणी—इस पद मे महात्मा सूरदासजी प्रभु से आत्म-निवेदन करते हैं। वे कहते हैं कि प्रभो ! आप मुझे भले ही त्याग दे पर मैं आपको किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता। महात्मा जी का हठ इस पद में देखने योग्य है। इसमे द्वितीय उल्लेख अलङ्कार है। भाषा-भूषण में लिखा है—'बहु विधि बरनें एक कौ, बहु गुन सौं उल्लेख।'

सारंग

३-शब्दार्थ—अनत—अन्यत्र . सचु—सुख ; पछी—पक्षी , दुर्मति—दुर्बुद्धि ; मधुकर—भौंरा , अम्बुज-रस—पराग : चाख्यौ—स्वाद लिया है।

✓भावार्थ—महात्मा सूरदासजी कहते हैं कि मेरा मन (भगवच्चरणों की अलभ्य सेवा त्यागकर) अन्यत्र कहाँ शान्ति और सुख पा सकता है। सयोग से यदि कभी यह बहुदेवोपासना के लोभ में पड़ा तो फिर इधर-उधर न भटककर यह पुनः प्रभु के शरण में उसी प्रकार आ जायगा जैसे जहाज के ऊपरी भाग पर बैठा हुआ पक्षी विशाल समुद्र में इधर-उधर उड़कर और अपनी रक्षा कहीं पर न देखकर फिर उसी जहाज की शरण लेता है जिसे उसने त्याग दिया था , इसलिए कमल-नयन भगवान् श्रीकृष्ण के माहात्म्य को छोड़कर अन्य देवी-देवताओं की उपासना करने कौन जाय ? यदि मैं ऐसा करूँ भी, तो मेरा परिश्रम उसी प्रकार व्यर्थ हो जायगा जिस प्रकार कोई दुर्बुद्धि प्यासा होकर भी गंगाजी के परम कल्याणकारी शीतल जल को छोड़कर तत्काल कुआँ खोदने का व्यर्थ उपाय करता है। भला, जिस भौंरे ने पराग का रस चख लिया है उसे करील क्यों अच्छा लगने लगे। अतएव अपने प्रभु श्रीकृष्ण को, जो कामधेनु के समान सभी प्रकार की कामना को पूर्ण करने वाला हैं, छोड़कर अन्य देवी-देवताओं की शरण में कौन जाय जो कि बकरी के समान परिमित मात्रा में दूध-मात्र ही प्रदान करने वाले हैं।

टिप्पणी—सिद्धान्त की दृष्टि से यह पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ; इसमें बहुदेवोपासना का लोभ छुड़ाकर जीव को केवल प्रभु श्रीकृष्ण की आराधना करने के लिए कहा गया है। 'जैसे

उड़ि जहाज कौ पंछी' आदि मे दृष्टान्त अलकार है। भाषा-भूषण मे इसका लक्षण इस प्रकार है:—

"अलंकार दृष्टान्त सो लच्छन नाम प्रमान।"

सारंग

४—**शब्दार्थ**—हरिहिं—श्रीकृष्ण को ; गहाऊँ—ग्रहण करा दूँ ; छत्रिय-गतिहि—वीरगति को ; सरिता—नदी ; पीठ दिखाऊँ—हारकर भागूँ।

सन्दर्भ—महाभारत के युद्ध में सुयोधन और अर्जुन को सहायता देते समय श्रीकृष्ण ने अपनी शक्ति का इस प्रकार विभाजन किया था कि एक ओर मेरी दस करोड़ सशस्त्र सेना रहेगी जो सभी जगह लड़ेगी और दूसरी ओर मैं अकेला निरस्त्र रहूँगा। वीर अर्जुन ने श्रीकृष्ण को चुना और युद्ध में उनसे सारथी का काम लिया। एक दिन जब भीष्म के सेनापतित्व में कौरवी सेना का भयानक सहार अर्जुन ने किया तो सुयोधन [illegible] दुःख हुआ उसके इस सन्ताप को मिटाने के लिए भीष्म पि[illegible] जी ने यह संकल्प किया—

भावार्थ—"यदि आज मैंने श्रीकृष्ण को [illegible]न ग्रहण करा दिया तो मैं माता गङ्गा जी को लज्जि[illegible] और मैं शान्तनु का पुत्र न कहलाऊँ। मैं युद्ध मे [illegible]रण) रथों को खण्डित कर अर्जुन के रथ को भी च[illegible]र्ण कर दूँगा और अर्जुन के रथ की कपि-ध्वजा को [illegible] दूँगा। मैं पाण्डवों की सेना के सामने (प्राणों की [illegible] लगाकर) दौड़ूँगा और रक्त की नदी प्रवाहित कर दूँ[illegible] और जीते जी अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण को पीठ न दिखाऊँगा।" यदि मैं ऐसा न कर सकूँ तो मुझे भगवान की शपथ है मैं वीरगति को न प्राप्त होऊँ।

टिप्पणी—भीष्म पितामहजी की इस वीरतापूर्ण गर्वोक्ति में वीर रस का पूर्ण निर्वाह हुआ है। गीत शैली में वीर रस का वर्णन हिन्दी साहित्य में बहुत कम मिलता है, इस दृष्टि से इस पद का बहुत महत्व है।

आसावरी

५—**शब्दार्थ**—परितिग्या—प्रतिज्ञा, मम—मेरे।

सन्दर्भ—महाभारत के युद्ध के अवसर पर श्रीकृष्णजी अर्जुन को उपदेश देते हैं।

भावार्थ—ऐ अर्जुन! सुन। "मैं भक्तो का सर्वस्व हूँ और भक्त मेरे सर्वस्व हैं।" यही मेरी प्रतिज्ञा है, इस व्रत को किसी के टलाने से मैं टाल नहीं सकता हूँ। भक्तों पर सङ्कट पड़ने से मुझे अपने हृदय में लज्जा लगती है और मैं तुरन्त अपने भक्त की सहायता करने नंगे पैर दौड़ पड़ता हूँ। भक्तो पर जहाँ-जहाँ सङ्कट पड़ता है, वहाँ-वहाँ जाकर मैं उन्हें छुड़ाता हूँ। जो मेरे भक्त से शत्रुता करता है वह मेरा शत्रु है। इसे तू भली-भाँति विचार करके देख ले कि मैं अपने भक्त (अर्जुन) की भलाई की कामना से तेरा रथ हाँक रहा हूँ। भक्तो की विजय ही मेरी विजय है और उनकी पराजय मेरी पराजय है। इसलिये मैं जब किसी को भक्त-विरोधी जान पाता हूँ तो उसे चक्र-सुदर्शन से भस्म कर देता हूँ।

टिप्पणी—इस पद में भगवान् के श्रीमुख से इस विश्वास की पुष्टि की गयी है कि वे भक्तो के रक्षक हैं और दुष्टों तथा आततायियों के संहारक हैं।

✓सारंग

६–**शब्दार्थ**—पटपीत—पीताम्बर ; अवनि—पृथ्वी कच—केश ; रज—धूल ; सैल—पर्वत ।

प्रसंग—बाणों की शय्या पर पड़े हुए व्यथित भीष्म पितामह जी को श्रीकृष्ण जी अपना अन्तिम दर्शन दे रहे है । प्रभु को सामने आया देखकर भीष्म जी को युद्ध का वह दृश्य स्मरण हो आता है, जब भगवान् श्रीकृष्ण उनकी विकट बाण-वर्षा से व्याकुल होकर रथ का चक्र उखाड़ उन्हे मारने दौड़े थे । इसीका वर्णन सूरदासजी कर रहे हैं ।

भावार्थ—भीष्म पितामह कहते है कि श्रीकृष्ण का वह रूप, जब कि युद्ध क्षेत्र मे घोड़ो की टाप और रथों के पहियो क द्वारा उठी हुई धूल में उनके केश सन गये थे, उस समय मेरी विकट बाण-वर्षा से अत्यन्त क्षुब्ध होकर उनका रथ से व्याकुलता के साथ उतरना और हाथ में चक्र लेकर अपने पीताम्बर को फहराते हुए मेरी ओर दौड़ना मुझे भूलता ही नही । उनका रथ से क्रोधित होकर उतरना ऐसा लगता था मानो महामत्त गजराज को देखकर कोई सिंह पर्वत की कंदरा से अचानक निकला हो । जिन गोपाल ने वेद की मर्यादा मिटाकर अर्थात् अपनी प्रतिज्ञा भंग कर मेरी प्रतिज्ञा पूरी की है वे ही मेरे एकमात्र सहायक हैं और (अपना अन्तिम दर्शन देने के लिये) मेरे निकट खड़े हैं ।

टिप्पणी—दो पंक्तियों मे श्रीकृष्ण का क्रोधावेश का चित्र अंकित होना इस पद की विशेषता है । 'मानो सिंह सैल तें निकस्यो' मे उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।

सीख लिया किन्तु यहाँ प्यारा कन्हैया तो इसका नित्य कान भरा करता है। (ऐसी दशा मे पता नहीं यह क्या करेगी) ब्रह्मा जी ने एक हंस की सवारी करके अत्यन्त प्रशंसा प्राप्त करली है किन्तु यह तो बहुत सी गोपियो के मन रूपी हंस को अपना विमान बना चुकी है। भगवान् के हृदय मे रहने वाली लक्ष्मी जिन (श्रीकृष्ण) का चरण रज चाहती हैं उनके मुख को इसने अपना उपयुक्त सुखमय सिंहासन बना रक्खा है। इस मुरली के न तो चोटी है और न यज्ञोपवीत है। इसने श्रीकृष्ण के अधरामृत का पान कर उनके कुल के व्रत को भ्रष्ट कर दिया है फिर भी न जाने क्यो वे इससे बहुत प्रेम रखते हैं।

टिप्पणी—इस पद मे प्रतीप अलंकार के सहारे बडे अनूठे ढंग से मुरली का प्रभाव वर्णन किया है। अंतिम दो पंक्तियों मे व्याज-स्तुति अलंकार है।

बिहाग

२६—शब्दार्थ—भाखै—कहती है; प्रान हनन को—प्राण लेने के लिये; कमल-नयन—श्रीकृष्ण।

भावार्थ—यशोदा जी श्रीकृष्ण को मथुरा जाते हुए देख कर बार बार यह कहती हैं कि क्या इस व्रज मे मेरा कोई ऐसा हितू है जो मथुरा जाते हुए गोपाल को लौटा ले। राजा कंस ने मेरे छगन-मगन को क्यों मथुरा बुलाया है? जान पड़ता है अक्रूर मेरे प्राणों को लेने के लिए काल-स्वरूप होकर यहाँ आये हैं। [illegible] भले ही मेरी सभी गौवों को हँकवा ले और मुझे बंदीगृह में [illegible] किन्तु मुझे इस सुख से वंचित न करे। मेरा तो इतना शरीर पुल[illegible] कि कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्ण मेरी आँखो के आगे [illegible] चा दिन उनके मुख को देखते हुए काटूँ तथा रात

को उन्हे गोद में लेकर सो जाऊँ। मान लीजिए यदि मैं कन्हैया के वियोग होने पर भी भाग्यवश जीती रहूँ तो हँसकर किसको बुलाऊँगी ? श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन करते-करते यशोदा जी का अधर और मुख कुम्हला उठा। सूरदास जी कहते हैं कि इस अवसर पर नंदरानी यशोदा कितनी दुखित थी, इसका वर्णन मैं कहाँ तक करूँ ?

टिप्पणी—इस पद में यशोदा जी का वात्सल्य-प्रेम वर्णित है। श्रीकृष्ण जी के वियोग के कारण यह उत्कृष्टता को प्राप्त हुआ है।

✓विहाग

२७-शब्दार्थ—मनसहु—मन में भी।

भावार्थ—यशोदा जी श्रीकृष्ण जी के वियोग में कहती हैं कि मेरे कुँवर श्रीकृष्ण के बिना सब (मेवा-मिष्ठान्न आदि) ज्यो का त्यों पड़ा रहता है। हाय ! प्रातःकाल उठकर अब कौन मक्खन माँगेगा और कौन आकर मेरी मथानी पकड़ेगा ? यशोदाजी अपने सूने भवन मे पुत्र कृष्ण के गुणो का स्मरण कर वियोग का कष्ट सहती हैं। जब तक कन्हैया मेरे घर में था तब तक नित्य सवेरे ही ग्वालिनियो की भीड़ मेरे पास उलाहना देने आती थी, पर अब कोई नही आकर उसका उलाहना सुनाती। कन्हैया के व्रज मे रहते हुए जो अपूर्व आनन्द था, वह बड़े-बड़े मुनियों के मन मे भी नहीं आता किन्तु अब बिना स्वामी कन्हैया के गोकुल का मूल्य कौड़ी भर भी नहीं है।

टिप्पणी—इसमे भी वात्सल्य-प्रेम का वर्णन हुआ है। देखिए, जो वस्तुएँ वा दृश्य श्रीकृष्ण जी की उपस्थिति में यशोदा जी को सुख प्रदान किया करते थे वही उन्हे किस प्रकार दुःख दे रहे हैं !

✓सोहनी

२८—शब्दार्थ—लह्यौ—पाया, दह्यौ—जला दिया।

प्रसंग—श्रीकृष्ण के प्रवासी होने पर उनके वियोग में गोपियाँ कहती हैं।

भावार्थ—प्रेम करके किसी ने सुख नहीं पाया। जैसे पतिंगे ने दीपक की लौ से प्रेम किया किन्तु उसको (प्रेम की पूर्ति के लिए) अपना प्राण जलाना पड़ा। भ्रमर के बच्चे ने कमल से प्रेम किया किन्तु अंत में (जब हाथी ने कमल-तंतुओं को उखाड़ दिया और कुचल डाला तो) भ्रमर को अपना सर्वस्व नष्ट करना पड़ा। हिरन ने वीणा के नाद से प्रेम किया किन्तु इसी प्रेम के कारण उसको व्याध का बाण सहना पड़ा। हमने भी श्री कृष्ण से प्रेम किया किन्तु उन्होंने चलते समय (सान्त्वना की) कोई बात नहीं कही। सूरदास जी कहते हैं कि प्रभु के बिना गोपियों का दुख दूना हो गया है और उनके नेत्रों से आँसू बह रहा है।

टिप्पणी—इसमें अर्थान्तरन्यास अलंकार है क्योंकि जहाँ विशेष का उदाहरण देकर उससे किसी समान्य सिद्धान्त की पुष्टि की जाती है वह अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

✓सोहनी

२९—शब्दार्थ—बासर—दिन; चातक—पपीहा।

प्रसंग—कोई विरहिणी गोपी पपीहे की "पी-पी" की पुकार सुनकर उसे आशीर्वाद देती है और उसके सम दुःख भोगी होने की चर्चा अपनी सखी से करती है।

भावार्थ—प्यारे पपीहे ! तुम बहुत दिन तक जीते रहो। रात-दिन तुम प्रियतम का नाम पुकारा करते हो और उनकी विरहाग्नि से झुलसकर काले हो गये हो। तुम स्वयं दुखी हो और दूसरे के दुख को भी समझते हो इसलिए लोग तुम्हे 'चातक' कहते है। हे सखी ! जरा विचार करके देखो तो सही, वियोग का दुख कितना विचित्र होता है। प्रेम का नुकीला बाण जिसको लगता है वही उसकी पीर जानता है। सूरदास जी कहते हैं कि उतना होने पर भी पपीहा अपने प्रिय स्वाति जल के लिये सब कुछ त्याग करता है और समुद्र को खारी जल वाला समझकर उसे त्याग देता है।

टिप्पणी—इसमे प्रेम की अनन्यता पालन करने तथा सम-दुःखभोगी होने के कारण पपीहे को गोपियो द्वारा आशीर्वाद दिलाया गया है। यह बहुत स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी पद है।

सारङ्ग

३०—शब्दार्थ—बरन—मुख, दुराइ—छिपाकर, निसा-पति—चन्द्रमा।

सन्दर्भ—किसी वियोग-विधुरा गोपी को प्रलाप करते देखकर उसकी सखी समझाती है।

भावार्थ—ऐ सखी ! तू प्राणप्यारे का नाम क्यो रट रही है ? समझ ले। प्रियतम का यह प्रेम तेरे प्राणो को ले लेगा, तू अपनी आँखो मे इस प्रकार आँसू क्यो भर रही है ? आँसू भरने से तेरे हृदय का शूल कैसे दूर होगा ? तू उच्छ्वास क्यो ले रही है ? इससे तो तेरे हृदय रूपी बन में लगी वैरी विरह की दावाग्नि और भड़क उठेगी। सुगन्धित लेप और पुष्पो की सेज भी इस समय तेरे लिये दाहक है। गले मे तू पुष्पो का हार मत

पहन, नहीं तो इससे वक्षस्थल की हड्डियाँ तक जल जायँगी। तू यहाँ घर में अपना मुख छिपाकर बैठ, नहीं तो फिर चन्द्रमा उदय होकर तुझे कष्ट देने लगेगा। तू अपनी आँखों से चन्द्रमा की ओर न देख, नहीं तो वह जल जायगा।

टिप्पणी—इसमें वियोग शृंगार वर्णित है। इसमे नायिका की प्रलाप दशा है। अंतिम पंक्ति में अतिशयोक्ति की भी अति हो गयी है।

✓ बिलावल

३१-शब्दार्थ—गोसुत—बछड़े, आस—आशा।

प्रकरण—प्रवासी श्रीकृष्ण की सुधि करके ब्रजवासी कहते हैं।

भावार्थ—हे नाथ! हम अनाथों की सुधि लीजिए, यहाँ गोपियाँ, ग्वालें, गायें और बछड़े सभी अत्यन्त दीन और मलीन हो रहे हैं, इन सब का शरीर दिन-प्रतिदिन क्षीण हो रहा है और इन सबके नेत्रों से निकली हुई आँसू की धारा इतनी बढ़ रही है कि सारा ब्रज-मण्डल डूबने लगा है। आप इस डूबते हुए ब्रज को क्यों नहीं हाथ में धारण कर रक्षा करते? हे नाथ! आप से हमारी इतनी विनती है कि एक बार हमें चिट्ठी द्वारा अपना संदेश तो भेज दें। हे करुणासिन्धु! अपने चरण-कमल के दर्शन रूपी नाव पर हम लोगो को चढ़ाकर संसार में यश लीजिए। हे प्रभो! आपके दर्शन की हम लोग आशा करके बैठे हुए हैं। इसलिए कृपया एक बार ब्रज में पधारिए।

✓ मलार

३२-भावार्थ—घन—बादल; सदन—घर; सलिल—जल।

प्रकरण—भगवान् श्रीकृष्ण के मथुरा-प्रवास के कारण गोपियाँ बहुत दुखित थी। वे नित्य ही श्याम सुन्दर का स्मरण करके रोती और आँसू गिराती थी। इस दशा को ध्यान में रखकर कोई गोपी अपनी सखी से कहती है।

भावार्थ—हे सखी! इन नेत्रो से बादल हार गये। ये ऋतुकाल का ध्यान न करके रातदिन बरसते हैं जिसके कारण नेत्रो की कनीनिकाओ मे सदा धुन्धी सी पड़ी रहती है। इन नेत्र रूपी बादलो के बरसने के साथ ही साथ ऊर्ध्व-श्वास रूपी वायु बड़ी तीव्र गति से चल रही है, इतने सुख रूपी अनेक वृक्षों को समूल उखाडकर फेंक दिया है। दुःख रूपी पावस से बचने के लिए बचन रूपी पक्षी डरकर दिशाओ को अपना निवास बनाये हुए हैं अर्थात् वियोगिनी ब्रज-वनिताओ के मुख से दुःख के कारण एक भी, शब्द नही निकलता। जिस प्रकार बादल थोडी-थोड़ी देर पर गरज-गरज कर पानी बरसाता है उसी प्रकार गोपियाँ जब श्रीकृष्ण का स्मरण कर रोती हैं तो उनकी आँखों से आँसू की धारा निकलने लगती है। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियो की अश्रु धारा से ब्रज डूब रहा है, अब गोवर्धन-धारण करने वाले श्रीकृष्ण के बिना कौन ब्रज को डूबने से बचा सकता है।

टिप्पणी—इस पद मे नेत्रो को मेघ बनाकर पावस का चित्र खींचा गया है। गोपियो के दुःख की पराकाष्ठा इस पद में दिखाई गयी है। इसमे प्रतीत, रूपक और अतिशयोक्ति अलंकार है।

✓ मलार

३३—शब्दार्थ—मदनें—कामदेव, पिक—कोयल, चहूँ-दिसि—चारो ओर; हुते—थे।

प्रकरण—वर्षा के प्रारम्भ म जब व्रज मे बादल आकाश पर दिखाई पडा-तो उस समय कोयल और पपीहे प्रसन्न होकर बोलने लगे इसे सुनकर वियोगिनी व्रज-वनिताओं के हृदय मे एक टीस सी उठती है। इसी का वर्णन कोई गोपी अपनी सखी से कर रही है।

भावार्थ—हे सखी! बादल व्रज पर वृष्टि करने के हेतु आकाश मे छा गये। जान पड़ता है कि श्याम ने कामदेव की सेना मधुवन मे भेज दी है जहाँ वह अपनी सेना को सुसज्जित कर रहा है। अपनी ग्रीवा ऊँचा कर और आँखों में आनन्द के आँसू भर कर पपीहा जो पी-पी कर रहा है और कोयल जो कुहक रही है, वही मानो कामदेव के युद्ध का बाजा है। श्याम के विरह ने अपने अपने रूप बना कर हमे चारों ओर से घेर रक्खा है इसलिए अब हम किधर-कैसे भागें। अभी तक यह कहा जाता था कि श्याम दूसरे की पीड़ा को समझने वाले हैं पर वे हमारी पीड़ा को दूर करने के काम न आये उल्टा हमें विपत्ति-ग्रस्त बनाने के काम आये। वे तो अब मथुरा में राज करने लगे हैं और उनकी महिमा वही शोभा पा रही है।

टिप्पणी—इनमें रूपक अलकार द्वारा गोपियो का विरह-वर्णन करते हुए प्रथम वर्षा का चित्र खींचा गया है देखिए चतुर्थ पंक्ति में जो वर्णन किया गया है वह कितना सुन्दर है बात भी सच है, चारों ओर से सेना द्वारा घिर जाने पर प्राण रक्षा कैसे सम्भव हो सकेगी।

सोरठ

३४—**शब्दार्थ**—मदनगोपाल—श्रीकृष्ण ; मग—राह ; हारे—थक गये।

प्रसंग—जब गोपियों ने यह सुना कि जरासन्ध क उपद्रवों के कारण श्रीकृष्ण जी मथुरा त्यागकर द्वारिका के प्रवासी हुए हैं तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। इसी बात को कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है।

भावार्थ—हे सखी! हमारे नेत्र अब अनाथ हो गये। सुना है कि श्रीकृष्ण जी मथुरा से भी अधिक दूर (द्वारिका) चले गये हैं। भगवान श्रीकृष्ण जी जल रूप हैं और हम बेचारी मछलियो के सदृश्य हैं, उनसे अलग होकर अब कैसे जियें? हम चातकी थी और वे कृष्ण मेघ थे। हम चकोरी बनकर प्यारे के मुखचन्द्र की सुधा-चन्द्रिका को नित्य पान किया करती थी। अभी तक हम उनके दर्शन की आशा किये मधुबन मे बास करती थीं। हमारे नेत्र यहाँ उनकी राह देखते-देखते थक गये किन्तु उनके दर्शन न हो सके। हे सखी! मैं अब क्या बताऊँ। द्वारिका-प्रवासी बनकर श्रीकृष्ण ने ऐसा किया है जैसे कोई मरे हुए को मारे।

टिप्पणी—प्रियतम के द्वारिका-प्रवास का दुखद समाचार सुनकर गोपियो को जो आघात पहुँचा है उसका चित्रण इस पद में किया गया है।

✓ आसावरी

३५—शब्दार्थ—रसना—जिह्वा ; पठई—भेजा, विदा किया।

भावार्थ—एक दिन रास्ते में राधा और कृष्ण की भेंट हो गयी। वे इस प्रकार चिपक कर गले मिले कि राधा कृष्ण के समान और कृष्ण राधा के समान दिखाई देने लगे। उनकी दशा कीट-भृङ्ग की तरह हो गयी। राधिका श्रीकृष्ण के

प्रेम में शराबोर हुई और श्रीकृष्ण राधिका के प्रेम में। राधिका और श्रीकृष्ण के निरन्तर बढ़ने वाले प्रेम का वर्णन वाणी नहीं कर सकती। श्रीकृष्ण जी ने राधिका से मुसकाकर कहा कि "मुझ में और तुम में अब कुछ अन्तर नहीं है।" ऐसा कहकर उन्होंने राधिका को विदा किया। महात्मा सूरदास जी कहते हैं कि राधा और श्रीकृष्ण का यह व्रज-विहार नित्य नवीनता से युक्त रहता है।

टिप्पणी—इसमें संयोग-श्रृंगार वर्णित है। अलंकार उपमेयोपमा है।

कान्हरा

३६-शब्दार्थ—बीच—अन्तर; सन्तत—सदा; अवलम्ब—आश्रय।

सन्दर्भ—श्री कृष्ण के भेजे हुए उद्धव जी गोपियों को निर्गुण ब्रह्म की आराधना का उपदेश करते हैं। गोपियाँ उनके इस उपदेश का खण्डन करती हैं।

भावार्थ—हे उद्धव जी! पहले आप व्रज की स्थिति पर विचार कर लें, तत्पश्चात् अपनी इस सिद्धि और योग कथा का प्रचार करें। आप अपने मन में उस बात पर विचार करें जिस के कारण कृष्ण ने आपको यहाँ भेजा है। विरह और परमार्थ-साधन में कितना अन्तर है, यह आप जानते हैं या नहीं? आप प्रवीण हैं, अपने को चतुर लगाते हैं तथा सदैव प्रभु के निकट रहते हैं इतना होते हुए भी हम जल में डूबती हुई गोपियों को फेन का अवलम्ब ग्रहण कराने की क्यों सोचते हो? बताओ, हम हरि की मुस्कान और मनोहर चितवन को अपने हृदय से कैसे हटावें? हम मुरलीधर की उस मुरली पर आपकी योग-युक्ति

और परमनिधि के समान मुक्ति को निछावर करती हैं। भला बताइये, जिस हृदय मे कमल-नयन श्रीकृष्ण वास करते हैं वहाँ निर्गुण ब्रह्म का प्रवेश कैसे हो सकता है? हम उस भजन का परित्याग करती हैं जो कन्हैया से विमुख कराकर दूसरे की उपासना पर जोर देता है।

टिप्पणी—इस पद में निर्गुण मत का खण्डन और सगुण मत का मण्डन अत्यन्त सुन्दर रीति से किया गया है। देखिये, गोपियो की युक्ति इसमे कितनी जोरदार है।

श्री

३७-शब्दार्थ—अकाश—शून्य ; निर्गुण ब्रह्म।

प्रसंग—गोपियाँ उद्धव जी को समझाती हैं।

भावार्थ—हे उद्धव जी! ध्यानपूर्वक देखिये। न तो हम सब सच्ची विरहणी हैं और न आप प्रभु के सच्चे सेवक हैं। हम दोनो ही विपरीत धर्म का आश्रय ग्रहण किये हुये हैं। हम गोपियो ने श्रीकृष्ण जी के वियोग में उनके नाम का स्मरणकरते हुए अपने प्राणों की रक्षा की है और तुम प्रभु के सेवक होकर भी उनकी सेवा से विमुख हो रहे हो और शून्य की उपासना कर रहे हो। देखिए सच्ची विरहणी है मछली, जो जल से विलग होते ही जीने की आशा का त्याग कर अपने प्राण खो देती है। इसी प्रकार सच्ची दास-भावना पपीहे में है क्योंकि वह प्यासा रह जाता है पर स्वाति-मेघ के सिवा अन्य से जल की याचना नही करता। कमल भी चन्द्रमा से अकारण ही उदासीनता रखता है, यह सूर्य से सच्चा प्रेम करता है किन्तु अपने इस प्रेमी के उस दोष पर ध्यान नहीं देता जिससे जलाशय का जल सूख जाता है। यह विधाता द्वारा जल से वचित किये जाने पर कीचड़ मे ही विहरता

हुआ उसी के साथ नष्ट हो जाता है। अपने प्यारे पुत्र राम के वन-गमन से दुखी होकर महाराज दशरथ ने अपने प्राण त्याग दिये और इस प्रकार सच्चे प्रेम को पूर्ण किया सूरदास जी कहते हैं कि गोपियों ने जगत के उपहास पर ध्यान न देकर श्रीकृष्ण में पतिव्रत धर्म का निर्वाह किया है

टिप्पणी—इसमें अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

बिलावल

३८—शब्दार्थ—निमिष—पल भर; काजैं—लिए; अलि भ्रमर। यहाँ अलि के नाम से उद्धव जी की ओर संकेत किया गया है।

सन्दर्भ—गोपियाँ उद्धव जी से प्रेम की मर्यादा कहती हैं

भावार्थ—हे अलि! सभी ने प्रेम के कारण संसार को त्याग दिया। स्वाति-नक्षत्र में गिरने वाली बूँदों का प्रेम पपीहा नहीं त्यागता, इसलिये प्रत्यक्ष रूप से 'पी-पी' की रट लगाता है। मछली अपने प्रेमी जल की बातें अच्छी तरह समझती है और अंत में विवश होकर अपने प्राणों को छोड़ देती है। हिरन जानते हुए भी बीन की मधुर ध्वनि का मोह नहीं छोड़ता और इसी कारण वह व्याध के बाणों का शिकार होता है। चकोर ने चन्द्रमा को देखते-देखते युग व्यतीत कर दिया किन्तु पल भर के लिये भी उसने अपनी पलकें बन्द नहीं कीं। पतिंगा दीपक की लौ को देखकर अपने शरीर को जला डालता है. उसका प्रेम-घट कभी रिक्त नहीं होता। हमें भी इन्हीं प्रेमियों का अनुसरण करना चाहिये; फिर हम लोगों के साथ श्रीकृष्ण जी ने जो-जो भलाइयाँ की हैं, उन्हें कैसे भुलाएँ और इस एक देह के कारण हम श्याम को कैसे छोड़ें?

टिप्पणी—इसमें प्रेम को पूर्ण करने के लिए आत्मोत्सर्ग की बात कही गयी है और कतिपय प्रेमियों के दृष्टान्त दिये गये हैं। इनमे अर्थान्तरन्यास अलकार है।

धनाश्री

३९–शब्दार्थ—ताती—गर्म, परसत—छूने से, मदन—कामदेव।

प्रकरण—मथुरा-प्रवास के बहुत दिनों बाद श्रीकृष्ण ने एक चिट्ठी भेजी है। जिसके विषय में वियोगिनी गोपी कहती है।

भावार्थ—व्रज मे श्रीकृष्ण की भेजी हुई चिट्ठी को कोई नही पढ़ता, फिर भी न जाने क्यो वे छुरी की भाँति आघात करने वाली विरह की कठिन गाथा लिख-लिखकर भेज रहे हैं। वियोग के कारण यहाँ सभी गोपियों की आँखो मे आँसू भरे हुए हैं और हाथो की उँगलियाँ जल रही हैं। चिट्ठी का कागद कोमल है इसलिए छूने से उसके जल जाने का डर है और देखने से भीगने का डर है। दोनों ही भाँति हार्दिक दुख है। सूरदास जी कहते हैं कि काम के बाणो से घायल हुई ये गोपियाँ उन अक्षरों को किस प्रकार बाँचकर अपनी छाती शीतल करें। ये तो श्यामसुन्दर के चरणों को देखकर ही रात दिन जीती हैं।

टिप्पणी—इस पद की कल्पना अधिक ऊहात्मक हो गयी हैं। इसमें अतिशयोक्ति अलंकार है।

केदारा

४०–शब्दार्थ—अड़े—अटक गये हैं।

प्रकरण—गोपियाँ उद्धव जी से अपना और श्रीकृष्ण का प्रेम वर्णन करती हैं।

भावार्थ—हे उद्धव जी, हमारे हृदय में माखन-चोर श्रीकृष्ण की त्रिभंगी मूर्ति गड़ गयी है। हृदय में जाकर यह त्रिभंगी मूर्ति तिरछी हो गयी है और अब उपाय करने पर भी किसी प्रकार नहीं निकलती है। यशोदानन्दन श्रीकृष्ण जी यद्यपि अहीर हैं फिर भी छोड़े नहीं जाते। अब वे मथुरा जाकर यदुवंश के प्रतिष्ठित कुल में सम्मिलित हो गये हैं पर वहाँ पर भी वे हम बड़े नहीं लगते। हम नहीं जानतीं कि वासुदेव कौन हैं और देवकी कौन हैं। इस समय श्यामसुन्दर के देखे बिना हमें और कोई बात नहीं सूझती।

टिप्पणी—"तिरछे ह्वै जु अड़े" इस पद का मर्वस्व है यह प्रकृत सिद्ध बात है कि कोई बड़ी और टेढ़ी वस्तु किसी संकीर्ण मुँह वाले बर्तन के अन्दर यदि अटक जाती है तो प्रयत्न करने पर भी उसका निकलना कठिन ही होता है। यही गति गोपियों की है, मन में श्याम की जो त्रिभंगी मूर्ति गड़ गयी है वह क्यों निकलने लगे?

बिलावल

४—शब्दार्थ—दाख—अंगूर; मधुप—भ्रमर।

भावार्थ—गोपियाँ उद्धव जी से कहती हैं कि हे उद्धव जी! यह तो अपने मन पड़े की बात है कि कोई किसी से प्रेम करे। देखिए, विष का कीड़ा अंगूर और छुहारा जैसा अमृत फल छोड़कर विष खाता है। यदि चकोर को कपूर जैसी वस्तु दी जाय तो वह उसे त्याग कर अंगार खाता है और उसी में अपनी तृप्ति मानता है। जो भौंरा काठ में छेद करके उसमें अपना वासस्थान बना लेता है वही कमल के पत्तों में बँध जाता है। इसी प्रकार पतिंगा अपना हित जानकर दीपक से लिपट जाता है। (यद्यपि

ऐसा कर वह अपने प्राणों को खो देता है) सूरदास जी कहते हैं कि जिसके मन मे जिसकी चाहना है वही उसको प्यारा लगता है (भले ही उसका प्रिय उसके लिये हितकर न सिद्ध हो)।

टिप्पणी—इस पद में अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

भैरवी

२४-**शब्दार्थ**—कृस—दुर्बल।

सन्दर्भ—व्रज से लौटे हुए उद्धव श्रीकृष्ण जी से व्रज का समाचार कहते हैं।

भावार्थ—हे श्रीकृष्ण जी! सुनिए तुम्हारे विना व्रजवासी जिस प्रकार अपना दिन काट रहे हैं उसको तुमसे कहाँ तक कहूँ। वहाँ पर गोपियाँ, गोप, गायें और बछड़े इतने दुबले और मलीन हो गए हैं जैसे शिशिर में हिम के आघात से कमल-पुष्प पत्ते से हीन और अत्यन्त दीन हो जाता है। सभी व्रजवासी यदि किसी को दूर से आता हुआ देखते हैं तो (यह अनुमान करके कि यह श्रीकृष्ण के पास से आ रहा होगा) उससे तुम्हारा कुशल-समाचार पूछने लगते हैं और अत्यन्त प्रेमातुर होकर उसके हाथ जोड़ते हैं, पैर पकड़ते हैं और उसे आगे नही बढ़ने देते। पपीहा और कोयल इन व्रजवासियों के मारे वन मे रहने नही पाते और कौआ बलि का अन्न भी नही खाता। यात्री तो सदेशो के डर से उस रास्ते पर अब जाते ही नहीं।

टिप्पणी—इनमे उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकार है।

देश

४३-**शब्दार्थ**—छीन—दुबली।

संदर्भ—उद्धव श्रीकृष्ण जी से राधिका जी की दशा कहते हैं।

भावार्थ—हे सुजान श्याम ! तनिक चित्त देकर (राधिका की बात) सुनिये। मैंने तुम्हारे विरह मे राधिका जी को बहुत क्षीण देखा है। उन्होंने तेल लगाना, ताम्बूल खाना और भूषण पहिनना त्याग दिया है, वे अब मलीन वस्त्र धारण करती हैं। शरीर की क्षीणता के कारण राधिका की कलाई का कगन भुजा तक चढ़ गया है। वे जब अपना सन्देश तुम से कहने के लिए मेरे पास आई तो करधनी खिसक कर चरणों मे उलझ गयी और वे शक्तिहीना उसमे अटक कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। उनके कंठ से उस समय वाणी नहीं निकलती थी। (अपनी असमर्थता देख कर) आँखों मे आँसू भर कर वे रो पड़ी। उनका हृदय आपत्ति ग्रस्त और दीन है। पृथ्वी पर गिरने के पश्चात् राधिका जी एक वीर के समान अत्यन्त साहस करके उठी। (ऐसी संकट पूर्ण परिस्थिति में) हे प्रभो ! वे आप से मिलने की आशा करके ही जी रही हैं और इसी मे वे अपना कल्याण मान रही हैं।

टिप्पणी—इसमें विरह-विधुरा राधिका जी के शरीर के विरह-जन्य कृशता दिखाई गई है। इसमें अतिशयोक्ति की भी अति हो गयी है।

✓मलार

४४—**शब्दार्थ**—मधुकर—भ्रमर (यहाँ पर इस शब्द से उद्धव जी को सम्बोधित किया गया है। स्वान-पूँछ—कुत्ते की पूँछ ; नलिन—कमल ; अमिय—अमृत ।

सन्दर्भ—गोपियाँ उद्धव जी से कहती हैं।

भावार्थ—हे मधुकर ! (उद्धव जी) हमारे ये मन (आज कल) बिगड़ गये हैं। ये गीता का ज्ञान समझने की चेष्टा नहीं

करते (और व्यर्थ ही) श्रीकृष्ण की मधुर-मुसकान मे फँस गये हैं। श्रीकृष्ण के सौन्दर्य-रस का पान करके ये उसी प्रकार अत्यन्त कुटिल और खरे हो गये हैं तथा बहुत समझाने से भी नही मानते, जिस प्रकार कुत्ते की पूँछ करोड़ों यत्न करने पर भी सीधी नही होती। ये हरि के चरण-कमलो को थोड़ी देर के लिए भी नही भूलते क्योंकि उनको पाकर ही हृदय में शीतलता का सचार होता है। आपकी योग-गाथा गहरी अन्ध-कूप है, जिसे दूर से देखने में ही डर मालूम होता है। भगवान् श्रीकृष्ण का प्रेम ही हम लोगो का सुहाग और भाग है। भले ही श्रीकृष्ण के वियोग मे अपना सारा जीवन व्यतीत करना पड़े किन्तु हम उनके अनुरागामृत को छोड़कर आपके इस योग रूपी विष को, (जो हमे नष्ट कर सकता है) कदापि न स्वीकार करेंगी।

टिप्पणी—इसमें उपमा अलकार है।

धनाश्री

४५—**शब्दार्थ**—हुतो—था ; आराधै—आराधना करै।

भावार्थ—गोपियाँ उद्धव जी से कहती हैं कि हे उद्धव जी! हमारे दस-बीस मन नही है। हमारे पास केवल एक मन था वह तो श्रीकृष्ण के सग चला गया, ऐसी दशा मे अब आपके निर्गुण ब्रह्म की आराधना कौन करे? श्रीकृष्ण के बिना हम सब ऐसी व्यर्थ हो गयी हैं जैसे बिना शिर के शरीर। हमारी श्वासें कृष्ण-दर्शन की आशा से ही चल रही हैं। भगवान् उन्हे करोड़ों वर्ष तक जीता रक्खे। आप (उद्धव जी) श्यामसुन्दर के मित्र और सब प्रकार के योगो के स्वामी हैं। हमारी प्रार्थना है कि जगदीश्वर (श्रीकृष्ण) हमारी प्रेम-भरी बातें पूर्ण करें।

टिप्पणी—'मन नाहीं दस-बीस' इस पद का सर्वस्व है। जान पड़ता है कि इस पद में निर्गुण-ब्रह्म की स्थिति सिद्धान्त रूप से गोपियों ने स्वीकार कर ली है पर प्रकारान्तर से यह कहकर कि, हमारा मन तो श्रीकृष्ण में उलझा हुआ है, अब निर्गुण ब्रह्म की आराधना कौन करे, इसे अव्यवहार्य ठहराया है।

✓ ईमन

४६—**शब्दार्थ**—बिसरत नाहीं—भूलता नहीं है।

भावार्थ—श्रीकृष्ण जी उद्धव से कहते हैं कि हे उद्धव! ब्रज मुझे भूलता नहीं है, मैं ब्रज में घने वृक्षों की छाया के नीचे-नीचे चलकर वृन्दावन से गोकुल आया करता था। प्रातःकाल नन्द और यशोदा मुझे देखकर प्रसन्न होते थे और अत्यन्त प्रेम से दही से सजायी हुई मक्खन-रोटी हमें खिलाया करते थे। मैं गोपियों और ग्वाल-बाल के साथ खेलता था। सारे दिन हँसते-हँसते बीतते थे। सूरदास जी कहते हैं कि वे ब्रजवासी धन्य हैं, धन्य हैं जिनके संग ब्रजनाथ श्रीकृष्ण जी मनोविनोद किया करते थे।

टिप्पणी—इसमें स्मरण अलंकार है।

✓ ईमन

४७—**शब्दार्थ**च—हुँधा—चारों ओर; पसारे—फैलाये हुए।

शब्दार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि अब मुझे रात को देखते ही डर लगता है। हमारे प्राण बार-बार आकुल होकर इस शरीर से भाग निकलने की चेष्टा करते हैं। पूर्व-दिशा में पूर्णिमा का चन्द्र देखकर हमारा शरीर अत्यन्त गर्म हो गया है मानों हम

विरहिणियों को देखकर उसने क्रोध किया है। उसने भौहों को तिरछी करके अपने कलंक-चाप पर क्रोध से बाण चढ़ाया है और चारो ओर किरण रूपी बाणों को प्रसारित किया है इस प्रकार उसने हठात् हमे जोगिन बनाना चाहा है। ऐ मूर्ख चन्द्र ! तू सुन। मेरा प्राणपति वही है जिसके यश को ससार जानता है और जिसने तुझे समुद्र मे डूबने से बचा लिया है, तिस पर भी तू उसके उपकार को नहीं मानता है।

टिप्पणी—इसमे वियोग शृंगार है। पूर्णिमा का चन्द्र यहाँ पर विरहिणियो के लिए दुखदायी है। इसमे उत्प्रेक्षा अलकार है।

मलार

४८-शब्दार्थ—माई—सखी ; खरे—जोर से।

भावार्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी ! मोर भी अब बैर करने लगे है। बादल गरजते हैं, वे मना करने से नही मानते और उनकी देखादेखी अपेक्षाकृत अधिक आवाज से ये मोर भी कुहुक रहे हैं। श्रीकृष्ण ने इनके पखों को बीन करके इकट्ठा किया है और अपने शिर पर धारण किया है। श्रीकृष्ण ने ही इनको ढीठ किया है। इसी कारण से ये हमें सताते हैं। हे सखी ! पता नही क्यो ये हमसे रार करते हैं। श्रीकृष्ण तो परदेश चले गये किन्तु ये मोर अभी तक बन से नही हटे।

टिप्पणी—वर्षा काल मे मोर की कुहुक वियोगिनियो को किस प्रकार दुख देने वाली होती है, यह इसमे सुन्दर ढङ्ग से दर्शायी गया है।

मालकोश

४१–शब्दार्थ—मम—सतोष।

सन्दर्भ—विदा होते समय श्रीकृष्ण जी ब्रजवासियों को सान्त्वना देते हैं।

भावार्थ—हे ब्रजवासियो! ब्रज का हित करना ही मेरे लिए इष्ट है। मैं सबके निकट रहता हूँ, किसीसे भी दूर नहीं हूँ। मैं रात-दिन उस (व्यक्ति) का उसी प्रकार चिन्तन करता हूँ जो जिस प्रकार मेरा स्मरण करता रहता है। जिस प्रकार दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब भली-भाँति दिखाई देता है उसी प्रकार भक्त भक्ति रूपी दर्पण में अपने प्रेम का वास्तविक प्रतिबिम्ब देखता है। श्रीकृष्ण जी ऐसा कहकर सभी व्यक्तियों को सान्त्वना दे रहे थे, उस समय उनकी आँखों से आंसू भर आये थे। सूरदास जी कहते हैं कि कृष्ण का यह प्रेम मुझ से कहा नहीं जाता।

टिप्पणी—इसमें बताया गया है कि प्रभु सर्वत्र व्याप्त हैं। जो उनसे जितना प्रेम करेगा उस पर उतनी ही कृपा होगी।

बिलावल

५०–शब्दार्थ—सर—बाण, वपु—शरीर,

भावार्थ—महात्मा सूरदास जी कहते हैं कि कामदेव के समान सुन्दर हे गोविन्द! हे मुरारी! आपको बारम्बार नमस्कार है। माया, लोभ, क्रोध और अभिमान तथा सत्व, रज और तम आदि गुण जीव के लिए फाँस के समान हैं। काल सदा (जीव को अपना लक्ष्य बनाने के लिए) बाण साधे रहता है। फिर तुम्हारा स्मरण कोई मनुष्य कैसे करे। तुम निर्गुण और निराकार हो। देवता गण प्रयत्न करके थक गए किन्तु तुम्हारा वास्तविक रहस्य न

जान सके फिर बेचारे मनुष्य की क्या सामर्थ्य जो तुम्हें ठीक-ठीक जान सके। तुम सतयुग में श्वेत, द्वापर मे लाल और कलियुग मे कृष्ण वर्ण का शरीर धारण कर अवतरित हुए हो। ऐसे ससार को मिथ्या कैसे कहा जाय जहाँ कितने ही व्यक्ति तुम्हारा गुण गान करते हुए भवबंधन से मुक्त हो गये। जिस प्रेम-स्वरूपा भक्ति के विना जीव को मुक्ति नही मिलती, हे नाथ! कृपया उसे प्रदान कीजिए। हमने ससार मे और सब कुछ करके देख लिया और अत मे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि तुम्हारी कृपा से ही सब कुछ सिद्ध हो सकता है। हे प्रभो! यह शरीर एक ग्राम के सदृश्य है। इसमे शब्द, रूप, रस, गध और स्पर्श आदि इन्द्रियो के विषय विश्राम-स्थल हैं। हे भगवान्! तुम सब के अधिष्ठाता हो। ससार आप की स्थिति को अभी तक नही जान पाया है। हे नाथ! तुम्हारी श्वास में पृथ्वी की स्थिति है और हम सब भी तुम्हारे श्वास-रूप हैं। हम क्या कहकर तुम्हारी स्तुति करें। हम "नमस्ते-नमस्ते" कहकर तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे प्रभो! तुम जगत्पिता हो इसलिए हे जगदीश्वर! हम तुम्हारी विनती करते हैं। तुम्हारे समान और कोई दूसरा नही है। हे नाथ! हम तुम से किसकी उपमा दे। जिस प्रकार शुकदेव जी ने वेद की स्तुति गाई है वैसे ही मैंने भी तुम्हारी विनती की है। सूरदास जी अपने श्री-मुख से कहते हैं कि जो भगवान् का नाम-स्मरण करता है वह भवसागर पार हो जाता है।

जैतिश्री

५१—शब्दार्थ—कहा—क्या , अनुचर—पीछे चलने वाला, सेवक।

भावार्थ—हे नाथ! आप जैसे ही मुझे रक्खेगे मैं वैसे ही

रहूँगा। आप सभी के दुख-सुख को जानते हैं अतएव मै अपने मुख से अपने विपय मे क्या कहूँ ? हे कृपानिधि ! मुझे तो कभी पेट भर भोजन मिल जाता है और कभी वैसे ही भूखा रह जाना पड़ता है। कभी हाथी-घोडे पर चढकर घूमता हूँ और कभी स्वयं बोझा ढोता हूँ। हे कमल-नयन श्रीकृष्ण जी ! मैं आप का दास बनना चाहता हूँ, इसलिए हे कृपानिधि ! मै आप के पैरो को पकड़ता हूँ। कृपया मुझे अपना लीजिए।

टिप्पणी—इसमे प्रकारान्तर से अपनी यथास्थिति मे संतोप मानकर प्रभु की सेवा मे निरत रहने क लिए कहा गया है।

✓धनाश्री

५२—शब्दार्थ—श्रवण-पात्र—कान रूपी पात्र, काकी-किसका तोको—तुझे।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि हे जीव रूपी तोते ! तू अब उस वन में अर्थात् गोलोक में चल जहाँ पर तुझे अपने श्रवण रूपी पात्र मे कृष्ण नाम रूपी अमृत रस खूब पीने को मिले। तात्पर्य यह है कि जीव को गोलाक मे जाने का यत्न करना चाहिए जहाँ पर हर समय भगवन्नाम का सकीर्तन होता है। देख, यहाँ ससार में कौन किसका पुत्र है और कौन किसका पिता है अर्थात् कोई किसी का न तो पिता है और न कोई किसी का पुत्र ही है। वस्तुत यह ससार का मिथ्या-भ्रम है। ऐ जीव रूपी सुए ! तुझे काल रूपी बिलार ले जायगा और तू 'यह मेरा है, यह मेरा है" कहता ही रह जायगा और कुछ भी नहीं कर सकेगा। इसलिए तू मेरे साथ चल, मैं तुझे प्रभु के अनेक प्रकार के आनन्द से परिपूर्ण मुक्ति-क्षेत्र का दर्शन कराऊँगा। तुझे यदि साधुओं की संगति मिल जाय तो तेरा बहुत बड़ा भाग्य है।

टिप्पणी—इसमें साधुओं के सत्संग से जीव को मुक्ति बताई गयी है।

✓ विहाग

५३—शब्दार्थ—रॉच्यो—रँग गया, लीन हो गया।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि ऐ मूर्ख मन! तू ने व्यर्थ ही में अपना यह जन्म खो दिया है। तू ने अभिमान किया और विषयों में तल्लीनता दिखायी किन्तु भगवान् की शरण नहीं आया। तू सेमर के फूल के समान संसार को सुन्दर समझ कर उसीमें भूल गया किन्तु जब तू संसार रूपी सेमर फल को चखने लगा तो इसमें तुझे रुई के भूहे ही भूहे मिले। ऐसी दशा में तुझे इससे कुछ लाभ नहीं हुआ। तू इस समय संसार से निराश है किन्तु हे मन! अब कुछ सोचना ही व्यर्थ है, जब कि तू ने भगवान के भजन की पहले से कमाई नहीं की है। तू ही देख कि भगवान् के भजन बिना तुझे अब किस प्रकार सिर धुनना और पछताना पड़ रहा है।

टिप्पणी—इसमें शान्त रस है।

✓ गौरी

५४—शब्दार्थ- घनेरी—बहुत; दुर्लभ—कठिन।

भावार्थ—महात्मा सूरदास जी कहते हैं कि हे मन! जिस दिन जीव रूपी पक्षी इस शरीर रूपी वृक्ष पर से उड़ जायगा उस दिन तेरे शरीर रूपी वृक्ष के सभी पत्ते झड़ जायेंगे। तेरे शव को देखकर लोग कहेंगे कि इसे तुरत निकालो नहीं तो भूत बनकर यह किसी को पकड़ लेगा। तू जिसका सबसे प्यारा रहा वह भी तेरी यह दशा देखकर घृणा करेगा। उस समय न तो तेरा पहले का सा शरीर रहेगा और न पहले की सी शोभा ही,

सभी तेरा दाह-संस्कार कर तेरी धूल उड़ायेंगे। भाई-बंधु और कुटुम्ब के सभी लोग तेरा स्मरण कर पश्चात्ताप करेंगे। देख, श्रीकृष्ण के अतिरिक्त संसार में अपना कोई नहीं है। मरने के पश्चात् तेरा यश और अपयश ही शेष रह जायगा। इसलिए तू सत्संग कर, वहाँ तुझे वह वस्तु मिलेगी जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।

टिप्पणी—इस पद में मरने के पश्चात् का दृश्य खींचकर जीव के हृदय में वैराग्य उत्पन्न किया गया है।

सारङ्ग

५५—शब्दार्थ—रसना—जिह्वा; बौरे—मूर्ख; बिरथा—व्यर्थ।

भावार्थ—महात्मा सूरदास जी कहते हैं कि हे मन! तेरा यह जीवन व्यर्थ में नष्ट हो रहा है। तनिक सोच तो सही कि वृक्ष के पत्ते के समान इस शरीर से बिछुड़कर तू फिर इससे कैसे मिल सकेगा। मृत्यु के समय वात, पित्त और कफ का जोर होने से तुझे सन्निपात होगा और कंठ-अवरुद्ध होने के कारण तेरे मुख से बात तक न निकलेगी। हे मूर्ख, जब यम के दूत तेरा प्राण निकालकर ले चलेंगे तो उस समय माता-पिता देखते ही रह जायँगे। इनसे कुछ करते नहीं बनेगा। नरक की बात तो पीछे रही, इस समय तुझे एक क्षण करोड़ों युग के समान प्रतीत होगा। रे मूर्ख मन, तेरा और संसार का यह प्रेम तोता-सेमल के प्रेम के समान निस्सार है। जैसे तोता सेमल पर आशा लगाता है किन्तु अंत में जब वह उसको चखने के लिए जाता है तो उसकी रुई देखकर वह बहुत ही निराश होता है, वैसे ही तुझे भी संसार से निराश होना पड़ेगा इसलिए तू यम के फंदे में न पड़ और

अपना चित्त प्रभु के चरणों में लगा दे। तू अपने हृदय में इस देह के लिए अभिमान न कर, इस पर गर्व करना व्यर्थ है।

टिप्पणी—इस पद में वैराग्य की प्रवृत्ति' दिखायी गयी है।

सारंग

५६—**शब्दार्थ**—सो—समान ; दाम—माला, समूह।

भावार्थ—महात्मा सूरदास जी कहते हैं कि व्रज का सा सुख संसार में कहाँ है। ऐ मन! तू विचार करके देख कि जमुना के किनारे जो सुखद वशीवट है, वैसा अन्यत्र कहाँ है? कहाँ मधुवन है, कहाँ कृष्ण के सङ्ग में राधा हैं और कहाँ सारी व्रजांगनाएँ हैं? कहाँ रस-रास के रचाने वाले आत्मानन्द श्रीकृष्ण जी गोपियों के बीच में हैं? कहाँ ऐसे बनधाम (मधुवन आदि) हैं जहाँ पर अनेको कुंज हैं और कहाँ कुंजो के बीच-बीच मे झूले पड़े हुए हैं और कहाँ पर वैसी लताएँ हैं तथा हमारे प्रभु के वियोग में मिलने वाला गोपियो का वह विरहानन्द कहाँ है?

टिप्पणी—इस पद मे व्रज का आनन्द वर्णन किया गया है और इस आनन्द को प्राप्त करने के लिये मन को प्रेरित किया गया है।

भैरवी

५७—**शब्दार्थ**—जुगल स्वरूप—राधा कृष्ण की युगल मूर्ति, श्रीपति—विष्णु।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि जो सदैव एकरस हैं, अखण्ड हैं, आदि और अनादि हैं तथा जो अनूप हैं वे युगल मूर्ति राधाकृष्ण जब विहार करते हैं तो करोड़ों कल्पो को बीतते देर नहीं लगती। विश्व के समस्त तत्व, ब्रह्माण्ड, समस्त देवता, माया, ब्रह्मा, काल, प्रकृति और लक्ष्मीपति

भगवान विष्णु आदि सभी गोपालकृष्ण के अंश हैं। कर्म, ज्ञान और उपासना ने सभी को भ्रमित कर रक्खा है इसलिए गुरु स्वामी वल्लभाचार्य जी ने सारस्वरूपा प्रेमपरा भक्ति का उपदेश दिया और रस-रास का रहस्य समझाया। स्वामी वल्लभाचार्य का उपदेश पाकर मैंने उसी दिन से प्रभु की लीला के गीत गाये और एक लाख पदों में प्रभु की वन्दना की। इस एक लाख के सग्रह का सार "सूर-सारावलि" है। इसे मैं आनन्द से गाता हूँ।

टिप्पणी—इस पद में सूरदास जी ने अपना वैष्णव-सिद्धान्त कहा है। प्रकृति, पुरुष, काल आदि सभी इसमें नित्य विहारी प्रभु के अंश मात्र बताये गये हैं। इसमें कवि ने अपनी एक लाख पदों की रचना का उल्लेख किया है।

बिलावल

५८-शब्दार्थ—बासा—वास, उर—हृदय, बिलंब—देर।

भावार्थ—महात्मा सूरदास जी कहते हैं कि "कृष्ण कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' कहकर प्रभु का स्मरण करो और भगवान्श्रीकृष्ण के चरण-कमलों को हृदय में रक्खो। जिस समय जहाँ पर भगवान् की कथा होती है वहाँ (उसी समय) गंगा जी आती हैं जमुना, सिन्धु, सरस्वती भी आती हैं तथा गोदावरी तो आने में विलम्ब ही नहीं करती. इस प्रकार सभी पवित्र नदियाँ उपस्थित हो जाती हैं। जहाँ पर भगवान् की कथा होती है वहाँ पर सब प्रकार के तीर्थ भी स्वतः उपस्थित हो जाते हैं।

टिप्पणी—इस पद में प्रभु के नाम-स्मरण की महत्ता प्रतिपादित की गयी है।

२—श्री नन्ददास

श्री नन्ददास जी स्वामी वल्लभाचार्य के पुत्र गोसाई विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। ब्रजभाषा के अष्टछाप के कवियो में श्री सूरदास जी के पश्चात् इन्हीं का स्थान है। ब्रजभाषा-साहित्य में जो परम्परा सूरदास जी ने चलायी वह बहुत दिनों तक चलती रही। श्री नन्ददास, रसखानि, आनन्दघन प्रभृति अनेक कवि इसी परम्परा में आते हैं। इन सभी भक्त कवियो ने भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का गायन संयोग और विप्रलम्भ शृंगार के रूप में किया है। नन्ददास जी ने उपर्युक्त रूप में श्रीकृष्ण की लीलाओं का गायन तो किया ही है साथ ही नायिका भेद, बारहमासा और षटऋतु वर्णन भी किया है।

नन्ददास जी के काव्य की समीक्षा—इनकी समस्त रचनाओं को देखने से पता चलता है कि ये उच्चकोटि के विद्वान्, भक्त, कथाकार तथा काव्य-शास्त्र के ज्ञाता थे। वल्लभ-सम्प्रदाय के सिद्धातो के कट्टर उपासक होने के कारण इनकी रचनाओ मे उक्त सम्प्रदाय की दार्शनिक विचारधारा का यथेष्ट निरूपण मिलता है। 'मान मञ्जरी और नाममाला' में 'अमरकोष' के आधार पर शब्दों के पर्यायवाची देते हुए राधिका का जो मान-वर्णन इन्होने किया है, वह अपूर्व है। इनकी कुछ रचनाओं में कहीं-कहीं कथा-शृङ्खला टूटी सी है पर ऐसे स्थलो पर भावानुभूति की जो सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है उससे इस दोष का परिहार हो जाता है। इन्होने शब्द-माधुर्य्य पर विशेष ध्यान दिया है इसलिए इनकी काव्य-भाषा मे लालित्य मिलता है।

रासपञ्चाध्यायी

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में २६ वें अध्याय से लेकर ३३ वें अध्याय तक में श्रीकृष्ण और गोपियों की रासक्रीड़ा का वर्णन है। अपने एक रसिक-मित्र के आग्रह करने पर श्री नन्द-दास जी ने इसे भाषा में लिखा जो इस प्रकार है—

शरत् पूर्णिमा की रात्रि को गोपियों के साथ रास-क्रीड़ा करने का उपयुक्त समय देखकर श्रीकृष्ण जी दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो वृन्दावन में चले आये। यहाँ अर्द्ध रात्रि के समय उन्होंने अपनी योगमाया-सी मुरली बजायी जिसे सुनते ही गोपियाँ अपने पिता, माता, बन्धु और पति को छोड़कर सावन की नदी की भाँति उमगित होकर चल पड़ीं और नन्दनन्दन के पास पहुँच गयीं। गोपियों को देखकर श्रीकृष्ण मुस्कराये और कहने लगे—

अहो तिया कहा जानि, भवन तजि कानन डगरीं।
अर्द्ध गयी सर्वरी कछुक डर डरीं न सगरीं॥

इसके पश्चात् उन्होंने सभी गोपियों को अपने-अपने घरों को वापस लौट जाने के लिए कहा। यह बात सुनते ही गोपियाँ दुखित हुईं और कहने लगीं—

अधर सुधा के लाभ भईं हम दासि तिहारीं।
ज्यों लुबधीं पद-कमलनि कमला नारी॥

जौं न देहु यह अधर अमृत, सुनि हो मोहन हरि।
करिहैं यह तन भसम, बिरह पावक-मों गिरि परि॥

तब तो,

बिहँसि मिले नन्दलाल, निरखि ब्रजबाल बिरह बस।
जदपि आतमाराम, रमत भये परम प्रेम बस॥

रास क्रीड़ा करते समय जब गोपियो ने देखा कि श्रीकृष्ण उनके सकतो पर नाच रहे हैं तो उन्हे अपने रूप, गुण और प्रेम पर गर्व हो गया। गोपियों की यह दशा देखकर श्रीकृष्ण जी उनका गर्व चूर्ण करने और प्रेम-वृद्धि करने के लिये किसी कुञ्ज मे छिप गये। प्रियतम को अपने बीच न पाकर गोपियां विरह की वेदना से विकल हो गयीं। उन्हे जड़-चैतन्य का कुछ भी ध्यान न रहा। वे वृन्दावन-स्थित सभी वृक्षों, लताओ तथा वन्य-पशुओ से श्रीकृष्ण का पता पूछने लगी, पर कहीं भी उनका पता न लगा अंततोगत्वा निराश होकर वे श्रीकृष्ण पर उपालम्भ करने लगी। गोपियों का दुख देखकर कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण जी द्रवित हो तत्काल उनके बीच प्रकट हो गये। नटनागर को अपने बीच सहसा देखकर गोपियां उनसे क्षमा-याचना करने लगी किन्तु श्रीकृष्ण जी ने गोपियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर तुरन्त ही उनके मन की गांस मिटा दी और पुनः पूर्ववत् रास-क्रीड़ा में सलग्न हो गये। रास-क्रीड़ा की समाप्ति के पश्चात् जल-क्रीड़ा हुई और फिर ब्राह्म-मुहूर्त्त के समय सभी गोपियां और श्रीकृष्ण अपने घरो को वापस आये।

सामान्यतया 'इस रासपञ्चाध्यायी' को पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह शृंगार रस से पूर्ण ऐसी रचना है जिसमें संयोग और वियोग दोनो का सुन्दर चित्रण हुआ है। इसमे श्रीकृष्ण जी उपपती हैं, गोपियां परकीया नायिकाएँ हैं, वशी दूती है और वृन्दावन की एकात भूमि एव शारदीय रात्रि आदि उद्दीपन हैं किन्तु कवि इस रचना को साधारण शृङ्गार रस की रचना नहीं बताता प्रत्युत वह कहता है कि जो लोग गोपियों को सामान्य नारियो की भाति देखते हैं, वे अन्धे हैं। मन्द मुस्कान और कटाक्ष आदि का रस क्या जानें? कवि कहता है कि जिस प्रकार विषयो से दूषित हुई इन्द्रियो द्वारा घट मे स्थित अन्तर्यामी

ईश्वर को नहीं पहचाना जा सकता उसी प्रकार इस 'रासपंचाध्यायी' के महत्व को मलीन आत्माएं नहीं समझ सकतीं। कवि की दृष्टि में गोपियां ही इसकी एक मात्र अधिकारिणी थीं—

नाद अमृत को पन्थ, रंगीलौ सूच्छम भारी।
तिहि ब्रजतिय भल चलैं, आन कोउ नहिं अधिकारी॥

क्योंकि—

ये हरि-रस ओपी गोपी सब तियनि तें न्यारी।
कवँल नैन गोविन्द-चन्द की प्रान पियारी॥

यही नहीं, प्रत्युत वे गोपियां निरमत्सर सन्तों की चूड़ामणि कही गयी हैं। श्रीकृष्ण जी के लिए कवि ने कहा है—

"परमातमा परब्रह्म, सबन के अन्तरजामी।
नारायन भगवान, धरम करि सब के स्वामी॥"

श्रीकृष्ण की मुरली नादब्रह्म की जननि है, और सभी प्रकार के सुखों को देने वाली है, श्रीकृष्ण ने उसकी ध्वनि से ही निगमागम को प्रकट किया है, वृन्दावन चिद्घन है, भगवान श्रीकृष्ण की ललित लीला-स्थली के कारण ही वह जड़रूप हुआ है। कवि ने अंत में इस 'रासपंचाध्यायी' के विषय में कहा है—

"जु कोउ प्रीत सों गान करै, अति सुनै गुनै हिय।
प्रेम भगति तेहिं देहि, दया करि हरि नागर पिय॥"

इस प्रकार 'रासपंचाध्यायी' नित्य पारायण करने योग्य माधुर्य-भक्ति पूर्ण रचना ठहरती है। इसमें स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा निर्णीत भक्तिपद्धति की पूरी छाप है इस की कथावस्तु बहुत छोटी है इस लिए कवि ने रसात्मकता की पूर्ति के लिए विशद भाव-चित्र प्रस्तुत किये हैं और घटनास्थली वृन्दावन का वर्णन विस्तार के साथ किया है। नन्ददास की 'रासपञ्चाध्यायी' वस्तुतः एक माधुर्य एवं कलापूर्ण कृति है।

इसकी अनुप्रास युक्त सरस पदावली तो हमे संस्कृत कवि जयदेव के 'गीत गोविन्द' की 'कुंज कुटीरे जमुना तीरे वसति वने वनमाली' आदि पंक्तियो का स्मरण दिला देती है।

भँवरगीत—यह नन्ददास जी का प्रसिद्धि-प्राप्त खण्ड-काव्य है। इसके कथानक का मूल आधार श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध मे वर्णित, 'भ्रमरगीत' का उपाख्यान और सूरदास जी का "भ्रमरगीत" है। नन्ददास जी ने सम्पूर्ण सामग्री का उपयोग कर उसे कलात्मक ढंग से प्रकट किया है। इनके वर्णन का क्रम इस प्रकार है—

उद्धव जी गोपियों के रूप, शील और गुण की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि मै श्याम का एक संदेश कहने तुम्हारे पास आया था किन्तु कहने के लिए अभी तक उपयुक्त अवसर नही प्राप्त हो सका। मैं श्याम का यह संदेश तुम से कहकर मथुरा लौट जाना चाहता हूँ। श्याम का नाम सुनते ही गोपियाँ प्रेम के मारे विह्वल हो गयी। इसके पश्चात् उन्होंने उद्धव जी को सुन्दर आसन पर बैठाया और उनकी पूजा, परिक्रमा और सेवा की। तत्पश्चात् वे उद्धव जी से श्रीकृष्ण का कुशल-क्षेम पूछने लगी। उद्धव जी गोपियो के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि हम तुम्हारी कुशलता जानने के लिए ही यहाँ आये हैं, तुम लोग अधीर न होओ, श्रीकृष्ण जी शीघ्र ही तुम सब से मिलेंगे। अब गोपियो को श्रीकृष्ण की सुन्दर मुद्रा स्मरण आती है और रूपासक्ति के कारण उन्हे मूर्च्छा आ जाती है। गोपियो की यह दशा देखकर उद्धव जी जल का छींटा देकर उन्हें सचेत करते हैं फिर तो उद्धव और गोपियो का निर्गुण-सगुण तथा योग और प्रेम पर शास्त्रार्थ चल पड़ता है। दोनों एक दूसरे के पक्ष का खण्डन और अपने पक्ष का मण्डन बड़ी ही सावधानी से करते हैं। उद्धव जी से बहस

करते करते गोपियों को अचानक फिर श्रीकृष्ण के स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। जिससे वे मुँह फेर कर बैठ जाती हैं और श्रीकृष्ण के प्रति अनुनय-विनय करती हैं तथा उपालम्भ देने लगती हैं। गोपियों की इस प्रेम-दशा को देखकर उद्धव जी का 'नेम' भाग गया है। अब वे अपने को अज्ञानांधकार में बीच पड़ा समझ कर बहुत लज्जित हो गये और मन ही मन कहने लगे—

मन में कह रज पाय कै, लै माथे निज धारि।
हौं तो कृत-कृत ह्वै रह्यो, त्रिभुवन आनन्द वारि॥
वन्दना जोग ये॥

इसी समय कहीं से एक भ्रमर उड़ता हुआ आकर गोपियों के बीच मँडराने लगता है और गोपियाँ उसको लक्ष्यकर उद्धव को उपालम्भ देने लगती हैं। उपालम्भ देते समय वे एकाएक रो पड़ती हैं। प्रेम का यह गम्भीरतम परिस्थिति देखकर उद्धव जी के संशयात्मक ज्ञान का विनाश हो जाता है और वे गोपियों के प्रेम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

अब रहिहौं ब्रज भूमि की, ह्वै मग मारग धूरि।
विचरत पद मो पै परे, सब सुख जीवन मूरि॥
मुनिन हूँ दुर्लभै॥
कै हौं ह्वै रहौं गुल्मलता बेली बन माँही॥
आवत जात सुभाव, परे मो पै परछाँही॥

इसके पश्चात् उद्धव जी मथुरा को लौट जाते हैं और वहाँ पहुँचकर वे श्रीकृष्ण जी पर क्रोध प्रकट करते हैं—

करुनामयी रसिकता है तुम्हारी सब झूँठी,
जबहिं लौं नहिं लखौ, तबहिं लौ बाँधी मूठी।
मैं जान्यो ब्रज जायकै तुम्हरो निर्दय रूप,
जे तुमको अवलम्बहीं तिनको मेलो कूप।
कौन यह धर्म है।

इसके पश्चात वे श्रीकृष्ण जी से सिफारिश करते हैं कि आप वृन्दावन जाकर गोपियों के बीच निवास कीजिए। उद्धव की बातों को सुनकर श्रीकृष्ण जी के नेत्र अश्रु-परिप्लुत हो गये। फिर वे कहने लगे—

भों मैं उनमैं अन्तरो, एकौ छिन भरि नाहिं।
ज्यौं देखौ मो माहिं वै, त्यों मैं उन हीं माहिं ॥
तरङ्गनि बारि ज्यौं ॥

इसके पश्चात् अपनी इस उक्ति को सत्य सिद्ध करने के लिए श्रीकृष्ण जी अपना गोपी रूप उद्धव को दिखाते हैं और उनके मोह को नष्ट कर देते हैं। यहीं पर इस प्रेम-रसवर्द्धिनी कथा की समाप्ति होती है।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि नन्ददास जी ने श्री मद्भागवत तथा सूरदास के 'भ्रमर गीत' से सामग्री ली है ऐसा करने में उनके 'भँवरगीत' और उपर्युक्त ग्रन्थो में जो विशेष अन्तर पड़ गया है, वह नीचे दिया जाता है। सर्व प्रथम श्रीमद्भागवत से इस की तुलना की जा रही है।

१—श्रीमद्भागवत में भ्रमर का आगमन गोपी उद्धव के कुशल प्रश्न के अनन्तर ही हो जाता है जिससे गोपियाँ प्रारम्भ से ही उपालम्भ देने लगती हैं किन्तु नन्ददास के 'भँवरगीत' में उद्धव गोपी शास्त्रार्थ तथा गोपी-विजय के पश्चात् भ्रमर का आगमन होता है जिससे गोपियाँ अपनी विरह-दशा के प्रदर्शन के लिये उपालम्भ करती हैं।

२—श्रीमद्भागवत में भ्रमर को उपालम्भ एक ही गोपी से दिलाया गया है जो समस्त गोपियों का प्रतिनिधित्व करती है किन्तु नन्ददास के 'भँवरगीत' में कई गोपियाँ पृथक-पृथक उपालम्भ देती हैं।

३—श्रीमद्भागवत में निर्गुण-सगुण की वैसी विशद व्याख्या

नहीं है जैसी नन्ददास के भवँरगीत मे है। श्रीमद्भागवत मे निर्गुण-सगुण का विषय सीधे ढग से व्यक्त किये गये उपदेश के रूप में मिलता है किन्तु 'भवँरगीत' में यह विषय पाण्डित्य पूर्ण तर्क-वितर्क पर आधारित है।

श्रीमद्भागवत की भांति सूरदास जी के भ्रमर गीत से भी कुछ विशेष मौलिक अन्तर है—

सूरदास जी ने अपने 'भ्रमरगीत' का प्रारम्भ तीन प्रकार से किया है—१—उद्धव द्वारा कृष्ण-सदेश वर्णन से, २—कुब्जा के सदेश से, ३—उद्धव और गोपी संवाद से। नन्ददास जी ने तीसरे वर्णन को चुना है। इसकी शैली भी सूरदासजी की है, हाँ छन्द के अन्त में नन्ददास जी ने दस मात्राओ की जो टेक दी है वह उनकी अपनी है। नन्ददास जी ने सूरदास के वर्णन को देखकर ही कई गोपियो से पृथक-पृथक उपालम्भ दिलाये हैं। सूरदास जी का 'भ्रमरगीत' मुक्तक काव्य है किन्तु नन्ददास जी का 'भवँरगीत' खण्ड-काव्य है, इसलिए गोपियो की मानसिक दशा का जितना अधिक और मनोहर वर्णन सूरदास जी के 'भ्रमरगीत' में मिलता है उतना नन्ददास के 'भवँरगीत' में नहीं मिलता। सूरदास जी के 'भ्रमरगीत' में गोपियों का विरह-समुद्र इतने जोरों से उमड़ा दिखायी पड़ता है कि उसे देखकर भयभीत हो उद्धव जी भाग खड़े होते हैं किन्तु नन्ददास के 'भवँरगीत' में दोनों ओर से खूब तर्क-वितर्क होता है तब कहीं जाकर उद्धव पराजित होते हैं। निष्कर्ष यह कि सूरदास की गोपियों का विरह और प्रेम हृदय की ओर से आता है किन्तु नददास की गोपियों का प्रेम मस्तिष्क की ओर से आता है। उनके प्रेम पर बुद्धि की गहरी छाप लगी दिखायी देती है। सूरदास जी ने योगमार्गियो तथा ज्ञानमार्गियों की खासी चुटकी लेकर उनकी बोलती बन्द की है किन्तु

नन्ददास जी ने ऐसा न कर तर्क-वितर्क द्वारा उनको निरुत्तर किया है।

भाषा और शैली—नन्ददास जी ने अपनी समस्त रचनाओ मे कोमल कान्त-पदावली का व्यवहार किया है जिस से उनमे माधुर्य और प्रसाद गुण प्रचुर परिमाण में मिलता है। इनकी भाषा भावो की अनुगामिनी, संगीतमयी, चित्रात्मक और सजीव है। इन्होने स्थान-स्थान पर व्रज क सुमधुर ठेठ शब्दो तथा कहावतो एव मुहाविरो का सुन्दर प्रयोग किया है। शब्दानुप्रास की सुन्दर छटा छहराते हुए इन्होंने शब्दो को मरोड़कर कही भी विकृत नही किया है। अरबी-फारसी शब्दो का प्रयोग इनकी रचना मे नही के बराबर है। इनकी वर्णन-शैली सरस, आकर्षक और संयत है। भाषा का जैसा अकृत्रिम और सुमधुर स्वरूप इनके काव्य में दृष्टिगत होता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

२—श्री नन्ददास

—:o:o::o—

रासपंचाध्यायी

रोला—यह मात्रिक छन्द है। इसमें ग्यारह और तेरह के विराम से चौबीस मात्राएँ होती हैं। अन्त में दो गुरु या दो लघु हो तो उत्तम रोला होता है।

१—**शब्दार्थ**—अविकारी—विकार रहित; भ्राजै—सुशोभित होता है; निसाकर—चन्द्रमा; दिवाकर—सूर्य; जानु—जाँघ, मकरंद—पराग।

भावार्थ—श्री नन्ददास जी कहते हैं कि मैं कल्याण करने वाले, दया के भण्डार श्री शुकदेव जी की वंदना करता हूँ जिनका स्वरूप विशुद्ध प्रकाशमय है और जो सदैव सुन्दर रहने वाले तथा निर्विकार हैं। श्री शुकदेव जी भगवतलीला के आनन्द में मस्त होकर सदैव विश्व में भ्रमण करते रहते हैं। इनकी गति अद्‌भुत है। कहीं भी इनके लिये रोक नहीं। ये एक बार नग्न स्नान करती हुई स्त्रियों के रास्ते से भी चले गये थे। इनका किशोरावस्था-प्राप्त शरीर नील-कमल के समान सुन्दर है। इनके केश की टेढ़ी लटें मुख पर इस प्रकार फैली हुई है मानो कमल पर मँडराती हुई भ्रमर-पंक्तियाँ शोभा पा रही हों। इनका सुन्दर विशाल 'मस्तक इस प्रकार प्रकाश कर रहा है मानों चन्द्रमा की किरणें चमक रही हों। ये कृष्ण-भक्ति पर पड़ी हुई अज्ञानान्धकार की छाया निवारण करने के लिए करोड़ों

सूर्य्य के समान हैं। कृपा और प्रेम-रस के भण्डार इनके नेत्र इस प्रकार ललाई लिए हुए है मानों ये कृष्ण के रसामृत का पान करके कुछ अलसाये और उनीदे हो। इनके कान श्रीकृष्ण-लीला-रस के भण्डार हैं। इनका गण्डस्थल बहुत भला दिखाई देता है। इनकी मधुर-मुस्कान मधुवर्षिणी है इसीसे भक्त-भौंरे प्रेमानन्द की प्राप्ति करते हैं। इनकी नासिका ऊँची उठी हुई है और इनके बिम्बाफल के सदृश्य ओष्ठ तोते की चोंच की शोभा को फीका करने वाले हैं। नासिका और ओष्ठ के मध्य मे उठती हुई अस्पष्ट मूछें (काली रेखाएँ) अद्भुत शोभा दे रही हैं। इनके शंख जैसे कठ की रेखाओ को देखकर भगवान् धर्म को प्रकाशित करते हैं जिसके तेज को देखते ही काम, क्रोध, मद लोभ और मोह नष्ट हो जाते हैं। इनके अत्यन्त सुन्दर उस वक्षस्थल की शोभा नही कहा जा सकती जिसमे श्रीकृष्ण की सुन्दर मूर्ति सदैव जगमगाती रहती है। पेट के मध्य मे उगी हुई सुन्दर रोम-पंक्ति इस प्रकार शोभा दे रही है मानो रस की पनारी हृदय रूपी सरोवर से उमड़कर बह रही हो। इनकी गहरी नाभि रस की कुण्डिका के समान प्रतीत हो रही है जिस में त्रिवली की रेखाएँ सुन्दर लहरो की भाँति उठती हुई दिखाई दे रही हैं। सुगठित शरीर के मध्य मे इनका सुन्दर कटि-प्रदेश सिंह की कमर की भाँति सुशोभित हो रहा है। इनका यौवन-मद सबको आकृष्ट करता है और सब पर प्रेमामृत की वृष्टि करता है। इनकी जाँघें सुदृढ़ हैं ये आजानुबाहु है, इनकी चाल मदमस्त हाथी की तरह है। ये गगा आदि नदियो को पवित्र करने के लिए पृथ्वी पर विचरण करते हैं। इनके चरण कमल की भांति सुन्दर हैं जिसके मधुर पराग का पान करने के लिए मुनियो के मन रूपी भौंरे लालायित रहते हैं [जब सूर्य के समान तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण परमधाम को चले गए तो सारे

संसार में अज्ञान का अन्धकार घुमड़कर छा गया। इस समय संसार के सभी प्राणियों को अज्ञानान्धकार से असित देखकर दयालु श्री शुकदेव जी ने श्रीमद्भागवत् रूपी सूर्य का अद्भुत प्रभाव प्रगट किया। जो संसार के अज्ञानान्धकार रूपी घर में छिपे जा रहे थे उनके हितार्थ कृपालु श्री शुकदेव जी ने एक अद्भुत दीपक प्रकट कर दिया। इसका नाम "श्रीमद्भागवत" है। यह बहुत ही मनोहर सुन्दर बुद्धि देने वाला, अत्यन्त सरल तथा वेदों का सार-रूप है। यह बिना गुरु की कृपा के अत्यन्त अगम है। इस 'श्रीमद्भागवत' में मणियों के सदृश प्रकाशमय तथा अत्यन्त रहस्य से पूर्ण रासपंचाध्यायी' है। श्री शुकदेव जी ने कहा है कि जिस प्रकार शरीर में पंचप्राण की स्थिति है उसी प्रकार 'श्रीमद्भागवत' में 'पंचाध्यायी' की स्थिति है। अपने परम-प्रेमी एक मित्र ने मुझे आज्ञा दी जिसको शिरोधार्य कर मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार इसे (लोक-प्रचलित) भाषा में लिखा।

टिप्पणी—नन्ददास जी ने उपर्युक्त छन्दों से पहले भागवत के वक्ता श्री शुकदेव मुनि की वन्दना की है और उसके वेष का वर्णन उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक के सहारे किया है। तदनन्तर उन्होंने 'रासपंचाध्यायी' के लिखने का कारण बताया है।

२—शब्दार्थ—उड़राज—चन्द्रमा ; व्याप रही—छिटक रही ; मनसिज—कामदेव ; विहंगम—पक्षी।

भावार्थ—उस समय रस-रास के सहायक चन्द्रमा उदित होकर इस प्रकार शोभा पाने लगे मानो श्रीकृष्ण की परमप्रिया राधिका जी का मुख कुसुम से विभूषित होकर शोभा पा रहा हो। इस समय चन्द्रमा की कोमल और अरुण किरणें वन में इस प्रकार व्याप्त होने लगीं मानों कामदेव चारों ओर

घूम-घूम कर गुलाल से फाग खेल रहे हो। स्फटिक पत्थर के सदृश्य शुभ्र किरणें कुंजो के छेदो के बीच मे होकर जब पृथ्वी पर पड़ने लगी तो ऐसी शोभा हुई मानो कामदेव ने सुन्दर मडप (शामियाना) तना दिया हो। चन्द्रमा की धीमी-धीमी चाल सुन्दर शोभा से युक्त होकर भगवान विष्णु के कौतुक के समान झलक रही थी इसके पश्चात् श्रीकृष्ण जी ने अनहोनी को होनी करने मे चतुर तथा योगमाया के सदृश्य प्रभावशालिनी मुरली को अपने कर-कमलो में लिया और फिर उसे अपने अधरो में मिलाया। जिसकी ध्वनि से श्रीकृष्ण जी ने वेद और शास्त्र प्रगट किया है तथा जो नाद-ब्रह्म की प्राण-स्वरूपा, मोहिनी और सबके लिए सुख-सागर है ऐसी मुरली ने मोहन के ओठो से पुनः मिलकर कुछ इस प्रकार का सुन्दर गायन किया जिससे बाँकी भौंह रखने वाली स्त्रियो का मनहरण हो जाय। श्रीकृष्ण के इस मुरली-नाद को सभी ने सुना। भगवान श्रीकृष्ण के प्रति जिसकी जैसी भावना थी उसी के अनुसार मुरली ने उसका सस्पर्श किया। जिस प्रकार सूर्य की किरणे सूर्यकान्तमणि और सभी पत्थरो पर एक साथ पड़ती हैं किन्तु उसकी अग्नि (धूप) का प्रभाव केवल सूर्यकान्तमणि पर ही पड़ता है ठीक इसी प्रकार मुरली का शब्द सुना तो सबने, किन्तु उसका प्रभाव गोपियो के ऊपर ही विशेष रूप से पड़ा। जिधर से श्रीकृष्ण के गीत और उनकी वंशी की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी, ब्रज की स्त्रियाँ उधर ही चल पड़ी। वे घर की दीवारो, पेड़ो और करील-कुजों मे कही भी नही अटकी। वंशी के नाद रूपी अमृत का पंथ अत्यन्त सुन्दर, सूक्ष्म और गम्भीर है। इस रास्ते पर केवल ब्रज-वनिताएँ ही चल सकती हैं, अन्य कोई इसका अधिकारी नही है। वे गोपियाँ शुद्ध प्रेम-रूपिणी हैं और इनका स्थान पंच-तत्व द्वारा बने हुए प्राणियो से

भिन्न है। इनके सम्बन्ध में कोई क्या कह सकता है क्योंकि यह तो ज्योति के समान जगत मे प्रकाश करने वाली हैं। शरीरधारी होने के कारण जिन गोपियो को दैवयोग से घर में ही रह जाना पड़ा वे (वियोग जन्य दुख से) अत्यन्त व्याकुल हो गयी। वे पुण्य और पाप के प्रारब्ध स्वरूप रचे गये अपने शरीर में कृष्ण के प्रेमामृत को पचा न सकीं। जिन गोपियो को श्रीकृष्ण जी के वियोग का परम दुसह दुख सहना पड़ा, उनको एक क्षण करोड़ों वर्ष के नरक भोगने के समान प्रतीत हुआ। जब लोहे का पात्र पारस पत्थर के स्पर्स से सुवर्ण का पात्र बन जाता है तो श्रीकृष्ण से इतना घनिष्ट प्रेम होने में आश्चर्य ही क्या है? वे सुन्दरियाँ फिर घर के काम काज को छोड़कर वंशी-ध्वनि के मार्ग को पकड़कर चली मानों नवप्रेमरूपी पक्षी पिंजड़ों से छूट कर उड़ चले हों।

३-शब्दार्थ—कुंज गुंज—वनलतायें, विकल-व्याकुल।

भावार्थ—गोपियाँ प्राणनाथ श्रीकृष्ण को कुंजों में ढूँढने लगी किन्तु उन दीनदयालु का कहीं पता नहीं लगा। इसलिए सभी व्रज-बालाएँ बहुत व्याकुल हो गयीं।

शब्दार्थ—विरहाकुल—विरह से व्याकुल ; नवनीत—मक्खन ; विथा—दुख।

भावार्थ—विरही व्यक्ति को इस बात का ज्ञान नहीं रहता कि कौन जड़ है और कौन चैतन्य है? इसलिये विरहिणी गोपियाँ भी श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुल होकर उनका पता लताओं और वृक्षों से पूछने लगी। वे कहती हैं कि हे मालती, हे जूही, हे यूथिका! तुम ध्यान देकर हमारी बात सुनो। क्या हमारे मान और मन को हरने वाले श्रीकृष्णजी को तुम सबों ने

देखा है ? हे केतकी ! क्या यहाँ से हमारे रूठे हुए प्रियतम (श्रीकृष्ण) को तूने कही जाते हुए देखा है ? तुम चुप क्यों हो बताओ, नन्दलाल ने अपनी मन्द-मुस्कान से कही तुम्हारा भी मन तो नही चुरा लिया ? हे मुक्ताफल ! तुम अपनी वेलि मे बहुत से मुक्ताफल छिपाये हुए हो। क्या तुमने विशाल-नेत्र वाले मन-मोहन श्रीकृष्ण को इधर कहीं देखा है ? हे उदार मंदार ! हे वीर करवीर ! क्या तुमने धैर्यवानो क मन को हरने वाले और मन्द-मन्द चलने वाले श्रीकृष्ण को इधर जाते हुए देखा है ? हे चन्दन ! तुम सब के दुख द्वन्द्व को नष्ट करने वाले हो इसलिए हम सबकी जलन शान्त करो। तुम हमे विश्ववंद्य श्रीकृष्ण का पता बता दो। इतने मे ही कोई गोपिका अपनी सहेलियो से कहती है कि हे सखियो ! इनलता-पुष्पो से तो पूछो जो पुष्पित हो रही हैं। अवश्य ही इनका स्पर्श प्यारे ने किया होगा क्योकि उनके स्पर्श किये बिना ऐसा सुन्दर फूल होना कठिन है। हे सखियो ! इन हिरिणियो के पीछे-पीछे जाकर इनसे क्यों नही श्रीकृष्ण का पता पूछ लेती ? जान पड़ता है कि इन्होने अभी ही कही पर श्रीकृष्ण को देखा है इसी से इनकी आँखें आनन्दित हैं। ऐ वन की सुन्दर सुगन्धि ! तू वायू के साथ धीरे धीरे चल रही है, मैं तुझ पर बलिहार हूँ। बता, क्या सुखनिधान, दुख-विनाशक श्रीकृष्ण को इधर तूने कही देखा है ? हे चम्पा ! हे कुसुम्भ ! तुम्हारी शोभा सबसे सुन्दर है, तुम हमे (उस स्थल का पता) जरा बता दो जहाँ पर कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण हैं ? हे कदंब ! हे निम्ब ! आम ! तुम सब मौन क्यों हो ? हे बट वृक्ष ! तुम यहाँ श्रेष्ठ हो, क्या तुमने इधर-उधर कही पर श्रीकृष्ण की खोज पायी है ? हे शोकहर अशोक ! तुम त्रिभुवन शिरोमणि श्रीकृष्ण को हमें बता दो। हे सुन्दर और रसीले कटहल ! हम मरती हुई स्त्रियों को अमृत पिला दो। इसी प्रकार यमुना किनारे स्थित

वृक्षों से पूछकर गोपियाँ अत्यन्त उदास हो गयीं। वे कहने लगीं कि हे सखी, तीर्थवासी ये वृक्ष बड़े कठोर स्वाभाव के हैं। ये भला क्योंकर श्रीकृष्ण का पता बतायेंगे! हे जमुना! यदि तुम उस जन्त को जो सारे विश्व का उद्धार करने वाला है, प्रकट रूप में बह रही हो तो फिर जानबूझकर हमें श्रीकृष्ण का पता न बताने में क्यों हठ करती हो? हे पृथ्वी! बताओ क्या तुमने हमारे चित्त को चुराने वाले माखनचोर प्राणप्यारे को कहीं पर छिपा तो नहीं रक्खा है? श्रीकृष्ण के चरणों में प्रेम रखने वाली तथा सबका कल्याण करने वाली हे तुलसी! तुम हमारी व्यथा श्रीकृष्ण से क्यों नहीं कह देती? वन में बहुत अँधियारे कुंजों और सघन तथा दुर्गम वृक्षों के बीच गोपियाँ अपने मुख-चन्द्र के प्रकाश से घूम रही थीं। इस प्रकार घने वन में खोजकर और उन्मत्त की भाँति सबसे श्रीकृष्ण का पता पूछकर गोपियाँ मन को प्यारी लगने वाली प्यारे श्रीकृष्ण की मनोहर लीला करने लगीं। नन्ददास जी कहते हैं कि परम रसिक श्रीकृष्ण की लीला करना इन गोपियों को ही शोभा देता है। लीला करते समय ये श्रीकृष्ण के प्रेम में इतनी तन्मय हो गयीं कि इन्हें जरा भी पता नहीं रहा कि हम कौन हैं और क्या कर रही हैं?

टिप्पणी—इनमें विरहिणी गोपियों की प्रलाप-दशा का मार्मिक चित्र खींचा गया है और प्रकृति वर्णन उद्दीपन विभाव के रूप में किया गया है।

४—शब्दार्थ—पदि—थककर, अम्बर—चोर।

भावार्थ—अनेक योगेश्वर जो अपने हृदय में प्रभु का ध्यान करते हैं, उन्हें भगवान् एक ही बार दर्शन का आनन्द देते हैं। योगी जन वन में जाकर करोड़ों जन्म तक तपस्या करते हैं और

अनेक प्रकार के आसन अपने हृदय मे लगाकर उसे अत्यन्त शुद्ध रखते हैं ऐसे स्वच्छ स्थान का भी नवल-नागर भगवान श्रीकृष्ण कुछ क्षण के लिए परित्याग कर देते हैं किन्तु वे गोपियो के चीर पर बड़े प्रेम से बैठते है। यद्यपि करोडो ब्रह्मांड में सर्वत्र श्रीकृष्ण का एकाधिपत्य है (वे अकेले ही सर्वत्र शोभा पाते हैं) किन्तु व्रजांगनाओं के बीच मे उनकी जितनी शोभा होती है, अन्यत्र कहीं नहीं होती। व्रज की सुन्दरियों के बीच में श्रीकृष्ण जी की वैसी शोभा होती है जैसी कमल के मध्य में कमल-कर्णिका सुशोभित होती है।

टिप्पणी—त्रिलोकाधिपति श्रीकृष्ण को गोपियो के चीर पर बैठाकर कवि ने जो आश्चर्य प्रकट किया है, वह अत्यन्त सुन्दर है। इसमे उपमा अलङ्कार है।

५-शब्दार्थ—किन—क्यो, उरनी—उऋण।

भावार्थ—तब व्रजराज श्रीकृष्ण जी गोपियों से कहने लगे कि हम तुम्हारे ऋणी हैं। तुम सब अपने मन से मेरा दोष क्यों नही दूर कर देती। यदि हम करोड़ो कल्प तक तुम्हारा प्रत्युपकार करे तो भी हमारे मन को हरण करने वाली हे तरुणियो! तुम सब से हम ऋण-मुक्त नही होंगे। मेरी माया सम्पूर्ण विश्व को अपने वश में करके सुशोभित है किंतु वह माया तुम्हारी इस प्रेममयी माया का संसर्ग पाकर मुझे भी मोहित करती है। हे नवयुवतियो! सुनो। तुम ने जो कुछ भी किया है उसे कोई नही कर सकता है। मेरे लिए तुम सब ने लोक और वेद की मर्यादा-रूपी सुदृढ़ जजीर को भी तिनके के समान तोड डाला है। इससे बढ़कर और त्याग क्या हो सकता है?

६-शब्दार्थ—मधि—मध्य; रली—मिली; अभिनय—स्वाँग।

भावार्थ—सभी व्रज-वनिताओं के मध्य में श्रीकृष्ण

जी इस प्रकार शोभा पा रहे थे जिस प्रकार रत्नों की पंक्ति मे नील मणि शोभा पाती है। श्रीकृष्ण जी नया मरकत मणि के सदृश्य थे और गोपियाँ सुवर्णमाला के सदृश्य थी इसलिए श्रीकृष्ण के साथ मे गोपियों का समूह ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी ने प्रसन्न होकर वृन्दावन को सुवर्ण की माला पहनाई हो। नूपुर कंकन, किंकिनि, करताल, सुन्दर मुरली, ताल, मृदंग, उपंग और चग आदि सभी एक स्वर मे मिल गए। इसमें फिर ताल की कोमल मधुर टकार तथा वीणा के तार की मधुर झनकार और भ्रमरो की मधुर गुंजार आदि की ध्वनि भी जा मिली। बाजे की गति की भाँति पैरों का पटकना और हाथ की तालियों का एक साथ बजना भी जारी था। इस अवस्था मे कुण्डलों और हारो की लटकनि, मटकनि और झलकनि बडी सुन्दर लगती थी। अपने साँवरे प्रियतम के संग मे ब्रज की युवतियाँ इस प्रकार सुन्दर नृत्य कर रही थीं मानो मेघ-मंडल के मध्य में सुन्दर बिजलियाँ खेल रही हों। छबीली गोपिकाओं के पीछे हिलती हुई उनकी वेणी ऐसी लगती थी मानो (वायु के प्रसंग से) चचल लताओ के साथ-साथ भ्रमरों का समूह शोभा पा रहा हो। नन्ददास जी कहते हैं कि प्यारे मोहन की मुस्कानि, उनके मोर मुकुट की ढलकनि तथा पीताम्बर की फहरनि मेरे मन में सदा बसी रहे। प्यारे कृष्ण के मुखकमल पर पडी हुई पसीने की बूँदे, छुटी हुई अलकें और मोरमुकुट की सुन्दर ढलकनि मेरे हृदय में सदा वास करे। कोई छबीली गोपिका प्यारे का हाथ पकड कर इस प्रकार नृत्य करती है मानो नट को वशीभूत हुआ और अपने पीछे फिरता हुआ देख नटी मुग्ध होकर नाच रही हो। कोई गोपी श्रीकृष्ण की सुन्दरता से विमोहित होकर उन्हींका सा स्वाँग करती है, उनके भेद-भाव अर्थात् भाव-भगी को प्रकट करती है तथा उनके यश का गान करती है।

टिप्पणी—इसमे महारास का चित्र और बाजो तथा आभूषणो आदि की ध्वनि का मेल दिखाने में कवि ने कमाल किया है। लटकनि, मटकनि, झलकनि में वृत्यानुप्रास की बहार देखते ही बनती है और 'छबिलि तियनि के पाछें आछें बिलुलितं बेनी' की उत्प्रेक्षा तो मन को मुग्ध कर देती है। इन रोलों में कवि ने सुकुमार शब्दो का सुन्दरता के साथ प्रयोग कर माधुर्य गुण को प्रश्रय दिया है।

७-शब्दार्थ—स्रमित—थकी हुई।

भावार्थ—प्यारे के मोर-मुकुट की लटकनि तथा उसकी मटक-मटक कर मुरली बजाने की क्रिया देखकर ऐसा लगता था मानो आनन्द से उन्मत्त होकर सुन्दर मोर कुहुक-कुहुक कर नाच रहा हो। श्रीकृष्ण जी अत्यन्त आनन्दित होकर अपने शिर में लगे हुए सुन्दर पुष्प गिरा देते हैं, उनका गिरना ऐसा शोभा देता है मानो चरणों की चाल वा थिरकन पर प्रसन्न होकर अलक उसकी पुष्पो से पूजा कर रही हो। श्रीकृष्ण जी क शरीर में स्वेद के जो सुन्दर बिन्दु पड़ गये हैं वे रगीन होकर अत्यन्त शोभा दे रहे हैं जिनके हृदय मे प्रेम और भक्ति का विरवा है, वे इस श्रमबिन्दु को देखकर पुलकित हो जाते हैं। इस समय वृन्दावन की शीतल, मद और सुगधि युक्त वायु पखे की भाँति डोल रही है। वह जहाँ-जहाँ जिस-जिसको थकी हुई देखती है वहीं रसपूर्ण होकर डोल जाती है (और श्रम को हर लेती है।) रास-मण्डल गोपियो के लाल वस्त्रो से विभूषित होकर ऐसी छवि दे रहा है जैसी प्रेमजाल मे उलझी हुई आँख की पुतलियां छवि देती हों। इस समय अँधियारे कुंज में जहाँ पर पुष्प खिले हुए

थे, पराग के लोभ से भौंरे वहाँ तक पहुँचकर लटके हुए दिखाई पड़ते थे।

टिप्पणी—इसमें सुन्दर उत्प्रेक्षाओं से प्रायः सभी रोले सुसज्जित हैं। वर्णन अनूठा है।

८-शब्दार्थ—महाछवि—अति सुन्दर, सारद-सरस्वती

भावार्थ—गोपियों के शरीर मे लिपटे हुए भीगे वस्त्रों की इतनी सुन्दर शोभा है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता क्योंकि नेत्रों के पास कहने की शक्ति नहीं है और वाणी के पास देखने की शक्ति नहीं है। श्रीकृष्ण की यह नित्य रास क्रीड़ा नित्य रहने वाले वेद नित्य गायें तो भी उसकी नवीनता का वर्णन कर जाना उनके लिए कठिन ही है। [इस अद्भुत रस-रास की महा-शोभा का वर्णन मुझसे कहते नहीं बनता। इसे मनीषी शेष भग-वान अपने सहस्र मुखों से वर्णन करें तो भी इसको आदि से अंत तक न कह सकेंगे। शंकर जी इस कथा का रहस्य जानकर इसका मन ही मन स्मरण करते हैं। वे इसको किसी से प्रकट नहीं करते। यह कथा सनकादि ऋषि, नारद और सरस्वती को बहुत प्रिय है।]

९-शब्दार्थ—श्रुतिसार—वेदों का निचोड़।

भावार्थ—नन्ददास जी कहते हैं कि मैंने इस उज्वल कथा रस की माला को करोड़ों यत्न करके पोहा है, इसलिए हे सज्जन वृन्द! इसे सावधानी से हृदय में धारण करो, तोड़ो मत यह श्रवण, कीर्तन, स्मरण और ध्यान का सार तो है ही, इसमें ज्ञान का सार, प्रभु के ध्यान का सार तथा वेद का सार गूँथा गया है। समस्त पापों का नाश करने वाली, मनोहर लगने वाली, दिव्य आनन्द को देने वाली तथा सब प्रकार से मंगल करने वाली 'रासपंचाध्यायी' की यह कथा मेरे हृदय में निवास करे।

भँवरगीत

—:०:०::०::०: ०—

१-शब्दार्थ—प्रेम धुजा—प्रेम की ध्वजा, रसरूपिनी—आनंद की साक्षात् मूर्ति।

भावार्थ—श्रीकृष्ण के सखा उद्धव जी गोपियों से कहते हैं कि वृन्दावन के नवीन कुजो मे श्यामसुन्दर के साथ विहार करने वाली, आनन्द समूह की सृष्टि करने वाली, रस स्वरूपिणी, प्रेम की ध्वजा, रूप, शील और सौन्दर्यादि गुणो से सम्पन्न हे गोपियो! मेरा (उद्धव का) उपदेश सुनो।

२-शब्दार्थ—मधुपुरी—मथुरा।

भावार्थ—उद्धव जी कहते हैं कि हे व्रज युवतियो! सुनो। तुम लोगो से श्याम का एक सन्देश कहने के लिए मैं व्रज मे आया था किन्तु कहीं एकान्त मे कहने का अवसर नही प्राप्त हो सका। मै अपने मन मे सोच ही रहा था कि कब एकान्त मे तुम लोगो से मिलूँ और श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाकर मथुरा वापस लौट जाऊँ।

३-शब्दार्थ—नेति—'न इति' अर्थात् ऐसा नही।

विशेष—नन्ददास कृत 'भवॅरगीत' में 'वहुरि मधुपुरी जाउँ' के आगे १६ छन्द और दिये गये है। सङ्कलनकर्त्ता ने इन छन्दो का सङ्कलन विस्तार-भय से नही किया है, यद्यपि ऐसा करने से कथा-शृङ्खला टूट सी गयी है। प्रस्तुत छन्द के पहले गोपियो ने यह कहा है—

जोगी जतिहिं भजै भक्त निज रूपहिं जानैं
प्रेम-पियूषै प्रगट स्याम सुन्दर उर आनैं।

निर्गुन गुन जो पाइये लोग कहैं यह नाहि
घर आयो नाग न पूजहीं बाँबी पूजत जाहिं।
सखा सुनु स्याम के।

अब इसका उत्तर उद्धव जी यों देते हैं—

भावार्थ—हे ब्रज युवतियों! सुनो। तुम जो ब्रह्म को सगुण बता रही हो, यदि यह वस्तुतः सत्य है तो फिर बताओ वेद ब्रह्म को 'नेति नेति' क्यों कहते हैं? (सिद्धान्त की बात तो यह है कि) निर्गुण ब्रह्म ही आत्मा को सगुण रूप देता है और उसे सुख से सम्पन्न बनाता है। तुम जो कहती हो कि केवल सगुण में ही गुण का आविर्भाव होता है और निर्गुण में गुण का आविर्भाव नहीं होता, यह निराधार है। समस्त वेदों और पुराणों में खोजने पर भी कहीं इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

टिप्पणी—निर्गुण ब्रह्म जब नाम और रूप उपाधियों को स्वीकार कर सगुण स्वरूप धारण करता है, तो एकदेशीय होने के कारण उसकी अनन्तता समाप्त हो जाती है। इसी सिद्धान्त को लेकर उद्धव जी ने तर्क किया है।

४-शब्दार्थ—न्यारे—अलग, वारि—जल।

सन्दर्भ—गोपियां उद्धव जी के तर्क का उत्तर देती हैं—

भावार्थ—हे श्याम के सखा उद्धव जी! सुनिये, यदि ब्रह्म निर्गुण है तो सगुण ब्रह्म श्रीकृष्ण में जो इतने गुण दिखाई देते हैं, कहाँ से आये? बताइए, क्या बिना बीज के वृक्ष उग सकता है? हम जिन गुणों को देख रही हैं वह तो माया रूपी दर्पण में पड़े हुए भगवदीय दिव्य गुणों की छाया मात्र है। यह भगवदीय दिव्य गुण मायात्मक त्रिगुण से उसी प्रकार अलग रहता है जैसे कीचड़ के संसर्ग में पड़ा हुआ स्वच्छ जल उससे (कीचड़ से) अलग रहता है।

टिप्पणी—इस पद में निर्गुण ब्रह्म का खंडन और सगुण ब्रह्म का मण्डन किया है। 'बीज बिना तरु जमै' वाली युक्ति तो एकदम अकाट्य है।

५—**शब्दार्थ**—तरनि—सूर्य ; गहि—यह शब्द अशुद्ध छपा हुआ है। मेहरोत्रा द्वारा सम्पादित 'भवँरगीत' में 'नहिं' शब्द मिलता है जो ठीक जान पड़ता है—

सन्दर्भ—जब गोपियाँ उद्धव से यह कहती हैं—

कर्म मध्य ढूँढ़ै सबै किनहु न पायो देख,
कर्म रहित ह्वै पाइए ताते प्रेम बिसेख।
सखा सुनु स्याम के।

तो उद्धव जी इसका उत्तर देते हैं—

भावार्थ—हे गोपियो! सुनो। नाम और रूप से ही प्रेम किया जाता है किन्तु नाम और रूप के बिना, बताओ प्रेमी कैसे अनुराग कर सकता है? मनुष्य अनन्तकाल से सूर्य और चन्द्रमा को देखता आ रहा है फिर भी उसका गुण जब अभी तक वह नहीं जान सका है तो गुणातीत भगवान को वह कैसे जान सकता है।

६—**शब्दार्थ**—दुराई—छिपाकर, कूप—कुवाँ।

सन्दर्भ—गोपियाँ उद्धव के तर्क का उत्तर देती हैं—

भावार्थ—उद्धव जी! आकाश में तेजस्वी सूर्य का जो प्रकाश अंतर्हित है, वह दिव्य-दृष्टि प्राप्त किये बिना भला कैसे दिखाई पड़ सकता है। जिसके पास दिव्य-दृष्टि नहीं है, वे (प्रभु या सूर्य) के वास्तविक रूप को कैसे देख सकते हैं? जो

लोग कर्म के जाल में उलझे हुए हैं, उनमें प्रेम की सच्ची भावना का उदय कैसे हो सकता है?

७—शब्दार्थ—अच्युत—विष्णु, तृप्ति—आत्म-तुष्टि।

सन्दर्भ—जब गोपियाँ उद्धव जी से कहती हैं कि निर्गुण की बात तो अब अतीत की हो गयी और वर्तमान समय में सगुण ही हमें सर्वत्र दिखाई दे रहा है, तो उद्धव जी कहते हैं—

भावार्थ—तुम्हारी दृष्टि में मायात्मक त्रिगुण के बीच ईश्वर के जितने रूप दिखायी पड़ रहे हैं इन सबसे अच्युत वासुदेव भगवान् परे हैं। अधोक्षज भगवान् की दिव्य-ज्योति तक साधारण इन्द्रिय व दृष्टि की पहुँच नहीं हो सकती। इसे तो सारूप्य मुक्ति प्राप्ति करने वाला विशुद्ध योगी ही जान सकता है और वहीं ब्रह्म-ज्योति का साक्षात्कार कर अपनी तृप्ति कर सकता है।

८—शब्दार्थ—सुहाय—अच्छा लगना।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी! जो लोग नास्तिक हैं वे भगवान के प्रेममय स्वरूप को क्या जान सकते हैं। वे तो प्रत्यक्ष सूर्य को छोड़कर धूप की शरण ग्रहण करते हैं। हमें तो भगवान के प्रेममय स्वरूप के अतिरिक्त और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उसको प्राप्त कर लेने पर करोड़ों ब्रह्म की झलक हमें करतल गत दिखायी देती है।

९—शब्दार्थ—तहँ—वहाँ, वनितन—गोपियों।

भावार्थ—इसी समय एक भ्रमर कहीं से उड़ता हुआ आया और गोपियों के बीच गुञ्जार करता हुआ शोभा पाने लगा। वह अरुण-कमल के भ्रम से गोपियों के पैरो पर बैठना

चाहता था। उसको देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वयं उद्धव जी (गोपियों की चरण-धूलि लेने के लिए) भौंरे का रूप धारण कर प्रकट हो गये हो।

४०-शब्दार्थ—प्रेमरसरूपी—प्रेम रस में सनी हुई।

भावार्थ—इसी भ्रमर को लक्ष्य करके समस्त गोपियाँ प्रेम-रस में सनी हुई और तर्क-वितर्क से युक्त अपनी बातो को प्रत्युत्तर स्वरूप इस प्रकार कहने लगी। ऐ भ्रमर! तू मेरे पैरो का स्पर्श मत कर। हम सब तुम्हे चोर मानती हैं क्योकि तुम्हारी तरह वेप-भूषा धारण करने वाले नन्दकिशोर श्रीकृष्ण चोर थे। जा, तू यहाँ से दूर हो जा।

४१-शब्दार्थ—पीत—पीताम्बर, जनि मानहुँ—न मानो।

भावार्थ—कोई गोपिका कहती है कि हे सखी! इस भ्रमर ने उन्ही (श्रीकृष्ण) का वेप धारण किया है, साँवरे श्रीकृष्ण जी पीताम्बर धारण कर जिस छवि को प्राप्त होते थे यह श्याम और पीत वर्ण का भौंरा उसी छवि को प्राप्त है। उनकी वाणी और किंकिनी की झनकार के सदृश्य इसकी गुंजार है। यह मथुरा से मक्खन चुराकर फिर व्रज को भाग आया है। हे सखियो! इस पर विश्वास न करना क्योंकि इसका रूप कपटी का-सा है। सावधान रहना, कोई वस्तु इस चोर द्वारा चोरी न चली जाय।

टिप्पणी—'चोरि जनि जाय कछु' इस पद का सर्वस्व है। देखिए, इसकी व्यंजना कितनी अनूठी है।

४२-शब्दार्थ—कुसुम—फूल ; मतिमंद—मूर्ख ; दुविध ज्ञान—सशयात्मक ज्ञान।

भावार्थ—कोई गोपी कहने लगी रे भौंरे! तू रस की

बातों को क्या जाने ? तू बहुत से पुष्पो पर बैठकर उनका रस लेता है और उन्हे अपने समान जानता है। ऐ मूर्ख ! क्या तू अपने समान हम लोगो को भी बनाना चाहता है ? प्रेमानन्द से छकी हुई हम गोपियों को अपनी कपट भरी बातों में उलझाकर और संशयात्मक ज्ञान भर कर क्या तू दुखित करना चाहता है ?

टिप्पणी—इसमें प्रथम दो पंक्तियाँ भौंरे पर घटित होती हैं और शेष में उद्धव पर आक्षेप है।

१३—**शब्दार्थ**—घात—चोट करना, मारना।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि रे भौंरे ! तुझे मधुकर कौन कह सकता है क्योंकि तू तो अपने मुख में योग की गाँठ लिये फिरता है (भाव यह कि अपने मुख से योग का उपदेश करता है) और बेकारी का समय व्यतीत कर रहा है। जान पड़ता है तू ने बहुतों का रक्त चूसा है, इसीसे तेरे ओठ लाल हैं। तुम ब्रज म किस अभिप्राय से आये हो, बताओ अब किसका निशाना करोगे ? ऐ पापी ! तू यहाँ से चला क्यों नहीं जाता।

टिप्पणी—कितनी करारी फटकार है !

१४—**शब्दार्थ**—षटपद—भ्रमर ; आनन—मुख ; गात—शरीर।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि ऐ भ्रमर ! मैंने तुझमें ही प्रेम देखा है। सचमुच अब तक इस ब्रज में कोई ऐसा प्रेमी नहीं हुआ है जो तुम्हारे समान प्रेम की विशेषता रखता हो। तेरा शरीर काला और पीला है तथा तेरे मुख के ऊपर दो सींग हैं। तू दुष्टों को अमृत के समान मानता है, और अमृत को देखकर डरता है। तेरी यह रसिकता एकदम झूठी है।

१५—शब्दार्थ—सथा—पाठ, चटसार—पाठशाला।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि ऐ भौंरे! तू उल्टा ज्ञान लेकर आया है। जो आत्माएँ जीवन मुक्त हो रही थी उन्हें तूने फिर कर्म करने का उपदेश दिया है। वेद और उपनिषदों के सार-स्वरूप श्रीकृष्ण के गुणों का गान करना जिन्होंने स्वीकार किया है, उनको योग की पाठशाला में बैठाकर आत्म-शुद्धि का पाठ बार-बार पढ़ा रहे हो।

१६—शब्दार्थ—कूबरी—कंस की एक दासी

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि ऐ भौंरे! क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती। देखो, तुम्हारे सखा श्रीकृष्ण जी अब 'कूबरी-नाथ' कहला रहे हैं। गोपीनाथ कहला चुकने पर कूबरीनाथ कहलाना कितनी नीची पदवी को प्राप्त करना है! बताओ दासी का जूठन खाकर क्या अब यदुवंश पवित्र हो गया? ऐ भौंरे! तू बोलने को क्या मरता है?

टिप्पणी—'मरत कहा बोल को' में बड़ा सुन्दर व्यंग है।

१७—शब्दार्थ—जोगी—योगी, पधारो—चले जाओ।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि हे भ्रमर! श्रीकृष्ण योगी है और तुम उनके चेला हो। तभी तो उन्होंने कुब्जा रूपी तीर्थराज में जाकर इन्द्रियों का मेला किया है अर्थात् कुब्जा के साथ भोगविलास किया है। अब तुम मथुरा की याद भुलाकर गोकुल में आ गये हो किन्तु समझ लो कि यहाँ पर प्रेमीजन निवास करते हैं, यहाँ तुम्हारा कोई ग्राहक नहीं है। तुम अब यहां से चले जाओ।

१८—शब्दार्थ—विधि—प्रकार; हियरो—हृदय।

भावार्थ—इस प्रकार श्रीकृष्ण का स्मरण करती हुई प्रत्येक गोपी अपनी कुल लज्जा को त्यागकर तथा भ्रमर का नाम लेकर उद्धव जी से (मन की व्यथा) कहने लगीं। तदनन्तर सभी गोपियां एकाएक एक साथ ही करुणामय नाथ ! हां केशव !! हा कृष्णमुरारि !!! कहकर रो पड़ीं। उनकी वह दशा देखकर उद्धव का हृदय फट गया।

१९—शब्दार्थ—गिलानि—ग्लानि, सिगरी—सम्पूर्ण।

भावार्थ—गोपियों ने जिस विशुद्ध भक्ति को प्रकट किया, उद्धव जी उसकी प्रेम से सराहना करने लगे। उनका सम्पूर्ण संशयात्मक ज्ञान और अविवेक नष्ट हो गया। "ये गोपियां भगवान के परम प्रेम की अधिकारिणी हैं, इनके दर्शन-मात्र से मैं अपना ज्ञान रूपी मल मिटाकर कृतकृत्य हो गया।" इतना कहकर उद्धव जी विमोहित और चकित हो गये।

२०—शब्दार्थ—पटतर—समता।

भावार्थ—जब गोपियां लोक और वेद की मर्यादा की कुछ भी चिन्ता न कर निरन्तर श्रीकृष्ण का इस प्रकार ध्यान करती हैं तो फिर क्यों न वे प्रियतम (श्रीकृष्ण) का परम आनंद दायक प्रेम-पद प्राप्त कर लें। यह सत्य है कि ज्ञान, योग और कर्म सबसे परे प्रेम की स्थिति है किन्तु मैं (अपने बुद्धि-वैषम्य के कारण ही) अभी तक इसकी ऐसी उपमा दिया करता था जैसी हीरा के आगे कांच की उपमा दी जाती है।

२१—शब्दार्थ—उपाध—उपाधि युक्त, उर—हृदय।

भावार्थ—वे लोग धन्य हैं, धन्य हैं जो भगवान को इस प्रकार भजा करते हैं। भगवान की यह भक्ति बिना पारस रूपी

प्रेम के कोई कैसे प्राप्त कर सकता है ? गोपियो ने मेरे इन ज्ञान को अहम् की उपाधि से विभूषित किया है। मैंने उनका अभिप्राय अब समझा है कि मेरा यह ज्ञान गोपियो के प्रेम का आधा भी नही है। मैंने व्यर्थ मे ही इसके पीछे श्रम किया है।

२२-**शब्दार्थ**—परसत—स्पर्श, धूरि—धूलि।

भावार्थ—उद्धव जी कहते हैं कि इन गोपियो ने अपने चरणो का स्पर्श करने के लिये मुझे भ्रमर का सम्बोधन कर मना किया और फिर सभी ने मेरी हर प्रकार से चुटकी ली। मै अब ब्रज के रास्तो की धूलि बनकर यहां निवास करूँगा जिससे गोपियो के विचरण करने पर उनके चरण, जो कि जीवन के सब सुखो की जड़ है और मुनियों के लिए भी दुर्लभ हैं, मुझ पर पड़े।

टिप्पणी—ज्ञानी उद्धव जी का यह प्रेम इस पद मे अपनी सीमा पर पहुँचा हुआ जान पड़ता है। 'ब्रज की धूरि' बनना उनके प्रेम की अनन्यता का परिचय दे रहा है।

२३-**शब्दार्थ**—सुभाय—स्वाभाविक रूप से।

भावार्थ—मै इस वृन्दावन मे वृक्ष, लता, वल्लरी आदि कैसे बन जाऊँ जिससे आते-जाते मुझ पर इन गोपियो की छाया पड़े, (और मैं उस छाया का आलिंगन कर आनन्द प्राप्त करूँ) किन्तु मै जो कुछ चाहता हूँ वह मेरे बस का नही है। मै जाकर श्रीकृष्ण जी से कहूँगा कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तो कृपा कर यह वर दीजिए।

२४-**शब्दार्थ**—आधी मूठी—मनोविनोद के लिए बुझक्कड़ लोग प्रायः खाली मुट्ठी बाँधकर यह कहा करते हैं कि बूझो, इसमे क्या है ? बूझने वाले को मुट्ठी मे कुछ न कुछ होने का भ्रम होता है। वह अपनी समझ से उत्तर देता है किन्तु

जब मुट्ठी खोली जाती है तो वह छूछी निकलती है और हँसी होती है।

सन्दर्भ—व्रज से लौटे हुए उद्धव श्रीकृष्ण जी से कहते हैं—

भावार्थ—हे कृष्ण! तुम्हारी करुणामयी रसिकता एकदम भूठी है यह तो तभी तक बँधी हुई मुट्ठी के समान आकर्षक ज्ञात होती है जब तक इसका पोल (रहस्य) खुला नहीं है। मैंने व्रज जाकर तुम्हारे निर्दय रूप को देख लिया। बताओ तुम्हारा यह कौन धर्म है कि जो तुम्हारा आश्रय ग्रहण करते हैं उन्हें कुएँ में झोंक देते हो।

टिप्पणी—'बांधी मूठी' इस पद का प्राण है। उपयुक्त स्थान पर प्रयुक्त होने के कारण यह कहावत बहुत सुन्दर लगती है।

२५-शब्दार्थ—नातरु—नहीं तो।

भावार्थ—उद्धव जी श्रीकृष्ण जी से बार-बार कहते हैं कि चलिए, अब वृन्दावन में रहिए और प्रेम रूपिणी गोपियों के प्रेम को प्राप्त कीजिए। आप सभी प्रकार के कार्यों को त्याग कर केवल उन गोपियों को आनन्द दीजिए अन्यथा आप का प्रेम टूटा जाता है। प्रेम के टूट जाने पर फिर आप क्या कीजिएगा?

२६-शब्दार्थ—कल्पतरोरुह—कल्पवृक्ष ; उलहि—उमंगित होकर।

भावार्थ—अपने मित्र उद्धव के प्रेम भरे वचन सुनकर श्रीकृष्ण जी की आँखों में आँसू आ गया, वाणी रुक गयी। प्रेम के आवेश और बेबसी में उन्हें किसी की सुधि नहीं रही। इस समय साँवरे श्यामसुन्दर के एक-एक रोएँ में गोपिका ही गोपिका

दिखाई पड़ने लगीं मानो श्रीकृष्ण जी कल्पवृक्ष हो गये हो और गोपियाँ उसकी पत्तियों के समान अंग-अंग से निकल कर शोभा पा रही हो।

टिप्पणी—इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है।

फुटकर पद

१—शब्दार्थ—सिला—पत्थर की चट्टान ; निरतत—नृत्य करता है।

भावार्थ—नन्ददास जी कहते हैं कि प्रातःकाल उठकर भगवान राम और कृष्ण का नाम लीजिए। अवधेश श्रीरामचन्द्र जी धनुर्धर हैं और श्रीकृष्ण जी व्रज के माखनचोर हैं। श्रीरामचन्द्र जी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न द्वारा सेवित हैं तथा उनको छत्र, चवँर और सिंहासन प्राप्त हैं और श्रीकृष्ण जी (हाथ में) लकुट (सिर में) मुकुट और (शरीर में) पीताम्बर धारण किये हुए गायों के संग फिरते हैं। रामचन्द्र जी ने समुद्र में पत्थर की शिला तैराकर उस पर सेतु बनाया था और इन्होंने गोवर्द्धन पर्वत को उँगली में धारण कर व्रज को बचाया था। इसलिये हमें सब कुछ छोड़कर प्रभु का भजन करना चाहिए और उसी प्रकार प्रसन्न होना चाहिए जैसे चन्द्रमा को देखकर चकोर प्रसन्नता से नाच उठा करता है।

टिप्पणी—इसमें कवि ने राम और कृष्ण-भगवान् के दोनो अवतारों का समान आदर किया है।

—:o:—

३—रसखानि

रसखानि के काव्य की पृष्ठभूमि—वैष्णव-प्रवर रसखानि जी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। इनके समय तक व्रजभाषा अष्टछाप के कवियो तथा हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, मीराबाई, स्वामी हरिदास, सूरदास मदनमोहन, श्री भट्ट और व्यास जी आदि की रचनाओं का बल पाकर पूर्णतया समृद्ध और परिष्कृत हो चुकी थी। स्वामी वल्लभाचार्य की प्रेमलक्षणा भक्ति पर अधिक जोर देने के कारण और लोक-मर्यादा व वेद मर्यादा का त्याग ही विधेय ठहराने के कारण कृष्ण-भक्तो की रुचि धीरे-धीरे शृङ्गार की ओर आकृष्ट होने लगी। रसखानि के दो-एक सवैयो मे इस प्रकार की रुचि का कुछ आभास मिलता है किन्तु इनके अधिकांश सवैये भक्तिपक्ष के हैं जिनमें श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, वेशभूषा, वंशी-वादन तथा गोपियों के साथ की जाने वाली छेड़छाड़ का वर्णन है।

✓**रसखानि के काव्य का वर्ण्य-विषय**—रसखानि जी की समस्त कविताएँ 'सुजान रसखान' और 'प्रेमवाटिका' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। ये दोनो मुक्तक काव्य है। 'सुजान रसखान' मे श्रीकृष्ण की यौवनावस्था की शोभा व लीला का वर्णन कवित्त तथा सवैया छन्दों में किया गया है और 'प्रेमवाटिका' मे प्रेम का शास्त्रीय निरूपण दोहों में किया गया है।

रसखानि के काव्य की समीक्षा—कहा जाता है कि श्रीमद्भागवत के फारसी अनुवाद मे गोपियो के विरह का प्रसङ्ग पढ़कर रसखानि के दिल मे समाया कि जिस नन्द के फरजन्द पर हजारो हसीन गोपियाँ जान दे रही हैं, उसी लाल से इश्क क्यो न जोड़ना चाहिये ? बस इस भक्ति-भावना में मस्त होकर ये वृन्दावन चले आये। चूँकि रसखानि अपने प्रेमदेव की उस छवि पर रीझ गये थे जिस पर गोपियाँ मरती थीं इसलिए इनके काव्य मे गोपीनाथ की यौवनकाल की लीलाएँ ही अङ्कित हैं। इन्होंने अपने काव्य में भगवान की अन्य लीलाओं की अपेक्षा उनके वंशी-बजाकर गोपियो के मोहित करने वाले प्रसङ्ग को कई स्थलो पर लिखा है, जान पड़ता है इस प्रसङ्ग से उन्हे बहुत अनुराग था। श्रीकृष्ण की बाल लीला या अन्य लीलाओ के वर्णन की ओर उनकी प्रवृत्ति नही थी। इन्होने प्रमुख रूप से संयोग शृङ्गार का ही वर्णन किया है। श्री कृष्ण के मथुरा-प्रवास करने पर गोपियो मे जो विरह उमडा था, उसका वर्णन इन्होने केवल दो एक सवैयो में ही किया है किन्तु संयोगावस्था में होने वाले पलकांतर विरह का वर्णन इन्होंने कई स्थानों पर किया है। सूरदास जी की भाति इन्होने आंतरिक मनोभावो का उद्घाटन नहीं किया है प्रत्युत प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाले बाह्य-रूप का चित्रण किया है। श्रीकृष्ण के गुणो की अपेक्षा उनके बाँकी अदा, तिरछी चितवन, मुरली-ध्वनि और गोपियों के साथ की जाने वाली छेडछाड़ पर ये अधिक मुग्ध थे। इनके काव्य में सर्वत्र स्वाभाविक सरसता और आनद का उद्रेक मिलता है और विरह या दुख का तो कहीं नाम तक भी नहीं मिलता है। अपने कोमल भावों को मूर्त्त रूप देने के लिए इन्होने तदनुरूप परिस्थितियो की उद्भावना की है, यही कारण है कि इनका वर्णन अत्यंत आकर्षक, प्रभाव-

शाली और सरस हुआ है। यह यद्यपि आरम्भ में मुसलमान थे पर बाद में उपास्यदेव भगवान श्रीकृष्ण पर अपना सर्वस्व बलिदान कर कृष्णमय हो गये थे। अपनी उत्कट भक्ति के कारण ही इन्होंने उच्चकोटि के वैष्णव-भक्तों में स्थान पा लिया था। सच पूछिए तो यही एक ऐसा मुसलमान कवि था जिसने पूर्णतया विदेशीपन का बहिष्कार कर दिया। इन्हीं को लक्ष्य कर भारतेन्दु जी ने "इन मुसलमान हरिजन पर कोटिन हिंदू वारिए।" कहा है। ये अपने उपास्यदेव की शक्ति और भक्त-वत्सलता पर पूरा विश्वास रखते थे। गोस्वामी तुलसीदास जी की भाँति इन्होंने भी हरिशकरी सवैया लिखा है और श्रीकृष्ण तथा शकर का समान रूप से आदर किया है। भगवती भागी-रथी का वर्णन भी एक सवैया में इन्होंने किया है, इससे इनके उच्च विचारों का पता लगता है। इनकी रचनाएँ यद्यपि परिमाण में बहुत थोड़ी हैं पर अपनी सरलता, सरसता और मोहकता में अद्वितीय हैं 'प्रेमवाटिका' में इन्होंने प्रेम का जो शास्त्रीय निरूपण किया है, उससे इनकी बहुत बड़ी जानकारी का परिचय मिलता है।

भाषा और शैली—रसखानि की काव्य-भाषा अत्यन्त स्वाभाविक, शुद्ध, सरल और प्रवाहमय है। इसमें शब्दाडम्बर और सामासिक पदावली का पूर्णतया अभाव है। अनुप्रास की यद्यपि अधिकता है पर उसके कारण भाव-विधान में कहीं भी व्याघात नहीं पड़ने पाया है प्रत्युत सौन्दर्य-वृद्धि विशेष रूप से हुई है। कई स्थानों पर मुहाविरों और लोकोक्तियों का प्रयोग बहुत सुन्दर हुआ है। शब्दालङ्कारों की अपेक्षा अर्थालङ्कारों की ओर रसखानि ने विशेष रुचि नहीं दिखायी है। अपनी रचना में स्वभावोक्ति को इन्होंने विशेष प्रश्रय दिया

है। ब्रज के ठेठ शब्दों को प्रयुक्त करते हुए उन्होंने ब्रजभाषा का जो स्वाभाविक और सरस रूप दिखाया है उसके दर्शन बिहारी और आनन्दघन आदि जैसे कुछ कवियों की रचनाओं को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ हैं। इन्होंने सूरदास के समय से चली आती हुई पद-शैली की परम्परा को त्यागकर कवित्त और सवैया की पद्धति अपनायी और उसमें सफलतापूर्वक कृष्ण-चरित का वर्णन किया। यह वास्तव में इनकी सबसे बड़ी विशेषता है।

३—रसखानि

❀—०—❀

सुजान रसखान

१—शब्दार्थ—पाहन—पत्थर , कालिंदी-यमुना ।

सन्दर्भ—प्रेमी भक्त रसखानि जी अपनी मनोकामना का वर्णन करते हैं—

भावार्थ—हे प्रभो ! अगले जन्म में यदि मैं मनुष्य होऊँ तो मैं ब्रज-प्रांत में गोकुल के अहीरो के बीच निवास करूँ, यदि विवशता के कारण पशु होना पड़े तो नंद की गायों के बीच चरा करूँ, यदि पक्षी होऊँ तो यमुना तट पर स्थित कदम्ब की डालियों पर बसेरा करूँ और कहीं यदि (जड) पत्थर होऊँ तो उसी पर्वत का जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने इन्द्र की प्रलय-वृष्टि से ब्रज को बचाने के लिए, छाते के समान अपने हाथ में धारण किया था ।

टिप्पणी—प्रस्तुत सवैये में कवि ने ब्रज-भूमि और ब्रजेश के प्रति अपना अनन्य अनुराग प्रकट किया है ।

२—शब्दार्थ—लकुटी—लाठी ; राज तिहूँ पुर—त्रिलोकी का राज्य , कलधौत—सुवर्ण ।

सन्दर्भ—द्वारिका में बैठे हुए श्रीकृष्ण जी ब्रज के सुख का स्मरण करते हुए कहते हैं—

भावार्थ—मैं उस लकुटी और काली कमली पर त्रिलोक का राज्य निछावर करता हूँ। (भाव यह है कि काली कमली ओढ़े हुए और लाठी लिए हुए मुझे जो आनद ब्रज में घूमने में मिलता था उसके आगे त्रिलोक का राज्य तुच्छ है।) मैं नन्द की गाय चराकर और उसके आनन्द में मग्न होकर अष्टसिद्धि और नवनिधि के सुख को भूल सकता हूँ। मैं ब्रज के करील-कुँजो पर करोड़ो स्वर्ण भव्य-भवनो को निछावर करता हूँ। मेरे मन में यही उमंग उठा करती है कि कब पुनः अपनी आँखो स ब्रज के वन-बागों और सरोवरों को देखूँ।

३-**शब्दार्थ**—अधरान धरी—ओठो पर रक्खी हुई।

सन्दर्भ—कोई गोपी मुरली के सम्बन्ध मे कह रही है।

भावार्थ—हे सखी! मै मोर पंख अपने सिर पर धारण करूँगी और घुँघुचियो की माला को गले मे पहन लूँगी। पीताम्बर ओढ़कर लाठी लेकर मैं गायों और ग्वालों के संग मे घूमूँगी। तेरे कहने पर मै श्रीकृष्ण का पूरा स्वाँग जैसा कि उन्हें प्रिय है, धारण कर लूँगी; पर उनकी इस मुरली को अपने ओठों पर न रख सकूँगी (क्योंकि वह मेरी सौत बनकर प्यारे श्रीकृष्ण का अधरामृत पान कर चुकी है। भला, उससे मेरी कैसे निभेगी ?)

टिप्पणी—मुरली पर कही गयी यह उक्ति कितनी मनोहारिणी है। अंतिम पंक्ति मे यमक अलकार है।

४-**शब्दार्थ**—छछिया—छोटा सा वर्तन, छाछ—मट्ठा।

भावार्थ—गुणीजन, गणिका, गन्धर्व सरस्वती तथा शेषनाग सभी जिसका गुणानुवाद करते हैं; गणेश जिसका अनन्त

नाम बताते हैं तथा ब्रह्मा और शंकर जिसकी महिमा का पार नहीं पाते। योगी, यती, तपस्वी और सिद्ध लोग जिसके दर्शन को पाने की लालसा से निरन्तर समाधि लगाते हैं उसी (ब्रह्म) को अहीरों की लड़कियाँ तनिक से मक्खन के लिए नाच नचाती हैं अर्थात् परेशान करती हैं।

टिप्पणी—इसमें कवि ने आश्चर्य प्रकट करते हुए निर्गुण ब्रह्म की अपेक्षा सगुण-ब्रह्म को अधिक महत्व दिया है।

✓५—**शब्दार्थ**—अछेद—जिसका छेदन न हो सके।

भावार्थ—रसखानि जी कहते है कि शेषनाग, महादेव, गणेश, सूर्य तथा इन्द्र आदि जिसका निरंतर गायन करते हैं। वेद जिसको अनादि, अनन्त, अखण्ड और अछेद्य बताते हैं। नारद, शुक तथा व्यास जैसे ऋषिगण जिनका नाम रटते-रटते थक जाते हैं फिर भी उसका ओर छोर नहीं पाते, उसी ब्रह्म को अहीरों की लड़कियाँ थोड़े से मक्खन के लिए नाच नचाती हैं।

टिप्पणी—इसमें भी पूर्ववत् आश्चर्य की भावना का निरूपण हुआ है।

६—**शब्दार्थ**—विलोकत—देखकर, वारत—निछावर कर देता।

सन्दर्भ—कोई गोपी अपनी सखी से श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन कर रही है—

भावार्थ—हे सखी धूल लपेटे हुए श्रीकृष्णजी बहुत ही शोभा पा रहे थे और उनकी सुन्दर चोटी भी वैसी ही शोभा पाती थी। वे पीली काछनी कसे हुए थे और खेलते-खाते हुए आँगन में घूम रहे थे। उस समय उनके पैरों की पैजनी बज रही थी। श्रीकृष्ण की उस शोभा को जो देखता था वह उस पर करोड़ों चन्द्रमा और कामदेव को निछावर कर देता था।

हे सखी ! मैं उस कौवे के भाग्य की क्या प्रशंसा करूँ जो भगवान श्रीकृष्ण के हाथ से मक्खन-रोटी छीन ले गया।

टिप्पणी—प्रस्तुत सवैये में श्रीकृष्ण की बाल-लीला का वर्णन किया गया है।

७—शब्दार्थ—हुतो—था ; कानि करै—अनुशासन मानता है।

सन्दर्भ—अपने गाँव के पास गोचरण के हेतु आये हुए श्रीकृष्ण जी का रूप देखकर और उनकी वंशी की तान सुनकर कोई गोपी लौटी है। वह अपनी सखी से श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन कर रही है—

भावार्थ—हे सखी ! आज वह (कन्हैया) हमारे गाँव के पास गौओं को चराने के लिए आया था। मैं क्या कहूँ जो तू उस स्थान पर नहीं गयी। इस व्रज की समस्त स्त्रियाँ उस पर अपने प्राणों को निछावर करती हैं और उसकी बलैया लेती हैं। श्रीकृष्ण ने कुछ ऐसा जादू व्रज की युवतियों के ऊपर डाल दिया है कि (उसके वशीभूत होकर) कोई गोपी किसी की बात नहीं सुनती। वह कन्हैया यहाँ आकर अपनी गाय चरा गया, तान सुना गया, प्रेम पैदा कर गया और सबके चित्त को प्रसन्न कर गया।

टिप्पणी—इस सवैये में श्री कृष्ण के सौन्दर्य का प्रभाव वर्णित है। इसमें स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

८—शब्दार्थ—बौरी—पगली, गूँगी।

भावार्थ—रसखानि जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण के सिर में जिस सुन्दरता से पगड़ी कसी हुई है उसी सुन्दरता से उसमें मोरपंख लगे हुये हैं। जिस वक्षस्थल में वनमाला सुशोभित

हो रही है उसी प्रकार मस्तक में गोरज लगी हुई शोभा दे रही है। श्रीकृष्ण की इस शोभा को देखकर कोई ग्वालिनि पागल हो गयी और नेत्र मूँदकर कुछ पुकारते हुए हँसने लगी। इस समय उसकी यह दशा देखकर जब कोई सखी उसे घूँघट खोलने के लिये कहती है तो वह ग्वालिनि उत्तर देती है कि श्रीकृष्ण की मूर्ति मेरे नेत्रों में बसी हुई है अतएव मैं अपना घूँघट कैसे खोलूँ?

टिप्पणी—प्रस्तुत सवैये में श्रीकृष्ण के रूप का जादू देखते ही बनता है।

९—**शब्दार्थ**—चायन—चाव से, कितू—कहीं भी।

भावार्थ—रसखानि जी कहते हैं कि ब्रह्म को पाने की इच्छा से मैंने पुराणों के श्लोक सुने और वेद की ऋचाओं को उससे भी चौगुन उत्साह से सुना पर उसके विषय में कुछ भी जानकारी न हुई। मैंने कभी कहीं पर न तो देखा है और न सुना है कि वह ब्रह्म किस स्वरूप और किस स्वभाव का है। मैं उस ब्रह्म को पुकारते-पुकारते थक गया पर किसीने भी उसका पता न बताया। अंत में जब मैं निराश हो गया तो देखता क्या हूँ कि वह ब्रह्म वृन्दावन के निकुञ्ज में छिपा हुआ राधिका जी के पैरों को दबा रहा है।

टिप्पणी—इस सवैये में कवि ने ब्रह्म के सगुण रूप पर आस्था प्रगट की है और उसे-सुलभता से प्राप्य बताया है तथा निर्गुण ब्रह्म को दुर्लभ और दुस्साध्य बताया है।

१०—**शब्दार्थ**—गोधन—अनुमानतः यह बिरहा के समकक्ष की कोई राग थी जो अब लुप्त हो गयी है। 'रसखानि और

उनका काव्य' नामक पुस्तक मे इस पर विचार किया गया है। विशेष जानकारी के लिए पाठक उक्त पुस्तक को देख सकते हैं।

सन्दर्भ—कोई गोपी श्रीकृष्ण के प्रेम-पाश में फँस गयी थी। श्रीकृष्ण की मोहनी छवि का जादू उस पर पड़ा देखकर ब्रज के लोग चवाव करने लगे। इस चवाव को सुनकर वह गोपी अपनी सखी से कहती है।

भावार्थ—जब वह (कन्हैया) अटा पर चढ़कर मोहिनी तानो से गोधन नामक गीत गाकर मुरली को मीठे-मीठे स्वरों मे बजायेगा तो मैं अपने कान मे उँगली डाल लूँगी। इस प्रकार उसके गाने और वशी वजाने का प्रभाव मुझ पर कुछ भी न पड़ेगा किन्तु मैं ब्रज के लोगो से पुकार कर यह बात कह दे रही हूँ कि यदि कही कल उसके मुख की मुस्कान दिखायी पडी तो फिर किसीके बहुत समझाने पर भी मेरा मन हाथ में न रहेगा, न रहेगा, न रहेगा।

टिप्पणी—'सँभारी न जैहै न जैहै न जैहे।' में पुनरुक्ति-प्रकाश अलङ्कार है। कवि ने पुनरुक्ति करके अपने कथन को जोर-दार बना दिया है।

१-शब्दार्थ—माखन चाखन हारो—मक्खन खाने वाले श्रीकृष्ण ; राखन हारो—रक्षा करने वाला।

भावार्थ—रसखानि जी कहते हैं कि ऐ मन ! तू यह देखता क्यो नही कि द्रौपदी, गणिका, गज, गीध तथा अजामिल का उद्धार प्रभु ने कैसे किया। गौतम-पत्नी अहिल्या कैसे तरी और कैसे प्रह्लाद का भारी दु.ख दूर हुआ ? तू व्यर्थ में सोच क्यों करता है। बेचारा यम तेरा क्या बना-बिगाड़ लेगा जब की स्वयं श्रीकृष्ण जी तेरी रक्षा करने वाले हैं।

टिप्पणी—इसमें मृत्यु-भय से त्रस्त जीव को भगवान का सहारा बताकर धैर्य रखने के लिए कहा गया है। अंतिम पंक्ति मे वृत्यनुप्रास है।

१२-शब्दार्थ—गात—शरीर ; फनी—सर्प।

भावार्थ—रसखानि कहते हैं कि देखो, शंकर जी धतूरे का पत्ता चबा रहे हैं और शरीर मे विभूति लगा रहे हैं। उनके शिर की जटा कंधे के चारों ओर लटक रही है और उसके ऊपर सुन्दर सर्प शोभा पा रहा है। ये जिसे अपनी कृपादृष्टि से देख लेते हैं उसके समस्त दुःख को दूर कर देते हैं। ऐसे उदार शंकर जी गजखाल पहिने हुए और कपालों की विशाल माला गले में धारण किये गाल बजाते चले आ रहे हैं।

टिप्पणी—शिव जी के भक्त शिव जी को प्रसन्न करने के लिए गाल बजाते हैं। इसी क्रिया को लक्ष्य करके रसखानि ने चुटकी लिया है।

✓१३-शब्दार्थ—संयम—संजम, मोसे—मुझसे।

भावार्थ—रसखानि कहते हैं कि ऐ अमृतमयी गंगा जी! मेरी बात सुन। रोगियों ने तेरा जलपान करना संजीविनी सेवन करने के समान मान लिया है, वे अब न वैद्य की औषधि ही खाते हैं और न कुछ संयम ही करते हैं। तेरा जल सेवन करने से कुपथ्य भी पथ्य हो जाता है। इसीसे तेरा भरोसा करके शंकर जी आक-धतूर चबाते और विष खाते फिरते हैं।

टिप्पणी—इसमें गंगाजल की महिमा वर्णित है।

१४-शब्दार्थ—सरै—काम मे आवें; अनुजानी—अनुसरण

भावार्थ—रसखानि कहते हैं कि वही वाणी सार्थक है

जो श्रीकृष्ण का गुणानुवाद करे, वही कान सार्थक हैं जो उनकी कथा का श्रवण करें ; हाथ भी वही सार्थक है जो उनकी सेवा करें और पैर सार्थक हैं जो उनके संग अनुसरण करें अर्थात् तीर्थाटन करें। वे ही प्राण सफल हैं जो उनके संग में रहा करें और मान भी वही सफल है जो उन के प्रति हो। इसी प्रकार वही व्यक्ति आनन्द-राशि को प्राप्ति कर सकता है जिसे आनन्द-राशि-श्रीकृष्ण का सानिध्य प्राप्त हो।

टिप्पणी—अंतिम पंक्ति में यमक की बहार दर्शनीय है।

१५–शब्दार्थ—नातो—गम ; छोहरा—लड़का।

सन्दर्भ—कोई गोपी अपनी सखी से श्रीकृष्ण की वंशी का प्रभाव वर्णन करती हैं—

भावार्थ—हे सखी ! समझ में नहीं आता कि यशोदा के पुत्र ने वंशी बजाई या सर्वत्र विष बिखेर दिया। देखो न, जो दूध दुहकर गर्म होने के लिए आग पर रखा गया था, वह ठंडा हो गया पर (वंशी के प्रभाव के कारण) किसी ने उसे जमाया तक नहीं। जामन भी रक्खा हुआ खट्टा हो गया। ज्यों ही श्रीकृष्ण जी ने वंशी की तान सुनाई, सभी अचेत-से हो गये उनके हाथ-पाँव वश में नहीं रहे। कहाँ तक कहूँ पुरुष, नव युवतियाँ एवं सारा ब्रज वंशी-ध्वनि को सुनकर बावला बन-गया है।

टिप्पणी—इसमें सन्देह अलंकार है।

१६–शब्दार्थ—गैबो—गान, मरकत—मणि।

सन्दर्भ—द्वारिका में बैठे द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण जी ब्रज का स्मरण कर रहे हैं—

भावार्थ—ग्वालों के संग वन की ओर जाना, फिर वहाँ से लौटना, गायों का चराना और किसी को देखकर गाना यह सब बचपन की बातें सोच कर मेरे नेत्र फड़क उठते हैं। मैं यहाँ की गज-मुक्ता की माला को व्रज की घुँघुचियों की माला पर निछावर करता हूँ। हाय! कुंजों की सुधि आने पर तो मेरे प्राण धड़कने लगते हैं। गोबर से लिपे हुए व्रज के घर मुझे इतने प्यारे लगते हैं कि मरकतमणि जड़े हुए ये महल (इसके सामने) फीके मालूम पड़ते हैं। द्वारिका के मन्दिर यद्यपि मन्दराचल से भी ऊँचे हैं पर इन से मेरे हृदय में संतोष नहीं है। मेरे हृदय में तो व्रज का खरका सदैव खटकता रहता है अर्थात् व्रज के खरकों पर मेरा चित्त लगा हुआ है।

टिप्पणी—इन कवित्त में भगवान् श्रीकृष्ण ने व्रज में की गयी क्रीडाओं का स्मरण किया है। इसमें स्मरण अलंकार है।

१७-शब्दार्थ—छार—भस्म, पंचानल—पचाग्नि।

भावार्थ—रसखानि कहते है कि अपार सुख-सम्पत्ति की गणना करने से क्या और योगी बनकर शरीर में विभूति लपेटने, पञ्चाग्नि तापने, जलशयन करने तथा सिन्धुराज के ओर-छोर तक विजय प्राप्त करने से भी क्या होता है। निरन्तर जप, तप, संयम और प्राणायाम करना और हजारों तीर्थों की बात पूछना भी मूर्खता है। वह व्यक्ति एकदम गँवार है जिसने श्रीकृष्ण से प्रेम नहीं किया और उनके दरबार का सेवन नहीं किया।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त में योग-साधना और जाप, तप, तीर्थ, व्रत और उपवास व्यर्थ बताया गया है और एकमात्र भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति करना ही मनुष्य का इष्ट-कार्य बताया गया है।

१८–**शब्दार्थ**—कंचन—सोना ; दीठि—दृष्टि ; उजारे—उँजेले ; प्रतिहारिन—द्वारपाल । मुक्ताहल—मोती ।

भावार्थ—जिसके पास ऐसे सुवर्ण-मन्दिर हैं जिन पर दृष्टि नही ठहरती और जिनमें जड़े हुए लाल और माणिक्य रत्न दीपमाला की भाँति जगमगा कर सदा प्रकाश करते रहते है तथा जिसके द्वार पर राजाओ की ऐसी भीड़ लगी रहती है जो द्वार-पालों के हटाये भी नही हटती । रसखानि कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति का और ऐश्वर्य मैं कहाँ तक वर्णन करूँ । ऐसा ऐश्वर्य-सम्पन्न व्यक्ति गंगा जी मे स्नान कर मोतियो का दान करता हो, वेद का बीस वार पारायण करता हो तथा सवेरे से ही ध्यान करता हो तो भी सब व्यर्थ ही है यदि उसने चित्त देकर पीताम्बर धारी श्रीकृष्ण से प्रेम नहीं किया ।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त मे कृष्ण-प्रेम के समक्ष ऐश्वर्य की व्यर्थता सिद्ध की गयी है ।

१९–**शब्दार्थ**—लहलही—हरी-भरी, तपन—जलन ।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण जी गोचारण कर वन से शृंगार किये लौट रह हैं । इस समय कोई गोपी कोठे पर चढ़कर अपनी सखी को श्रीकृष्ण की शोभा दिखाती है—

भावार्थ—हे सखी ! जरा कोठे पर चढ़कर जमुना के किनारे कदम्ब के पास उस (श्रीकृष्ण) के पीताम्बर की फहरानि देखो । उसके मस्तक पर गोरज और गल में नयी बनमाला शोभा दे रही है । गायें उसके आगे-आगे चल रही हैं और ग्वाल-बाल उसके पीछे-पीछे मधुर-मधुर गाते आरहे हैं । श्रीकृष्ण जी अपनी चितवनि तिरछी किये मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं और धीरे-धीरे बंशी बजा रहे है । वे इस प्रकार आनन्द की वृष्टि करते हुए, शरीर

की जलन को शान्त करते हुए तथा नेत्रों और प्राणों को प्रसन्न करते हुए गोकुल को वापस आ रहे हैं।

✓२०-शब्दार्थ—ढीटा—लड़का ; तरनि-तनूजा—सूर्य की पुत्री यमुना , अनहितुन—शत्रुओ।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण के कालियदह में कूद पड़ने पर यशोदा जी विलाप कर रही हैं—

भावार्थ—हम दोनों प्राणी सबको अपने बच्चे के समान जानते थे और सभी की भलाई करने के लिए नित्य दौड़ पड़ते थे। ऐसे लोग आज दूर से तमाशा देख रहे हैं और यमुना के निकट नहीं आ रहे हैं। मैं अपने शत्रुओं की अन्य बातों की क्या चर्चा करूँ जब कि मेरे हित चाहने वाले लोग ही आँख छिपा रहे हैं। हाय ! मैं क्या करूँ, लोग मुझे खाली धीरज ही देते हैं और श्रीकृष्ण को कालिय नाग से नहीं छुड़ाते हैं।

टिप्पणी—इस कवित्त में माता यशोदा का विलाप बहुत ही भाव-पूर्ण है। इसमें करुण रस मूर्तिमान हुआ है। आली, खाली, लाठी, बनमाला और काली शब्दों में वृत्यनुप्रास की सुन्दरता मन को मुग्ध कर देती है।

प्रेमवाटिका

१-शब्दार्थ—छवि—सुन्दरता ; वारौं—निछावर करूँ।

भावार्थ—रसखानि जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण की इस छवि पर मैं करोड़ों कामदेवों को निछावर करता हूँ जिसकी उपमा कविगण अभी तक नहीं खोज सके।

२-शब्दार्थ—प्रेम वाटिका—प्रेम रूपी फुलवारी।

भावार्थ—श्री राधिका जी प्रेम की भण्डार हैं और श्री कृष्ण जी प्रेम की मूर्ति हैं, ये दोनो प्रेमवाटिका के माली और मालिन हैं।

३—**शब्दार्थ**—कोय—कोई; जन—मनुष्य, प्राणी।

भावार्थ—सभी प्रेम-प्रेम कहकर चिल्लाते है पर वास्तविकता तो यह है कि प्रेम को कोई भी नही जानता। यदि मनुष्य प्रेम की यथार्थता को जान ले तो फिर व्यर्थ में उसे रोना ही क्यों पड़े।

४—**शब्दार्थ**—अनुपम—जिसकी उपमा न हो सके।

भावार्थ—रसखानि जी कहते हैं कि प्रेम अगम है, अनुपम है, अमित है, लोग उसे समुद्र के समान बताते है। जो व्यक्ति इस प्रेम रूपी समुद्र के पास पहुँच जाता है, इसे फिर वापस नही लौटना पड़ता, अर्थात् उसकी मुक्ति हो जाती है।

५—**शब्दार्थ**—जलधीस—जल के स्वामी ; गिरीस—शंकर।

भावार्थ—प्रेम रूपी मदिरा का पान करके वरुण जल के स्वामी कहलाये और प्रेम से विष पान करने के कारण ही शंकर जी पूज्य हुए।

६—**शब्दार्थ**—अनमोल—अमूल्य।

भावार्थ—प्रेम रूपी दर्पण कुछ अजीब खेल दिखाता है। इसमें अपना स्वरूप कुछ अमूल्य ही दिखायी पड़ता है।

७—**शब्दार्थ**—खड्ग—तलवार; सूधो—सीधा।

भावार्थ—प्रेम कमल के तंतुओं से भी सूक्ष्म और

तलवार की धार से भी तीक्ष्ण है। प्रेम का पंथ दुर्गम है। यह अत्यन्त सीधा है और अत्यन्त टेढ़ा भी।

८-शब्दार्थ—वेद-मरजाद—वेद की मर्यादा।

भावर्थ-प्रेम लोक और वेद की मर्यादा, लज्जा, कार्य, सन्देह तथा उचित अनुचित आदि का विचार सबको अपनी धारा में बहा ले जाता है। (भाव यह है कि प्रेमी इन सबका कुछ भी विचार नहीं रखता।)

९-शब्दार्थ—भये—हुये; कहा—क्या।

भावार्थ—रसखानि जी कहते हैं कि शास्त्रों को पढ़कर पंडित होने या कुरान को पढ़कर मौलवी होने से क्या हुआ यदि इन्होंने प्रेम को बिल्कुल नहीं जाना।

टिप्पणी—कबीरदास जी ने भी इसी आशय का दोहा कहा है—

> पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, हुआ न पंडित कोय।
> ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय॥

१०-शब्दार्थ—मुनिवर्य—मुनिजन।

भावार्थ—मुनिजन कहते हैं कि काम, क्रोध, मद, मोह भय, लोभ, द्रोह और मात्सर्य आदि सभी से परे प्रेम की स्थिति है।

११-शब्दार्थ—जोवन—यौवन, स्वारथ—स्वार्थ।

भावार्थ—रसखानि जी कहते हैं कि सच्चे प्रेम में गुण, यौवन, रूप, धन या किसी प्रकार के स्वार्थ की अपेक्षा नहीं रहती। यह तो सर्वथा शुद्ध और कामना रहित होता है।

१२-शब्दार्थ—इकरस—एक अवस्था में।

भावार्थ—रसखानि जी कहते हैं कि प्रेम अत्यन्त सूक्ष्म, अत्यन्त-कोमल और अत्यन्त पतला होता है। यह सबसे दूर भी है। यह सबसे सदैव कठिन रहा करता है और निरन्तर एकरस से परिपूर्ण रहता है।

१३-शब्दार्थ—लखाय—दिखाइ पड़ते हैं।

भावार्थ—संसार में सब कुछ प्रत्यक्ष दिखायी पड़ता है और सबके विषय में चर्चा चला करती है पर ईश्वर और प्रेम यह दोनो अदृश्य और अकथनीय दिखायी पड़ते हैं।

१४-शब्दार्थ—कुछहि—कुछ; सेस—बाकी।

भावार्थ—प्रेम वही है जिसको बिना जाने संसार की सारी जानकारी अपूर्ण रहती है और जिसे जान लेने पर संसार मे जानने के लिए कुछ भी शेष नहीं बचता है।

१५-शब्दार्थ अरु—और, इनते—इससे।

भावार्थ—रसखानि जी कहते हैं कि दाम्पत्य सुख, विषय-लिप्सा, पूजा, निष्ठा तथा ध्यान इन सबके परे विशुद्ध-प्रेम की स्थिति है।

१६-शब्दार्थ—कलम—स्त्री, सविसेह—विशेष, सर्वोच्च।

भावार्थ—मित्र, पत्नी, भाई, पुत्र इनमे जो सहज प्रेम देखा जाता है वह शुद्ध प्रेम के अंतर्गत नही आता है। शुद्ध प्रेम तो इससे अधिक अकथनीय विशेषता रखता है।

१७-शब्दार्थ—इकअंगी—एक ओर का प्रेम।

भावार्थ—प्रेम सदैव एकांगी और अकारण होता है। वह सदा समान और एक रस रहता है अर्थात् प्रेम काल से बाधित नहीं होता है। जो अपने प्यारे को ही अपना सर्वस्व समझता है। उसीका प्रेम सच्चा कहा जाता है।

१८-शब्दार्थ—बखानौ—प्रशंसा करो।

भावार्थ—जो अपने प्यारे से सदैव डरता है और उससे कभी कुछ नहीं चाहता। उस पर जो विपत्ति आती है, उसको सहता रहता है तथा जो सदैव एक रस (प्रेम) की ही इच्छा करता है उसीका प्रेम प्रशंसनीय है।

१९-शब्दार्थ—प्रान—प्राण, तरफि—तड़पना।

भावार्थ—सभी 'प्रेम-प्रेम' चिल्लाते हैं पर प्रेम की फाँस तो बहुत ही कठिन होती है। प्रेमी के प्राण अपने प्यारे से बिछुड़ने पर निकलते नहीं वरन् तड़पते हैं, उस समय केवल उच्छ्वास ही चलता है।

२०-शब्दार्थ—हरी—ईश्वर, ज्यो—जैसे।

भावार्थ—प्रेम ईश्वर रूप है और ईश्वर प्रेम-रूप है। यह एक होते हुए दो नाम से प्रसिद्ध हैं जैसे सूर्य और धूप एक होते हुए दो नाम से शोभा पाते हैं।

२१-शब्दार्थ—मरम—मर्म, भेद, कोउ—कोई।

भावार्थ—जो प्रेमी प्रेम की फाँस में फँसकर मर जाता है वही अमर होता है। प्रेम के मर्म को जाने विना मरकर कोई भी अमरता नहीं प्राप्त करता।

२२-शब्दार्थ—तनहि—शरीर, पै—पर।

भावार्थ—संसार में लोगों को सबसे अधिक अपने शरीर का मोह होता है पर प्रेम तो शरीर से भी अधिक प्यारा होता है।

टिप्पणी—लोग शरीर त्यागकर प्रेम की रक्षा करते हैं।

से राजा दशरथ ने पुत्र-प्रेम की रक्षा के लिए अपना प्राण त्याग दिया था।

२३–**शब्दार्थ**—चाहि—इच्छा, कहाहि—कहलाता है।

भावार्थ—जिसको पा चुकने पर प्रभु और उनके दिव्य धाम वैकुण्ठ की चाहना नहीं रहती है वही प्रेम अलौकिक, शुद्ध, शुभ और सरस होता है।

२४, २५–**शब्दार्थ**—नेजा—एक शस्त्र; एतोहू—इतना ही।

भावार्थ—रसखानिजी कहते हैं कि प्रेम को कोई फाँसी कहता है, कोई तलवार बताता है और कोई इसे नेजा, भाला, तीर और अनोखी ढाल बताते हैं। पर हमने इसके सम्बन्ध में केवल इतना ही सुना है कि प्रेम एक अजीब खेल है जहाँ पर प्राणों की बाजी लग जाती है और दिल का दिल से मिलाप होता है।

२६–**शब्दार्थ**—टूक—टूक—टुकड़े टुकड़े, लेहु—लीजिए।

भावार्थ—रसखानि जी कहते हैं कि प्रेम की खातिर अपने शिर को काट दो, हृदय को छेद दो और शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दो फिर इसके बदले हँसकर दुनिया से केवल वाह-वाही (प्रशंसा) प्राप्त करो।

२७–**शब्दार्थ**—याही तें—इसी से; लही—पायी।

भावार्थ—यही कारण है कि प्रेम ने मुक्ति आदि सभी से अधिक यश प्राप्त किया है। प्रेम का प्रादुर्भाव होने पर संसार के सारे नेम और बंधन आप-से-आप नष्ट हो जाते हैं।

टिप्पणी—इसमे प्रेम का महत्व मुक्ति से अधिक बताया गया है।

२८-शब्दार्थ—पै—पर; दीन—दिया है।

भावार्थ—भगवान् के वश में सारा संसार है पर भगवान् प्रेम के अधीन हैं। इसलिए भगवान् ने स्वयमेव इसे गौरवान्वित किया है।

२९-शब्दार्थ—ताहु तें—उससे भी, अनिवार—अनिवार्य।

भावार्थ—सभी श्रुतियों का निचोड़ यह है कि वेदोक्त धर्म ही मूल धर्म है पर प्रेम उससे भी अधिक अनिवार्य परम धर्म है।

३०-शब्दार्थ—अनन्य—अद्वितीय।

भावार्थ—यद्यपि यशोदा और नन्द जी तथा सभी ग्वाल-बालों का प्रेम धन्य है पर गोपियाँ तो इस विश्व में अनन्य प्रेम रखने वाली हुईं।

टिप्पणी—गोपियों का प्रेम सचमुच सराहनीय है। सूरदास जी ने भी गोपियों को 'प्रेम की धुजा' कहा है।

३१-शब्दार्थ—सराहि—प्रशंसा करके, आहि—है।

भावार्थ—गोपियों के प्रेम-रस का थोड़ा सा माधुर्य उद्धव को भी मिला जिसकी उन्होंने बहुत प्रशंसा की। अब दूसरा कौन है जो वह माधुर्य पा सके।

३२, ३३-शब्दार्थ—तूल—विस्तार।

भावार्थ—श्रवण, कीर्तन और दर्शन करने से मनुष्य में जो भाव पैदा होता है उसे प्रेम कहते है। शुद्ध और अशुद्ध की दृष्टि से इस के दो भाग किये जाते हैं। जिस प्रेम में स्वार्थ रहता है उसे अशुद्ध प्रेम कहते हैं और

जिस प्रेम में स्वार्थ नहीं रहता वह शुद्ध प्रेम कहलाता है। नारद आदि मुनीश्वरों ने इसी प्रेम में प्रस्तार आदि जोड़कर इसका बहुत विस्तार किया है।

३४-शब्दार्थ—एक रस—निर्विकार।

भावार्थ—रसखानि जी कहते हैं कि जो आनन्दमय, स्वाभाविक, निःस्वार्थ, अचल और महान् होता है तथा जो सदैव एक रस और शुद्ध रहता है वही सच्चा प्रेम है।

३५-शब्दार्थ—छत्र—स्थान।

भावार्थ—प्रेम जिस (बीज) से उत्पन्न होता है वह बीज प्रेम है और जिस (क्षेत्र) में उपजता है वह क्षेत्र भी प्रेम ही है तात्पर्य यह है कि प्रेम, प्रेम से उत्पन्न होता है और प्रेम में ही बढ़ता है।

३६-शब्दार्थ—रसिक—प्रेमी।

भावार्थ—प्रेम जिससे पोषित होकर पनपता, बढ़ता, फूलता, फलता और महान होता है वह सब प्रेम है। इसे प्रेमी रसखानि कहते हैं।

३७-शब्दार्थ—वेस—महत्ता।

भावार्थ—रसखानि जी कहते है कि जो (प्रेम) जिस से और जिस में उत्पन्न होता है तथा जिस के कारण उसे महत्ता मिलती है वह सब प्रेम ही प्रेम है। ऐसा सम्पूर्ण संसार कहता है।

३८, ३९, ४०-शब्दार्थ—गदर—विप्लव; साहवी—स्वामित्व।

सन्दर्भ—रसखान जी अपना परिचय देते हैं—

भावार्थ—रसखानिजी कहते हैं कि मैंने प्रभुता को विप्लव-कारिणी तथा दिल्ली नगर को श्मशानवत् समझकर शाही परिवार की ठसक को छोड़ दिया और फिर प्रेम-निकेतन श्री वृन्दावन में आ गया। यहाँ गोवर्धन धाम में आकर श्री राधा-कृष्ण की सुन्दर युगल मूर्ति के शरणापन्न हुआ और चित्त देकर प्रभु से प्रेम किया। मैंने भगवान् के युग-चरण-कमलों के पराग को देखकर यह 'प्रेम-वाटिका' उन्हींके चरणों में अर्पित की है जिससे इस 'प्रेम-वाटिका' में प्रेमी-भक्त भौंरे गुंजार करते रहें।

४—आनन्दघन

—::⌣::०::⌣::—
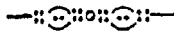
आनन्दघन के काव्य की पृष्ठभूमि—हिन्दी साहित्य के इतिहास मे घनानन्द का उल्लेख 'रीतिकाल के अन्य कवि' के अंतर्गत हुआ है। स्वर्गीय आचार्य प० रामचन्द्र जी शुक्ल ने इसका कारण यों लिखा है—"ये पिछले वर्ग के कवि प्रतिनिधि कवियो से केवल इस बात मे भिन्न है कि इन्होने क्रम से रसो, भावो, नायिकाओं और अलंकारों के लक्षण कहकर उनके अंतर्गत अपने पद्यो को नही रखा है। अधिकांश मे ये भी शृङ्गारी कवि है और इन्होने भी शृङ्गार रस के फुटकल पद्य कहे है। रचना शैली मे किसी प्रकार का भेद नही है। ऐसे कवियो मे घनानन्द सर्वश्रेष्ठ कवि हुए है।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि घनानन्द एक प्रेमोन्मत्त कवि थे जो रीति के बन्धन को पूर्ण रूप से तोड़ डालना चाहते थे। वास्तव मे बात यह थी कि रीति-बद्ध रचना के अन्दर ये अपने हृदय का विस्तार नही दिखा सकते थे। प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए हृदय का पूर्ण योग संघटित करने की अभिलाषा रखने क कारण ही इन्होंने स्वतन्त्र पथ का अनुसरण किया था। विहारी आदि कुछ कवियो ने लक्षण-ग्रन्थ लिखने वाले कवियो से थोड़ा सा पार्थक्य रखने का प्रयत्न किया था किन्तु इनकी रचनाओ को देखने से पता चलता है कि इन कवियो की दृष्टि लक्षणो पर अवश्य थी और लक्षणो को लक्ष्य करके ही इन्होने अपनी कविताएँ लिखी थीं घनानन्द जी इन कुछ स्वतन्त्र कवियों से भी अधिक स्वतंत्रता

चाहते थे। मर-पचकर कविता करना इन्हें तनिक भी इष्ट नहीं था अतएव रसखानि की ही भाँति इन्हें जब जिस भाव की कविता सूझती थी, लिख जाते थे।

वर्ण्य-विषय—घनानन्द जी ने संयोग और विप्रलम्भ श्रृङ्गार दोनों का वर्णन किया है किन्तु वियोग श्रृङ्गार का अपेक्षाकृत अधिक वर्णन किया है। नायिका-भेद का निरूपण इन्होंने बिल्कुल नहीं किया है भारतीय त्योहारों विशेषकर होली और दिवाली का वर्णन भी इनकी रचना में पाया जाता है।

समीक्षा—घनानन्द जी विप्रलम्भ श्रृङ्गार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। इनके प्रेम का स्तर बहुत ऊँचा है। प्रेम की गूढ़ अन्तर्दशा का निरूपण करने के लिए इन्होंने विरोधाभास या वक्रोक्ति पद्धति का आश्रय लिया है। सम्पूर्ण रचना में विरोधाभास इतना अधिक है कि उसके द्वारा इनकी रचना की पहचान की जा सकती है। विरोधाभास का यह बहुत प्रयोग इस बात का द्योतक है कि ये प्रेम की अनिर्वचनीयता और हृदय की आंतरिक अनुभूतियों का यथार्थ चित्रण करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इस प्रयत्न में इन्हें पूर्ण सफलता मिली है। अपने इस प्रयोग-वैचित्र्य के विषय में ये कहते हैं—

> आँखिन मूँदिबो बात दिखावत, सोवनि जागनि बात ही पेखि लै।
> य त सरूप अनूप अरूप है, भूल्यौ फहा तू अलेखहि लेखि लै॥
> बात की बात सुजान विचारिबो, है छमता सब ठौर विसेखि लै।
> नैननि काननि बीच बसै, घनआनन्द मौन मसान सुदेखि लै॥

इनके वर्णन का ढंग इतना अनूठा है कि इनके कवित्तों को देखकर सबका मन ललचा जाता है। 'जग की कविताई' के धोखे में रहने वाले लोग इनकी कविता को पढ़कर चकित हो जाते हैं। भाषा पर अद्भुत अधिकार रखने के कारण

आनन्दघन जी ने स्वय यहाँ तक कह डाला है कि लोग मर पच कर,कवित्त बनाते हैं पर मेरे कवित्त स्वय मुझको बनाते हैं —

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्रानिन प्यारे भरे अति पानिप मायल घायल चोप चढावत॥
यौं 'घनआनन्द' छावत भावत जानें सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत॥

घनानन्द जी की उपर्युक्त गर्वोक्ति वास्तव मे एकदम यथाथ है। आचार्य शुक्ल जी ने इनके विषय में कहा है कि "घनानन्द जी उन विरले कवियो में हैं जो भाषा की व्यजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओ के अनूठे रूप-रंग की व्यञ्जना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियो म दूसरा नही हुआ।" घनानन्द जी ने अपनी भावनाओ को प्रायः अलकृत ढग से ही प्रकट किया है किन्तु ऐसी अवस्था मे भी हृदय की स्थिति का सच्चा आभास दिखाना ही इनका मुख्य लक्ष्य था। अनेक स्थानो पर इन्होंने अत्यन्त चलती हुई व्रजभाषा लिखी है। देखिए—

कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि-कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।
पैंडे परे पापी ये कलापी निसिद्यौस ज्यों ही,
चातक! घातक त्यौं ही तूहू कान फोरि लै॥
आनन्द के घन प्रान-जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरो दल जोरि लै॥
जौ लौं करैं आवन विनोद-बरसावन वे,
तौ लौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै॥

कहौ कछु और, करौ कछु और, गहौ कछु और, लखावत औरै।
मिलौ सब रंग, कहूँ नहिं सङ्ग, तिहारी तरंग, तकै मति बौरै॥

गटौ बतियानि, मढ़ौ घतियानि, डढ़ौ छतियानि, निदान की ठौरै।
मह्वाछल छाय, खुले ही वनाय, कितै घनआनन्द! चातक दौरै॥

विहारी की भाँति इन पर भी फारसी काव्य की प्रेम-पद्धति का प्रभाव पड़ा था किन्तु इन्होंने उसे एकदम प्रकट नहीं होने दिया है। विरह-दशा का चित्रण इन्होंने बड़ी सावधानी से किया है। इनका वियोग अत्यन्त गम्भीर और प्रशान्त है।

संयोग शृंगार के वर्णन में इन्होंने अश्लीलता नहीं आने दी है। भाग में कृष्ण और गोपियों के मिलन में और उनके इंगितों व चेष्टाओं मे इन्होंने उनके हृदय का ही प्रतिबिम्ब स्पष्ट करने का प्रयास किया है। बाहरी हाव-भावों का चित्रण इनकी रचना में बहुत कम मिलता है। आचार-निष्ठता की ओर इनकी प्रवृत्ति पूर्णरूपेण थी इसलिए संयोग और वियोग दोनों में इनके प्रेम का प्राकृतिक विकास दिखायी पड़ता है।

भाषा और शैली—घनानन्द जी की ब्रजभाषा अत्यन्त शुद्ध और परिमार्जित है। इतनी शुद्ध ब्रजभाषा विहारी को छोड़कर और किसी की नहीं है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर को इनकी भाषा बहुत पसन्द थी इन्होंने भाषा को अपनी ओर से बल प्रदान कर सशक्त बनाया है। कवित्त और सवैयों के बीच मे नाद-व्यंजना का भी ये बराबर ध्यान रखते थे। इनकी भाषा में जैसी वचन—वक्रता और लाक्षणिकता दिखायी पडती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। मुहाविरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग इन्होंने बहुत सुन्दर किया है।

आनन्दघन

सुजान-सागर

१–**शब्दार्थ**—रग अनग जिवारी—अनग के रग को जागरित करने वाली, कामोद्दीपक ; जान (१) सुजान, प्रवीण (२) प्यारा ; सहजै रिझवार—सहज ही प्रसन्न होने वाले , उदार विलास—विलास के लिए उदार हैं ; रासबिहारी—रास मे विहार करने वाले, लीला पुरुषोत्तम , मनोरथ—मनोकामना ; तुमही—तुम्हीं ; मो मनोरथ पूरनकारी—मेरे मनोरथ पूर्ण करने योग्य हैं।

सन्दर्भ—भक्त घनानन्द भगवान श्रीकृष्ण से अपनी मनोकामना पूरी करने से लिए प्रार्थना करते हैं।

भावार्थ—जिन (श्रीकृष्ण) के (प्रभाव के) कारण माता का यशोदा नाम (सार्थक) हुआ और 'यदुवश' 'चन्द्रवश' हुआ जिसमे चन्द्रमा की कला के समान सब गुण दिखाई पडे ; उन (श्रीकृष्ण) की मूर्ति शोभा के समूह से युक्त, अत्यन्त आनन्ददायिनी और अनग के रग को जागरित करने वाली है। (हे श्रीकृष्ण जी !) आप अत्यन्त प्रवीण हैं। अथवा सब को बहुत प्यारे हैं , सहज ही प्रसन्न होने वाले हैं, विलास (क्रीडा) करने मे बहुत उदार हैं और जो आपके सहवास का अभिलाषी होता है उसकी मनोकामना पूर्ण करने के लिए आप रासबिहारी तक बन जाते हैं। (हे प्रभो !) मेरे मनोरथ आपके पूर्ण करने के योग्य है इसलिए आप ही मनोरथो को भी पूर्ण करें।

२-शब्दार्थ—मेरोइ जीव—मेरा जीव ही ; मारतु—सताता है, पीड़ा पहुँचाता है; आस तिहारियै—तुम्हारी ही आशा है ; जानि कै—परिचित होकर , पावक—अग्नि ; दहनौ—जलना।

सन्दर्भ—कोई विरहिणी गोपी अपने मन की व्यथा कहती है—

भावार्थ—हे कृष्ण प्यारे। जब मेरा प्राण ही (मेरे वश में न रहकर) मुझे व्यथित करता है तो मैं तुमसे क्या कहूँ, तुम्हें कैसे दोषी ठहराऊँ। (अब भाग्य ने कुछ ऐसा पलटा खाया है कि प्राणों की कौन कहे, आँखों ने (जिनका बहुत भरोसा था) अपना पुराना (सुख देने वाला) स्वाभाव छोड़ दिया है। जान पड़ता है. अब कुछ ऐसे ही भोग भोगने पड़ेंगे। हे आनन्द के मेघ श्रीकृष्ण जी ! मुझे तो केवल आपकी की ही आशा है फिर नाहक आप मुझसे क्यों उदासीन रहा करते हैं ? यदि आप मेरी इस दयनीय दशा से इतना परिचित होकर भी अनजान बन रहे हैं तब तो निश्चय ही मुझे बिना आग के जलना (बदा) है।

टिप्पणी—देखिए, प्राणों और नेत्रों द्वारा सतायी गयी वियोगिनी गोपी का दुख प्रियतम के उदासीन हो जाने पर कितना बढ़ जाता है। सचमुच बड़ी ही करुणापूर्ण स्थिति है। "बिन पावक ही दहनो है।" में विरोधाभास अलकार है।

३-शब्दार्थ—इन बाट परी सुधि—इस हिस्से में सुधि पड़ी है , रावरे भूलनि—आपके (हिस्से) में भूलना ; उराहनो—उलाहना ; सीस चढ़ाय लई—सिर पर धारण कर लिया ; मन भाई—मन को रुचिकर लगने वाली।

सन्दर्भ—कोई विरहिणी गोपी श्रीकृष्ण को सम्बोधित करके कहती है—

भावार्थ—मेरे हिस्से में आप का स्मरण करना पड़ा है और आपके हिस्से मे मेरा भूलना पड़ा है। (जब दोनों ही अपने हिस्से के अन्दर अपना निर्वाह कर रहे हैं तो फिर) मैं आपको उलाहना दूँ भी तो कैसे ? हे नाथ ! मैं सदा आप की (चर्चा चलाकर और आप को पाने की) आशा करके ही जी रही हूँ। किन्तु आप मेरे साथ उसी प्रकार (निष्ठुरता) का व्यवहार कर रहे हैं जिस प्रकार मेघ चातक के साथ करता है। खैर अब तो मैंने (आप की कृपा व निष्ठुरता) सब कुछ सिर पर धारण कर लिया है। इसलिये आपके मन को जो रुचे वही कीजिये किन्तु हे सुजान ! (इतना ध्यान अवश्य रहे कि) तुम्हीं मेरे जीवन-प्राण हो और मैं तुम्हारी ही चर्चा चलाकर जीती हूँ। (इतना जान लेने पर विश्वास है, आप कृपा करेंगे क्योंकि कोई भी अपने प्रिय का आत्मघात नहीं करता।)

टिप्पणी—'घन-चातक की गति'—चातक सदा पी-पी रटता रहता है और प्यारे के दर्शन की आशा किये हुए आकाश की ओर देखता रहता है किन्तु मेघ उपलवृष्टि कर पपीहे के पखों को भी नष्ट कर देता है अथवा एक भी बूँद पानी न देकर चातक को प्यास से मार डालता है। उपर्युक्त सवैये में कृष्ण की निष्ठुरता की ओर संकेत है।

४—**शब्दार्थ**—हित पीर—प्रेम की पीर ; हियरो—हृदय ; दुख दागनि—दुख से दागा जाना ; सुख में—सुखमय ; निरखे—देखे ; विखपागनि—विप से पूर्ण होना है।

सन्दर्भ—कोई विरहिणी गोपी कहती है—

भावार्थ—हे प्यारे ! मेरी जो आँखे आपके सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गई थी, वे अब नित्य जलती और जागती रहती हैं। ठीक भी तो है, जब मेरा हृदय ही प्रेम की पीड़ा से

परिपूर्ण है तो फिर ये भला कैसे लगें ? इनमें नींद कैसे आये ? हे सुजान श्रीकृष्ण जी ! (हमारी ये आँखें) हृदय को सदा दुःख की लपटों से दागती रहती हैं और आपके चन्द्र जैसे सुखमय मुख को देखे बिना ये एड़ी से लेकर चोटी तक विष व्याप्त किये रहती हैं।

टिप्पणी—देखिए, प्रियतम की आँख ओट होते ही आँखें किस प्रकार सारे शरीर में विष फैला रही हैं !

५—शब्दार्थ—जीव की बात जनाइए क्योंकरि—मन की बात कैसे कही जाय, पीर न पावत—पीड़ा का अनुभव नहीं करता, ऐसी बनी—ऐसी परिस्थिति आ गयी है : आन न सूझत—दूसरा सूझता ही नहीं, दूसरे की ओर झुकाव ही नहीं होता, मरेंगे बिथा—व्यथित करेंगे।

सन्दर्भ—कोई वियोगिनी गोपी प्रियतम की निष्ठुरता देखकर कहती है कि निर्मोहियों से किसी को प्रेम न करना चाहिए।

भावार्थ—मैं अपने मन की बात उससे कैसे कहूँ जो सुजान होते हुए भी अजानों से बढ़कर होता जा रहा है जो अपने कटाक्ष रूपी बाणों से मेरे हृदय को बेधकर भी पीड़ा का अनुभव नहीं कर रहा है और जो रोने और गाने अर्थात् दु.ख और सुख को बराबर मान रहा है। मैं क्या कहूँ, अब ऐसी स्थिति आ गयी है कि दूसरे की ओर मेरा झुकाव ही नहीं होता, भले ही वह मुझे त्याग क्यों न दे जिससे व्यथित होकर दिन बिताना पड़े और अन्त में अपने प्राणों को भी उत्सर्ग करना पड़े। अस्तु, इससे क्या ? लोग जान तो लेंगे कि किसी को निर्मोही से प्रेम न करना चाहिए।

टिप्पणी—किसी कवि की उक्ति है—

जो मैं ऐसा जानती, प्रेम किये दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रेम करौ जनि कोय॥

इसके अनुसार तनिक दुख होने पर ही नायिका प्रेम न करने का ढिंढोरा पीटने की धमकी देती है किन्तु घनानन्द जी की गोपी घायल होने पर भी ढिंढोरा पीटकर नही प्रत्युत अपने मन मे कहती है कि निर्मोही से किसीको प्रेम न करना चाहिए। देखिए, घनानन्द जी ने इस स्थल पर प्रेम का कितना सूक्ष्म और मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

६-शब्दार्थ—निहारति हीं—देखती थी।

सन्दर्भ—कोई वियोगिनी गोपी अपने नेत्रों की दशा कहती है—

भावार्थ—जिन (प्यारे श्रीकृष्ण के सौन्दर्य) को मेरी आँखें टकटकी लगाकर देखा करती थी, हाय! अब उन्हीकी याद में रो रही हैं और प्रियतम के चरणों के दर्शन की लालसाकर अपने पलक पाँवड़ों को आँसुओ की धारा से धो रही हैं। स्वप्न में जब इन्हें प्रियतम का दर्शन होता है तब तो ये उनको प्राप्त नही करती किन्तु उनके अन्तर्चित्त होते ही ये इस प्रकार छटपटाती है मानों जागृत अवस्था मे बिछुड़ गयी हों। हाय! ये दुखिनी आँखें जगने पर भी सोती-सी हैं, (तात्पर्य यह है कि ये आँखें खुली तो हैं पर किसी पदार्थ को देखने का कार्य नही करती अतएव सोई हुई हैं) इनको देखकर यह नही ज्ञात होता कि ये आँखें खुली हैं अथवा मुँदी हुई।

टिप्पणी—देखिए, यह कितना भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी सवैया है। इसके उत्तरार्द्ध में विरोधाभास अलंकार है।

७-शब्दार्थ—रुची—प्यारी लगी, जियौ—जी भी, प्राण भी; गुन—(१)गुण (२)बत्ती; इतौ—इतना; कौन पै आपु लियौ—आपने किससे सीखा है, द्रोह=बैर।

सन्दर्भ—कोई वियोगिनी गोपी कहती है—

भावार्थ—हे सुजान कृष्ण! यदि आपको मेरे अतिरिक्त दूसरे की प्रीति अच्छी लगती है तो मुझे आपके बिना अपना जी भी प्यारा नहीं लगता। तुम्हारे अंग में (तुम्हारे हृदय में) अब केवल पीड़ा पहुँचाने का ही गुण रह गया है। हृदय के इस गुन (बत्ती) को वियोगाग्नि ने दीपक की भाँति जला दिया है। (भाव यह है कि वियोग के कारण हृदय को बहुत पीड़ा पहुँच रही है) मैं क्या कहूँ, हे प्यारे! जरा बताओ तो सही कि इतना रूठना आपने किससे सीखा है? हे सुजान! आप स्नेही कहलाकर, प्रेम दिखलाकर इस प्रकार क्यो द्रोह कर रहे हैं?

८-शब्दार्थ—परकाजहिं—परोपकार के लिए; निधि-नीर=समुद्र, सुधा—अमृत, बिसासी—विश्वासघाती।

सन्दर्भ—कोई वियोगिनी गोपी मेघ से श्रीकृष्ण के पास जाने के लिए कहती है—

भावार्थ—हे मेघ! तुम परोपकार के लिए ही शरीर धारण करते हो इसलिए तुम अपने 'परजन्य' नाम को सार्थक

करो। तुम समुद्र के खारी जल को अमृत के समान मीठा बना कर बरसते हो। तुम मे सब प्रकार की सज्जनता पायी जाती है। तुम सब को जीवनदान देते हो, इसलिए तनिक मेरी पीड़ा का भी अनुभव अपने मन मे करो। (तुम से मेरा निवेदन केवल यही है कि) कभी उस विश्वासघाती सुजान के आँगन मे मेरे आँसुओ को लेकर बरस जाओ।

टिप्पणी—मेघदूत की यह रमणीय कल्पना कितनी अनूठी है।

९—**शब्दार्थ**—धुनि—ध्वनि; पूरी रहै—समाई रहती है; अज—कामदेव; मनमोहन गोहन जोहन पै—श्रीकृष्ण के साथ जाने व प्रतीक्षा करने की, अभिलाष—इच्छा; समाजिबोई सी करै—उत्पन्न सी करती है; बिन बाजेई—बिना बजे हुए ही, बाजिबोई-सी करै—बजती सी रहती है।

सन्दर्भ—बाँसुरी की गूँज सुनकर कोई गोपी अपनी सखी से कहती है—

भावार्थ—हमारे कानो में नित्य मुरली की ध्वनि गूँजती रहती है और कामवासना जागरित सी करती रहती है। यह मनमोहन को देखने और उनके साथ जाने की इच्छा-सी उत्पन्न करती रहती है। यह अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों की भाँति ऊँची तानों से सुर निकालने का प्रयत्न करती है। (हे सखी!) यह बैरिनि बाँसुरी जाने किधर से बिना बजे ही बजती-सी रहती है।

टिप्पणी—'बिन बाजेई बाजिबोई सी करै' मे विरोधाभास अलकार है।

१०—**शब्दार्थ**—नेह—प्रेम; निरधार—निरवलंब; रस प्यास कै—आनन्द देकर, बिसास—विश्वास।

सन्दर्भ—कोई गोपी श्रीकृष्ण को उपालम्भ देती है।

भावार्थ—हे सुजान कृष्ण ! जब आपने एकबार मुझे प्रेमपूर्वक अपना लिया तो फिर क्यों इस प्रेम को तोड़ रहे हैं ? मुझ निरवलम्ब को मँझधार में सहारा देकर आप फिर क्यों बाँह पकड़कर डुबा दे रहे हैं, ऐसा न कीजिए नाथ ! हे आनन्द के मेघ ! अपने चातक (मुझ) को प्रेम की रस्सी से बाँध कर न छोड़िए अथवा हे आनन्दघन ! चातक की भाँति अपने गुणों से मुझे रिझाते रहिए, इसका मोह न छुड़ाइए। हे प्रभो ! आपके आनन्द रस को पीकर मैं जीवित हुआ और मेरी आशाएँ बढ़ीं। अब जब कि आपके प्रति हमारा विश्वास पक्का हो चुका तो फिर विष घोलकर (विश्वासघात कर) क्यों आप इसे नष्ट कर रहे हैं ?

टिप्पणी—इस सवैये के पूर्वार्द्ध में प्रेम की अनिर्वचनीय स्थिति दिखायी गयी है।

११—शब्दार्थ—मनौं ढरकौहीं बानि दै—मन मे दया की टेव पैदा कर ; सुखदानि दुखयानि दै—दुखियों को सुख का दान कर ; बैठे पीठि पहिचानि दै—परिचय करके विमुख हो गये हैं ; बिरह-बिथा की मूरि—विरह की व्यथा के लिए संजीवनी के समान ; नैकु आनि दै—थोड़ी सी ला दे।

सन्दर्भ—कोई गोपी पवन को दूत बनाकर श्रीकृष्ण के पास चरण-रज लेने के लिए भेज रही है।

भावार्थ—ऐ वीर पवन ! तेरी गति सर्वत्र है, तेरे समान कोई नहीं है। मैं तुझ पर बलिहार हूँ तनिक तू अपने मन को द्रवीभूत तो कर। जगत के समस्त छोटे बड़े प्राणी तुझे समान रूप से प्यार हैं और तू आनन्द रूपी मेघ का भण्डार है इसलिए तू दुखियों को सुखी कर। देख, मेरे अत्यन्त प्रिय, गुणवान और

कान्तिमान सुजान कान्ह मुझसे पहले प्रेम कर अब निर्मोही की भाँति विमुख हो गये हैं, मैं उनके विरह से बहुत दुखी हूँ। इसलिए तू जाकर उनके चरणों की थोड़ी सी धूल, जो कि विरह की व्यथा को संजीवनी के समान नष्ट करने वाली है, ला दे। मैं इस (चरण-रज) को आँखों मे लगाऊँगी।

टिप्पणी—देखिए, प्रेम की कितनी ऊंची भावना है।

१२–**शब्दार्थ**—रातिद्यौस—रात दिन, दहै दुख—दुख से जलाता है, जान प्यारे—प्यारे सुजान, तिहारे की—तुम्हारी।

भावार्थ—कोई वियोगिनी गोपी कहती है कि मैं इस बज्रमारे वियोग की गति क्या कहूँ, यह रात-दिन अपनी सेना सजाये हुए मुझे दुख देता रहता है। अब इसने बेचारे प्राण को अलग करके मुझे घेर लिया है। युक्ति और शक्ति से हीन मेरे प्राणो का अब कुछ भी वश नही चलता है। (वे अलग छटपटा रहे हैं) हे प्यारे सुजान ! ऐसे अवसर पर आप हमारी गुहार क्यों नही लगते ? (मैं सहायता के लिये चिल्ला रही हूँ फिर हमारी सहायता करने क्यो नही आते ?) यदि आप हमारी इस गुहार पर नही आयेंगे तो ये प्राण आपको अंतिम नमस्कार कर प्रतिज्ञा-बद्ध वीर की भाँति प्रण करके प्रेम के रणक्षेत्र मे निकल पड़ेंगे और वहीं (विरह की सेना से लड़ते हुए) जूझ जायँगे। जब प्रेम के रणक्षेत्र की धूलि मे हमारा शरीर चूर-चूर होकर मिल जायेगा तब तुम्हारी (बदनामी की) कहानी चलेगी। (लोग कहेंगे कि तुम्हारी प्रेयसी विरह द्वारा मार डाली गयी, पर धिक्कार है कि उस बेचारी की तुम कुछ भी सहायता नही कर सके।)

१३–**शब्दार्थ**—इन्दीवर—कमल : गुही—गूँथी गयी।

जुही माल—हृदय की सुन्दर माला ; न परै गनै—कहते नहीं बनता।

सन्दर्भ—मुरली की ध्वनि किसी गोपी के हृदय में तीक्ष्ण बाण की तरह चुभ गयी है जिससे वह अचेत हो गयी है। उस गोपी की शोचनीय दशा देखकर उसकी सखी श्रीकृष्ण से मुरली बजाना बन्द करने का अनुरोध करती है—

भावार्थ—हे गोपाल! कमल पुष्पों से मिलाकर बनायी गयी सोनजुही की सुन्दर माला आपके कंठ में पड़कर ऐसी शोभा दे रही है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। पीले दुपट्टे को आपने शिर पर उलटा करके रक्खा है। मस्तक में केशर का जो तिलक लगा हुआ है वह भी अपनी अद्भुत शोभा प्रकट कर रहा है। आपने जब आनन्दित होकर मुरली में गौरी ध्वनि बजायी तो (मेरी सखी अचेत होकर द्वार पर ही गिर गयी और) उस समय उसके द्वार पर जोरों से रोना-पीटना मच गया। हाय! हाय!! मैं क्या कहूँ? हे सुजान कान्ह! (अपनी मुरली का बजाना बन्द कर) उसे तनिक प्राणदान दीजिए जिससे वन से सजकर आते हुए आपकी सुन्दर शोभा को वह भली-भांति देख ले।

टिप्पणी—इस कवित्त में मुरली का प्रभाव वर्णित है।

१४—शब्दार्थ—रिझवार—निस्वार्थ प्रसन्न हो जाने वाले।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि मेरे प्यारे जो रंगीले रसिया हैं, भली भांति छविमान लगने वाले हैं, आनन्द के घन हैं, माधुर्य से ओत प्रोत रहने वाले हैं, तथा जो सच्चे सुख के सार रूप हैं वे सुन्दर सुजान श्याम कृपा के भण्डार हैं, प्रेम और प्रसन्नता को साक्षात् सिंधु हैं, अकारण ही दूसरे पर द्रवित हो जाने

वाले हैं, प्रेम के थाले हैं (प्रेम को उत्पन्न करने वाले और उनकी वृद्धि करने वाले हैं) निरवलब प्राणी के लिए कल्पतरु के समान हैं, कीर्ति के चन्द्रमा हैं, प्रेम के सागर हैं तथा प्रेमियों के संग मे नित्य रहने वाले है, ऐसे उदार स्वभाव के त्रिभंगी मनमोहन कृष्ण जी मेरे प्राणो के आधार हैं।

१५—शब्दार्थ—सलाका—सीक; लकीर, झर—झड़ा, वृष्टि।

भावार्थ—यमुना की शोभा देखने से आँखो को जो सुख मिलता है उसका वर्णन नही हो सकता वास्तव में उनकी शोभा तो देखते ही बनती है। राधिका की पीत और श्रीकृष्ण की नील वर्ण की कांति परस्पर मिलकर जो छवि उत्पन्न करती है उसी छवि को यमुना जी ने धारण किया है। इस प्रकार इनके दर्शन से ही युगल-सरकार के आदर्श रूप के भी दर्शन हो जाते हैं। इन्होंने राधा और कृष्ण की गुप्त और प्रकट भावना को विशेष रूप से अपनाया है। जिस प्रकार अजन की लकीर आँखो के दोनो किनारो पर खीचकर उसका शृंगार करती है उसी प्रकार (यमुना के) दोनो किनारे यमुना का शृंगार कर उन्हे दर्शनीय बनाते हैं। इनकी चंचल लहरो की गति देखने ही योग्य है क्योंकि ये सदा ही माधुर्य की वृष्टि करती रहती हैं।

टिप्पणी—इसमें यमुना की शोभा का वर्णन अनूठे ढग से किया गया है।

१६—शब्दार्थ—आपुहि ते—स्वयं ही; अपने आप। हेरि—देखकर; अनीति—अन्याय; प्रीति के भाव में—प्रेम-भाव में।

सन्दर्भ—प्यारे श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए तरसती हुई कोई गोपी कह रही है—

भावार्थ—हे कृष्ण प्यारे! पहले आप ही अपने मन से मेरी ओर आकृष्ट हुए और प्रेम के चाव में आकर अपने नेत्रों को तिरछा कर हँसे। (इस प्रकार अपनी मोहिनी से मेरा मन हर लिया) पर हाय दैया! अब वह सुधि कैसे आपने भुला दी है? बताओ, अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? हे प्यारे सुजान! प्रेम-भाव में किसी को फँसाकर उसके साथ इस प्रकार का अन्याय न करना चाहिए। बताओ, एक ही गाँव में रहकर भी तुम अपनी मोहिनी मूर्ति के दर्शन के बिना हमें क्यों तरसा रहे हो?

टिप्पणी—पहले प्रेम करने को लालायित होना फिर प्रेम हो जाने पर अत्यन्त निकट रहकर प्रेयसी को दर्शन के लिए तरसाना सचमुच बड़ा अन्याय है।

१७–शब्दार्थ—सरसे—बाणसे. रस-नायक—आनंद स्वरूप

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि हे श्रीकृष्णजी! आप अपने इन न बोल सकने वाले नेत्रों को इस प्रकार न चलाइए। ये बाण के समान लगते हैं अब इनसे आहत होकर मैं कैसे जीवित रह सकूँगी? आप आनन्दस्वरूप हैं, सब को आनन्दित करने वाले हैं इसलिए सुख के दाता होकर आप दुःख न दीजिए। हे प्यारे सुजान! मेरे इन निवेदन को आप हृदय से स्वीकार करें। हाय दैया! एक ही गाँव में (अत्यन्त निकट) रहकर आपको अपना चित्त इतना कठोर न बनाना चाहिए।

१८–शब्दार्थ—अमानि—मानहीन। रसालसिन्धु प्रीति—प्रेम के अमृतमय समुद्र; निबेत नीति-रीति के—मर्यादा पुरुषोत्तम।

भावार्थ—हे सुजान ! मै क्या करूँ ? आप कृपा के अक्षय भण्डार हैं और अप्रतिष्ठित व्यक्तियों को प्रतिष्ठा देने वाले हैं। आपकी समता करने वाला कोई भी नही है, आप प्रेम के मधुर रस से भरे हुए समुद्र हैं, विश्वास के सच्चे हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और अपनी कृपा-दृष्टि से सबको जीवन प्रदान करने वाले हैं। आप स्वय देखिए कि आप की कैसी मोहिनी मुझ पर पड़ी हुई है। मरो आपसे प्रार्थना है कि आप निकट उपस्थित होकर मेरे साथ विहार करें, प्रेम रंग मे भीगे, आनन्द रूपी मेघ बनें और विनोद बढ़ायें किन्तु यदि आप स्वय (कसी कारणवश) न आ सके तो मुझे ही बुला ले।

१६–**शब्दार्थ**—छत्र—राज मुकुट।

भावार्थ—आनन्दघन जी कहते हैं कि कितने ही राजा इस सुन्दर देश मे सुखपूर्वक राज्य कर अमर हो गये किन्तु हमें इसकी तनिक भी तृष्णा नही है क्योंकि कृपालु भगवान की कृपा का राजछत्र हमारे सिर पर सदैव शोभायमान रहता है। (भाव यह है कि भगवत-कृपा के समक्ष राजाओं का ऐश्वर्य कुछ भी नहीं है।)

२०–**शब्दार्थ**—मो-से—मुझ जैसे; अनपहिचानि—अपरिचित।

भावार्थ—आनन्दघन जी कहते हैं कि हे प्रभो ! मुझ जैसे अपरिचित को आपके अतिरिक्त और कौन पहचान सकता है। जिस प्रकार आपके नेत्रो में कृपा के कान छिपे हुए हैं उसी प्रकार मेरी मौन चेष्टा मे पुकार छिपी हुई है। (भाव यह है कि मेरी दशा (मौन पुकार) देखकर ही आप सारी परिस्थिति समझ जाते हैं और तुरन्त ही कृपा कर देते हैं।)

२१–**शब्दार्थ**—लगाव—सम्बन्ध, फूल्यो—प्रसन्न रहता हूँ।

भावार्थ—आनन्दघन जी कहते हैं कि हे प्रभो! यद्यपि आप से मेरा तनिक भी परिचय नहीं है तो भी आप मुझे अपनी कृपा के राज्य में रहने देते हैं। यह जानकर मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ।

विरहलीला

२२-शब्दार्थ—दुरे—छिप गये हो।

सन्दर्भ—महा रास करते समय जब श्रीकृष्ण जी अचानक अदृश्य हो गये तो गोपियाँ उनके वियोग में विह्वल हो विलाप करने लगीं।

भावार्थ—प्यारे साँवरे कृष्ण! तुम क्यों नहीं हमारे पास आते? तुम क्यों नहीं दर्शन की प्यास से मरती हुई हम गोपियों को आकर जिलाते? प्यारे! बताओ, तुम कहाँ छिपे हो, कहाँ छिपे हो, कहाँ छिपे हो? तुम जहाँ पर हो वहीं हमारे ये प्राण तुम्हीं से लगे हुये हैं। हे प्यारे! तुम्हारे कारण ही तो हम रात-दिन जागती रहीं फिर अब तुम क्यों नहीं हमारी निगाहों के सामने आते? हे प्यारे! हमारे हित की बातें सोचकर ऐसी (अनहोनी) न कीजिए। हम सब तो तुम्हारे वियोग में पागल हो गयी हैं। तब (रास रचाते समय) तो तुमने बड़े प्रेम से सुख देने वाली बातें की थीं (फिर अब यह क्या कर रहे हो?) जरा सोच विचार कर अपनी इस दुख देने वाली चाल को दूर करो। सचमुच तुम बुरे हो, बुरे हो, बुरे हो, तभी तो सबको अकेली छोड़कर इस प्रकार छिप गये हो।

टिप्पणी—वर्णन स्वाभाविक है। "बुरे हौ जू, बुरे हौ जू, बुरे हौ।" में देखिए कैसी मिठास है!

२३-शब्दार्थ—पाती—चिट्ठी।

भावार्थ—प्यारे! हम तुम्हें चिट्ठी, कैसे लिखें? पत्र लिखते समय तो हमारी छाती दरक कर दो टूक हो जाती है और आँखों से आँसुओ की झड़ी लग जाती है। अब तो ऐसा खटका हो रहा है कि कहीं तुम्हारा सदेश वन और उसके जीवो को जला न दे। हे प्यारे! तुम आकर इस सकटपूर्ण स्थिति को देख जाओ। हाँ, यदि प्रत्यक्ष न देख सको तो अनुमान करके यहाँ की स्थिति को अच्छी तरह परख लो। हे प्यारे! हमारी जैसी अनोखी पीड़ा किसको हो सकती है? हम मौनावस्था मे तुम्हें पुकार रही हैं। क्या कहे, कुछ कहते नही बनता।

टिप्पणी—गोपियो के मन की कसक और पीड़ा इसमे दर्शनीय है। प्रारम्भ की दो पंक्तियों मे अतिशयोक्ति है।

२४—शब्दार्थ—कान बोले—कान में सुनाई पड़ती है।

भावार्थ—हे प्यारे कृष्ण! तुम्हारे मिलन की आशा मुझसे नहीं छूटती। मेरा प्रेमोन्मत्त मन अब तुम से जिस प्रेम-शृंखला द्वारा बँध गया है, वह तोड़ने से नही टूट सकती। हमें अब भी ऐसा लगता है मानों तुम्हारी बाँसुरी की ध्वनि हमारे कानो मे सुनाई पड़ रही है और हम सब तुम्हारे सग घूम रही हैं। तुम्हारी साँवरी मूर्ति हमारी आँखो के आगे घूम रही है और तुम्हारे कटाक्ष बाण की तरह चुभ रहे हैं। तुम्हारे मुकुट की लटकन हमारे हृदय में हिल रही है और तुम्हारी बाँकी चितवनि (शूल की भाँति) चुभ रही है। हँसने की अवस्था मे तुम्हारे दाँतो की चमक इस प्रकार कौंधती है मानों वह जादू मारकर हमारे वियोगी नेत्रों को चकाचौंध कर देती है। तुम्हारे ओठो को देखकर हमारे प्यासे नेत्र उधर ही दौड़ रहे हैं। हम सदैव निष्प्राण-सी होकर विवश और पागल हो रही हैं। काम-

दैव जब अचानक आकर मुझे सताता है तो बताओ उस समय की दशा कौन कैसे बताये ? उस समय आँखों से आँसुओं की धार इस प्रकार वह निकलती है मानों विरह हमारे शिर पर आरा चला रहा हो (और आरे की रगड़ से रक्त के फव्वारे छूट रहे हों) हे प्यारे ! इतना हो चुकने पर भी यदि हम पीड़ित नहीं होंगी तो फिर कब पीड़ित होंगी और फिर क्यों हमारे बेचारे विरही प्राण ही रहने लगे ? प्यारे ! बताओ, यदि जल ही जलता है तो फिर और कौन शीतलता प्रदान कर सकता है और यदि अमृत ही मारने का कार्य करता है तो फिर हमें कौन जिला सकता है ? हाय दैव ! यदि चन्द्रमा से अंगारे झड़ने लगेंगे तो फिर चकोरों की क्या दशा होगी ?

टिप्पणी—इसमें विरह का उत्कृष्टता से वर्णन किया गया है। संसार में कौन ऐसा अरसिक होगा जिसका हृदय गोपियों के इस विलाप पर पसीज न जाय। निश्चय ही आनन्दघन जी ने इस वियोग शृंगार के लिखने में कलम तोड़ दी है। इसमें कोई ऐसी पंक्ति नहीं जो हृदय पर अपना करुण प्रभाव न जमाती हो। इसमें विरोधाभास अलंकार है।

२५—शब्दार्थ—सुरत कीजै—सुधि लीजिए।

भावार्थ—हे प्यारे ! हम तुम्हारे नाम पर अपने प्राणों को निछावर करती हैं। हम चाहती हैं कि तुम जहाँ भी रहो, सुखी रहो। मेरे मनमोहन ! हम तुम्हें रात-दिन यह आशीर्वाद देती रहती हैं कि तुम हम पर जितनी निर्दयता का व्यवहार करना चाहो, करो। ये सभी हमारे लिए संजीवनी की भाँति सन्तोषप्रद होंगी। हम चाहती हैं कि हमारे प्यारे कन्हैया को कहीं लू न लगे। हमें जैसी सुहावनी वायु मिलती है वैसी ही प्यारे को भी मिले। हे प्यारे ! तुम हमारी सुधि तो लो, इस प्रकार भूल

जाने (सुधि बिसराने) से हमारी तुम्हारी कैसे बनेगी ? बताओ, हम विरहिणियाँ कब तक तुम्हारे मिलने की घड़ी गिनती रहें ?

टिप्पणी—गोपियाँ इस पद मे अपने प्यारे को आशीर्वाद दे रही हैं। उन्हे अब प्रिय की कसीसें संजीवनी हो रही हैं अर्थात् वे अब विरह मे ही सुख मानने लगी हैं। प्रेम की ऐसी दशा धन्य है !

२६—**शब्दार्थ**—ब्रजनाथ—श्रीकृष्ण।

भावार्थ—हे श्रीकृष्ण प्यारे ! अब तो हमे प्रेम करने की लज्जा का ध्यान रखना है इसलिए ससार को प्रकाशित करने वाले हे प्यारे ! तुम आओ और हमारे सिर पर विराजो। तुम्हारे साथ रहने मे हमे सदैव सुख मिलेगा। ऐ छवीले ! हम सदा तुम्हारे पीछे-पीछे फिरती रहेंगी। तुम्हें देखने मे, तुमसे भेंटने में, तुम्हारे साथ सोने-जागने, उठने-बैठने और चलने में सर्वत्र हमें आनन्द ही आनन्द मिलेगा।

५—बिहारीलाल

—:·:— ० —:·:—
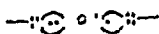
बिहारी के काव्य की पृष्ठभूमि—बिहारी के आविर्भाव क समय दिल्ली के राजसिंहासन पर मुगल सम्राट शाहजहाँ विराजमान थे। इस समय तक सभी हिन्दू नरेश दिल्लीश्वर की अधीनता स्वीकार कर चुके थे और उनकी हाँ-हुजूरी में रहने लगे थे। आंतरिक उपद्रवों का अभाव होने के कारण देश में सर्वत्र शान्ति विराजती थी। सघर्ष से निश्चिन्त होने पर मुसलमानो का ध्यान विलासिता की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। फिर क्या था, दिल्ली श्रृंगार और विलासिता का केन्द्र बन गयी। दिल्लीश्वर के दरबार को रगशाला मे परिवर्तित हुआ देखकर हिन्दू राजाओ ने भी अपने यहाँ श्रृंगार की धूम मचायी। अब उनकी दृष्टि में हर समय श्रृगार-ही-श्रृगार दिखायी पड़ने लगा। ऐसे अवसर पर धन और प्रतिष्ठा के लोभ से बड़े-बड़े विद्वान् और कविगण भी राजदरबारो का आश्रय ग्रहण-करने लगे और अपने आश्रयदाता राजाओ की रुचि के अनुसार नायिका-भेद जैसे घोर श्रृगार-प्रधान ग्रन्थो की रचना करने लगे। इन कवियों को इनकी आवश्यकता के अनुसार उपासना का आवरण पहने हुए कुछ श्रृगारिक रचना ब्रज के भक्त कवियों से परम्परा के रूप में प्राप्त हुई इस प्रकार की रचना से इन कवियों को प्रोत्साहन मिला और इन्हें अश्लील से अश्लील श्रृगार-रचना करने मे कोई हिचक न हुई। बिहारीलाल जी ने भी तत्कालीन कवियों की भाँति जयपुर के मिर्जा राजा जयशाह का आश्रय लिया और उनकी आज्ञा से अपनी सतसई का निर्माण किया।

वर्ण्य-विषय—यद्यपि 'बिहारी-सतसई' शृगार-प्रधान मुक्तक काव्य है किन्तु इसमे भक्ति और नीति सम्बन्धी दोहे भी पर्याप्त संख्या में पाये जाते हैं। बिहारीलाल जी ने शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग पर रचना की है। इन्होने संयोग शृंगार के अंतर्गत नायिका का नखशिख-वर्णन और आभूषण-वर्णन के अतिरिक्त नायक-नायिका की क्रीड़ाएँ, चेष्टाएँ, हाव-भाव और मनोविनोद का वर्णन किया है। इन्होने ऋतुओ का वर्णन भी किया है। वियोग पक्ष में इन्होने पूर्वराग, मान और प्रवासजन्य-विरह का वर्णन किया है।

समीक्षा—हिन्दी साहित्य के शृंगार-ग्रन्थो मे जितनी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि 'बिहारी-सतसई' को मिली है उतनी अन्य किसी भी ग्रन्थ को नही प्राप्त हो सकी। बिहारीलाल जी ने जिस समय अपनी सतसई का निर्माण किया उस समय से लेकर आज तक वह सुरसिक साहित्य-प्रेमियो एव साहित्य-मर्मज्ञो का हृदय-हार होती आयी है। अब तक इसकी पचासो टीकाएँ गद्य और पद्य में हो चुकी हैं। इसकी सबसे प्रसिद्ध और प्रामाणिक टीका 'बिहारी-रत्नाकर' है। इसे तैयार करने मे स्वर्गीय कविवर 'रत्नाकर' जी ने लगभग २२ वर्ष व्यतीत किये। इस ग्रन्थ की टीकाएँ हिन्दी मे ही हुई हो, ऐसी बात नही है। संस्कृत, फारसी, उर्दू और गुजराती तक मे इसके अनुवाद हुए हैं। हिन्दी के बहुतेरे कवियों ने इनके दोहो को लेकर छप्पय, कुण्डलिया, कवित्त और सवैये रचे हैं। इनकी भाषा, भाव और शैली का अनुकरण और अपहरण बहुत से कवियो ने किया है पर कोई भी इनकी टक्कर का नहीं हो सका है। आलोचना के क्षेत्र में भी बिहारी को लेकर खूब लिखा पढ़ी हो चुकी है। मिश्रबन्धुओ का 'हिन्दी नवरत्न', पं० पद्मसिंह शर्मा का 'सजीवन-भाष्य', पं० कृष्ण बिहारी मिश्र

का 'देव-बिहारी', लाला भगवानदीन का 'बिहारी-देव,' पं० लोकनाथ द्विवेदी का 'बिहारी दर्शन' और प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की 'बिहारी की वाग्विभूति' बिहारी-साहित्य के समालोचनात्मक ग्रन्थ हैं। बिहारी के आलोचनात्मक साहित्य की इति यहीं तक नहीं है प्रत्युत वह इतिहास-ग्रन्थों और फुटकल लेखमालाओं के रूप में यत्र-तत्र बिखरा हुआ पाया जाता है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि बिहारी ने अपने काव्य-गुणों की बदौलत ही इतना सम्मान प्राप्त कर लिया है। इनके दोहे वस्तुतः 'गागर में सागर' की उक्ति को चरितार्थ करते हैं तभी तो किसी ने कहा है—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर॥

बिहारी में बड़े से बड़े प्रसंगों को अत्यन्त संक्षिप्त करके उसे अनूठे ढंग से वर्णन करने की बहुत बड़ी शक्ति थी इस लिए इन्होंने जिस दोहे को उठाया है उसे उसके लक्ष्य तक कुशलता के साथ पहुँचाया है। मुक्तक-रचना में जो भी विशेषताएं होनी चाहिए वह सभी सतसई में चरम उत्कर्ष को प्राप्त हुई देखी जाती हैं। अलंकारों की योजना में इन्होंने बड़ी ही निपुणता दिखायी है। शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों का जितना सुन्दर और स्पष्ट उदाहरण इनकी रचना में प्राप्त होता है वैसा लक्षण ग्रन्थों में ढूढ़ने पर भी नहीं मिलता। इनकी यह विशेषता अलंकार शास्त्र के गम्भीर अनुशीलन और अभ्यास की द्योतक है देखिए—

पग सोहैं पगि पीक-रँग, छल सोहैं सब बैन।
बल सोहैं कत कीजियत, ए, अलसोहैं नैन॥
सर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनानु तें, हरि! नीके ये नैन॥

अजौं तरयौना हीं रह्यो, श्रुति सेवत इक अंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतन के संग ॥
दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन-हियैं, दई, नई यह रीति ॥

विहारी के बहुत से दोहे 'आर्या-सप्तशती', 'गाथा सप्तशती' और 'अमरुक शतक' की छाया लेकर बने हैं किन्तु प० पद्मसिंह शर्मा ने परस्पर तुलना कर यह सिद्ध कर दिया है कि विहारी ने अपनी प्रतिभा के बल से दोहो मे मूल से भी अधिक उत्कृष्टता ला दी है। विहारी की काव्य-दृष्टि बहुत व्यापक थी। इसका परिचय हमे उनकी गणित, वैद्यक, ज्योतिष, पुराण, दर्शन, राजनीति तथा समाज नीति सम्बन्धी उक्तियो को देखकर मिल जाता है किन्तु इन उक्तियों के सहारे उन्हे उक्त विषयो का अधिकारी विद्वान नही कहा जा सकता।

शृंगार के क्षेत्र में विहारी ने संयोग और वियोग दोनो का वर्णन किया है। संयोग शृङ्गार मे इन्होंने नायिका भेद नखशिख-वर्णन और हाव-भावो का विश्लेषण ही प्रमुख रूप से किया है। प्रेम के विषय का विस्तार इनकी रचना मे नही प्राप्त होता इन्होने प्रायः परम्परा से चले आते हुए प्रेम-प्रसङ्गो का ही वर्णन किया है किन्तु अपने वाग्वैदग्ध्य और उक्ति-वैचित्र्य द्वारा उस मे अनूठापन ला दिया है। मर्मस्पर्शी प्रसंगों के चुनाव में भी विहारी ने खूब पटुता दिखाई है। प्रेम की स्वाभाविक और सच्ची अभिव्यंजना विहारी के कई दोहो मे अत्यन्त उत्कृष्ट हुई है। देखिए—

उड़ति गुड़ी लखि ललन की, अँगना अँगना माँह।
बौरी लौं दौरी फिरत, छुवति छबीली छाँह ॥
पिय कैं ध्यान गही-गही, रही वही ह्वै नारि।
आपु-आपु ही आरसी, लखि रीझति रिझवारि ॥

सीरैं जतननि सिसिर ऋतु, सहि बिरहिन तन तापु।
बसिबे को ग्रीषम दिननु, परयो परोसिनि पापु ॥

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बिहारी ने प्रसगो की ऊहा करने मे जितनी शक्ति लगायी है यदि इतनी ही शक्ति इन्होंने स्वतंत्र प्रसगो की उद्भावना करने में लगाई होती तो इनका गौरव और भी ऊँचा हो जाता। ऋतुओ का वर्णन इन्होने प्रायः उद्दीपन विभाग के रूप में ही किया है पर कहीं-कही स्वतत्र रूप से भी किया है जो अत्यन्त उत्कृष्ट है। देखिए—

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधुरी गंध।
ठौर-ठौर झौंरत झँपत, भौंर झौंर मधु अंध ॥

बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन तन माँह।
देखि दुपहरी जेठ की, छाँहौं चाहत छाँह ॥

पावस घन अँधियार महँ, रह्यौ भेद नहिं आनु।
राति द्यौस जान्यों परत, लखि चकई चकवानि ॥

विहारी के नीति सम्बन्धी दोहे उनकी अनुभूति घटनाओं के व्यंजक हैं और भक्ति सम्बन्धी दोहे उनके हृदय की करुण अभिव्यक्ति हैं।

भाषा और शैली—विहारी की भाषा चलती हुई साहित्यिक ब्रजभाषा है। समास-शैली का आश्रय लेकर इन्होंने अपनी काव्य-भाषा को पूर्ण सशक्त और अभिव्यञ्जक बनाने का प्रयत्न किया है। शब्दो का जैसा सुन्दर सगठन और व्याकरण-सम्मत शुद्ध प्रयोग इन्होने किया है वैसा ब्रज के अन्य कवि नही कर सके हैं। इनकी काव्य-भाषा को एक निश्चित प्रणाली पर चली हुई और सुव्यवस्थित देखकर स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने लिखा है कि "ब्रजभाषा का व्याकरण

प्रस्तुत करने के लिए यदि 'विहारी सतसई' आधार बनाई-जाय तो एक अच्छा व्याकरण प्रस्तुत हो सकता है। जहाँ कमी पड़ेगी उसके लिए घनानन्द से सहायता ली जा सकती है।" विहारी ने शब्दो को तोड़ने-मरोडने और उन्हे विकृत करने का वहुत कम प्रयास किया है। वास्तव में इनकी भाषा अत्यन्त मॅजी हुई, प्रौढ़ और प्राजल है। इसमे व्रज के ठेठ शब्दो के अतिरिक्त अवधी और वुदेलखण्डी के भी शब्द पाये जाते हैं। मुहाविरो का प्रयोग भी यत्र-तत्र अच्छा मिलता है।

५—बिहारीलाल

—:o:—

१—**शब्दार्थ**—हरित—१—हरी, २—हरण की हुई अर्थात् फीकी, ३—आनन्दित।

सन्दर्भ—बिहारीलाल जी अपनी परम आराध्या राधिका महारानी की वन्दना करते हैं—

भावार्थ—वही चतुरा राधिका जी मेरी सांसारिक आपत्तियो को दूर करें जिनके (गोरे) शरीर की छाया पड़ने से श्रीकृष्ण के शरीर की छवि हरी दिखायी पड़ती है या फीकी हो जाती है अथवा (राधिका की छाया के स्पर्श से) श्रीकृष्ण जी पुलकित हो जाते हैं।

टिप्पणी—१. 'हरित दुति'—१. नीले और पीले रंग के संयोग से हरा रंग बनता है। श्रीकृष्ण के अंग का रंग नीला है और राधिका के शरीर का रंग पीला है। इसलिए इन दोनों रङ्गो के मिलने से हरे रङ्ग की सृष्टि हुई। २. राधिका की कांति इतनी सुन्दर है कि उसकी छाया के सामने श्रीकृष्ण की छवि फीकी जान पड़ती है। ३. राधिका के अग स्पर्श की तो बात ही क्या उसकी छाया के स्पर्श-मात्र से श्रीकृष्ण पुलकित हो उठते थे।

२ सतसई के आरम्भ मे यह दोहा वन्दना के रूप में लिखा मिलता है। इससे जान पड़ता है कि कवि ब्रह्म की परम आह्लादिनी शक्ति राधिका जी का अनन्य उपासक है। प्रस्तुत

दोहे मे राधिका जी को श्रीकृष्ण की अपेक्षा श्रेष्ठता दी गयी है।

३. 'हरित दुति' मे श्लेष अलंकार है।

५९-शब्दार्थ—कर—हाथ, उर—हृदय।

भावार्थ—हे बिहारीलाल! तुम सिर पर मोर मुकुट धारण कर, कमर में पीताम्बर काछनी कसकर, हाथ में मुरली लेकर और वक्षस्थल पर वनमाला धारण कर इसी सजधज से सदा मेरे मन मे वास करो।

टिप्पणी—देखिए, दोहे जैसे छोटे छन्द में श्रीकृष्ण के छवि की पूर्ण झाँकी किस प्रकार प्रस्तुत की गयी है।

६०-शब्दार्थ—सुचित अंतर—स्वच्छ हृदय के अन्दर; तऊ—तो भी।

भावार्थ—श्रीकृष्ण की मोहिनी मूर्ति का अत्यन्त अद्‌भुतगति को देखिए। वह मूर्ति रहती तो स्वच्छ हृदय के अन्दर है पर इसका प्रतिबिम्ब समस्त ससार में दिखायी पड़ रहा है।

टिप्पणी—१—जब ब्रह्म किसी स्वरूप में प्रकट होता है तो उस समय उसकी सर्व-व्यापकता नहीं रह जाती। यहाँ कवि श्रीकृष्ण की मूर्ति को हृदय में बसा रहा है किन्तु ऐसा कर क भी वह उसकी व्यापकता नष्ट नहीं करता। वह संसार में उस मूर्ति का प्रतिबिम्ब दिखाकर उसमें ब्रह्मत्व का आरोप कर रहा है। इसमें आश्चर्य की भावना भरी गयी है।

२—माया से आच्छादित होने पर भी ब्रह्म सर्वत्र देदीप्यमान हो रहा है। इस दार्शनिक सिद्धान्त की पुष्टि की गयी है।

-शब्दार्थ—सोहति—शोभा देती है।

सन्दर्भ—कोई गोपी अपनी सखी से गुञ्जमाल की शोभा का वर्णन कर रही है।

भावार्थ—हे सखी ! श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर गुञ्जमाल (इस प्रकार) शोभा दे रही है मानो पिये हुए दावानल की ज्वाला बाहर सुशोभित हो रही हो।

टिप्पणी—एक बार श्रीकृष्ण जी गोचारण के लिए वृन्दा-वन गये हुए थे। वहाँ अचानक आग लगी जिससे सभी गोप, ग्वाल-वाल और गायें भयभीत हो गयी। श्रीकृष्ण ने सब को त्रस्त देखकर तुरन्त उस दावानल का पान कर लिया और सब की जान बचायी। यहाँ गुञ्जमाल की शोभा उस दावाग्नि की लाल-लाल लपटो के समान बतायी गयी है। इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है।

५-शब्दार्थ—राजत—शोभा देते हैं।

भावार्थ—मोर-मुकुट की चन्द्रिकाओ से श्रीकृष्ण इस प्रकार शोभा पाते हैं मानों शिव जी की ईर्ष्या से उन्होने सिर पर सैकडो चन्द्रमा धारण किये हो।

६-शब्दार्थ—दिसि—दिशा; नन्दकिशोर—श्रीकृष्ण।

सन्दर्भ—श्याम मेघ के समान श्रीकृष्ण की कान्ति को देखकर मोरो को मेघ का भ्रम हो गया है।

भावार्थ—हे सखी ! बिना वर्षा ऋतु के अचानक वन मे [illegible] नाच उठे ! जान पडता है कि नन्द के लाड़िले घनश्याम ने [illegible]दिशा को आनन्दित किया है।

टिप्पणी—इस दोहे मे श्रीकृष्ण के आगमन की सूचना मोरों की कुहुक द्वारा दिलाई गयी है । इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

७–शब्दार्थ—सुभग—सुन्दर ; सिरमौर—शिरोमणि ; अजौं—अब भी ।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि हे सखी ! सुन्दर-शिरोमणि श्रीकृष्ण को जहाँ-जहाँ मैंने खड़े हुए देखा था, अब उनके न रहने पर भी वे स्थान क्षण भर के लिए मेरी आँखों को खींच लेते हैं ।

टिप्पणी—देखिए, प्रियतम के खड़े होने, आने और जाने के स्थान भी वियोगिनी गोपिका को किस प्रकार प्यारे लग रहे हैं । इसमें स्मरण अलङ्कार है ।

८–शब्दार्थ—धँस्यो—प्रवेश किया, निसान—केतु,पताका ।

सन्दर्भ—बिहारीलाल जी श्रीकृष्ण के कुण्डलों की मानोहरता का वर्णन करते हैं ।

भावार्थ—श्रीकृष्ण के कानों में मकराकृत कुण्डल इस प्रकार शोभा पाता है मानों हृदय रूपी गढ़ में कामदेव प्रवेश कर गया हो और उसका कमर-केतु (कुण्डल के रूप में) ड्योढ़ी पर शोभा पा रहा हो ।

टिप्पणी—जब कोई राजा किसी दूसरे राजा से मिलने जाता है तो ड्योढ़ी पर ही उसकी ध्वजा रोक ली जाती है । यहाँ कामदेव के हृदय रूपी गढ में प्रवेश कर जाने पर उसकी ध्वजा ड्योढ़ी पर रोक ली गयी । कामदेव की ध्वजा में मछली का चिह्न बना हुआ है इसलिए कवि ने मछली के आकार के कुण्डलों से ध्वजा की उत्प्रेक्षा की है । इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

शब्दार्थ—तजि—छोड़कर ; अनुराग—प्रेम ।

भावार्थ—तीर्थाटन करना छोड़कर उन श्रीकृष्ण और राधिका के शरीर की छटा से प्रेम करो जिनके ब्रज-निकुञ्जो मे केलि करने से उसके रास्ते पग-पग पर प्रयाग बन जाते हैं।

टिप्पणी—तीर्थराज प्रयाग मे गगा-यमुना और सरस्वती का सङ्गम है, इन तीनों का रग क्रमशः श्वेत, श्याम और लालमाना गया है। यहाँ श्रीकृष्ण और राधिका के चरणो के श्वेत नखो से गगा जी श्रीकृष्ण के श्यामल चरणो से यमुना जी और राधिका की एड़ी के ललाई से सरस्वती जी की उपमा देकर कुञ्जो के रास्ते में पग-पग पर प्रयाग का होना कहा गया है।

१०—शब्दार्थ—एकत्र—एक साथ , वैस—अवस्था।

भावार्थ—बिहारीलाल जी कहते हैं कि दोनो सदा एक साथ ही रहते हैं। उनकी अवस्था, रूप-रग और मन भी एक से हैं। ऐसी युगल मूर्ति को देखने के लिए अनेक युगल-लोचनो की आवश्यकता है। (आँखों के एक -जोड़े से देखने पर भला क्या तृप्ति होगी ?)

११—शब्दार्थ—चिरजीवौ—(१) चिरंजीवी हो (२) चिर+जीवौ—घास पात खाते रहो; सनेह—(१) प्रेम (२) मक्खन ; वृषभानुजा—(१) वृषभानु+जा—वृषभानु की पुत्री (२) वृषभ+अंनुजा—साँड की छोटी बहिन ; हलधर—(१) हल के अस्त्र को धारण करने वाले बलदेव जी (२) हल+धर=बैल ; बीर—भाई।

भावार्थ—(१) राधा-कृष्ण की यह जोड़ी चिरंजीवी हो। इनमें गम्भीर स्नेह क्यो न बना रहे ? इनमें घटकर कौन है ? ये हैं वृषभानु की लाड़ली और वे हैं बलदेव के छोटे भाई !

श्लेषार्थ—यह जोड़ी घास-पात खाती रहे! इनसे खूब मक्खन क्यों न प्राप्त हो! इनमें घटकर कौन है! ये हैं साँड की छोटी बहिन और वे हैं बैल के छोटे-भाई।

टिप्पणी—इस दोहे में कवि ने उत्तम श्लेष लाने का प्रयत्न किया है किन्तु श्लेष की सफलता के साथ ही इसमें ग्राम्य-दोष आ गया है।

१२—शब्दार्थ—प्रलय करन=प्रलय करने के लिए।

भावार्थ—(इन्द्र के कुपित होने पर जब उसकी आज्ञा से) सभी मेघ एक साथ मिलकर प्रलय करने के लिए बरसने लगे तो गोवर्द्धन धारी श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को हाथ पर प्रसन्नता के साथ धारण कर इन्द्र का गर्व चूर्ण कर दिया!

टिप्पणी—इन्द्र के क्रोध का कारण यह था कि श्रीकृष्ण ने उनकी पूजा बन्द कराकर गोवर्द्धन पूजा कराई थी।

१३—शब्दार्थ—पीटपट—पीताम्बर।

भावार्थ—श्रीकृष्ण जी अपने साँवले शरीर पर पीताम्बर ओढ़े हुए इस प्रकार शोभा पा रहे हैं मानों नीलमणि के पर्वत पर प्रात कालीन धूप पड़ रही हो।

टिप्पणी—इसमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

१४—शब्दार्थ—अधर—ओष्ठ।

भावार्थ—भगवान् श्रीकृष्ण ज्यों ही बाँसुरी को ओठों पर धारण करते हैं त्यों ही उस पर ओंठ की लाल, दृष्टि की श्वेत, श्याम और लाल, पीताम्बर की पीली तथा शरीर की नीली ज्योति पड़ने लगती है और उस हरे बाँस की बाँसुरी की आभा इन्द्रधनुष की सी हो जाती है।

टिप्पणी—हरे बाँस की बाँसुरी में इन्द्रधनुष की आभा दिखाना कितनी सुन्दर सूझ है! अतद्गुण अलङ्कार है।

१५—**शब्दार्थ**—लिलार—मस्तक।

✓**भावार्थ**—सभी कहते हैं कि अंक के आगे बिन्दु (शून्य) रखने से उसका मान दसगुना बढ़ जाता है किन्तु उस स्त्री ने अपने लिलार पर जो बिन्दी लगाई है उससे उसकी अगणित सुन्दरता बढ़ जाती है।

टिप्पणी—इस दोहे में कवि ने लिलार की बिन्दी का वर्णन गणित के सिद्धान्त के सहारे किया है। इससे कवि का गणित सम्बन्धी ज्ञान प्रकट होता है।

१६—**शब्दार्थ**—चहुँ—चारों ओर।

भावार्थ—उस चन्द्रमुखी नायिका के घर के चारों ओर पत्रा देखकर ही तिथि का पता चलता है क्योंकि उसके मुख-चन्द्र के प्रकाश से नित्य ही पूर्णिमा रहती है।

टिप्पणी—इस में नायिका के मुख की उपमा पूर्णिमा के चन्द्रमा से दी गयी है। इस में भ्रम तथा अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

१७—**शब्दार्थ**—अजौं—अब भी; लह्यौ—पा लिया।

भावार्थ—मोतियों के साथ रह कर बेसर नायिका के नाक में पहुँच गयी किन्तु कर्णफूल (नायिका के) कानों की एकमात्र सेवा करके अभी तक कर्णफूल ही हैं।

टिप्पणी—इस में बताया गया है कि उन्नति करने वाले व्यक्ति को किसी सर्वगुण-सम्पन्न व्यक्ति का साथ अवश्य करना चाहिये अन्यथा उन्नति असम्भव है।

श्लेषार्थ—वेदों का निरन्तर अनुशीलन करते रहने पर भी अभी तक किसी की मुक्ति नहीं हो सकी। किन्तु जीवन-मुक्त महात्माओं का सत्संग करके (बहुतों ने) अनायास ही स्वर्ग में रहने का अधिकार प्राप्त कर लिया।

टिप्पणी—इसमें सत्संग की महत्ता वेदाध्ययन से अधिक बतायी गयी है।

१८-शब्दार्थ—लोचन जगत—संसार के नेत्रों से।

भावार्थ—एक ही स्त्री में चन्द्रमा-सा मुख, मंगल-सा लाल बिन्दु तथा बृहस्पति-सा पीला टीका देखकर सम्पूर्ण संसार आनन्दित हो जाता है।

टिप्पणी—ज्योतिष में लिखा हुआ है कि जब चन्द्रमा, मंगल और बृहस्पति एक ही राशि पर स्थित होते हैं तो महा-वृष्टि का योग होता है। यहाँ एक ही नारी में चन्द्र, मंगल और बृहस्पति की स्थिति बताकर संसार के लोचनों का रसमय होना कहा गया है। इसमें रूपक अलंकार है।

१९-शब्दार्थ—जाकी—जिसकी (१. ईश्वर २. स्त्री); केते—कितने।

विशेष—इस दोहे का अर्थ अध्यात्म-दृष्टि से परमात्मा के पक्ष में घटता है और शृंगार की दृष्टि से नायिका के पक्ष में घटता है।

परमात्मा के पक्ष में—जिस परमात्मा का (यथार्थ) चित्र खींचने का गर्व करने के कारण कितने ही चतुर चित्रकारों (सूक्ष्म तत्त्ववेत्ता विद्वानों तथा भावुक-भक्तों) को अन्त में लज्जित होना पड़ा, उसके विषय में क्या कहना!

टिप्पणी—भगवान के सत् स्वरूप का पूर्ण वर्णन करने की सभी को अभिलाषा होती है किन्तु अन्त में सबको "इदमित्थं कहि जाय न कोई" का सिद्धान्त मानना पड़ता है।

नायिका के पक्ष में—संसार के कितने ही चतुर चित्रकार अत्यन्त गर्व के साथ जिस सुन्दरी का चित्र खींचने बैठकर अन्त में बेवकूफ बन गये। (उसके सौन्दर्य के विषय में क्या कहना है!)

टिप्पणी—नायिका का यथार्थ चित्र क्यों नहीं खिंच सका इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं—

(१) नायिका की सुन्दरता प्रतिक्षण बढ़ती रहने से चित्रकार का चित्र अधूरा रह जाता होगा।

(२) नायिका इतनी सुन्दर है कि चित्रकार उसको देखते ही रह जाता होगा और चित्र खींचना भूल जाता होगा अथवा नायिका की सुन्दरता देखकर चित्रकार का मन उसके हाथ में नहीं रहता होगा। इस प्रकार बुद्धि नष्ट हो जाने से चित्रकार चित्र न बन सकता होगा।

(३) अश्रु, स्वेद, कम्प और रोमाञ्च आदि सात्विक भावों के कारण चित्र न बन सकता होगा।

२०—शब्दार्थ—नेह—प्रेम।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि नेत्रों में कुछ स्नेह नहीं उत्पन्न हुआ है प्रत्युत बहुत बड़ी बला उत्पन्न हुई है। ये नेत्र सदा अश्रु-जल से परिपूर्ण रहते हैं फिर भी इनकी प्यास नहीं बुझती।

टिप्पणी—कितना मार्मिक चित्र है! इसमें विरोधाभास अलङ्कार है।

✓२१-शब्दार्थ—उज्ज्वल—श्वेत, सात्विक।

भावार्थ—बिहारीलाल जी कहते हैं कि इस प्रेमी चित्त की गति कोई नहीं समझता। यह ज्यों-ज्यों कृष्ण-रंग में डूबता है त्यों-त्यों उज्ज्वल होता जाता है। (भाव यह है कि चित्त ज्यों-ज्यों भगवत्-प्रेम का रसास्वादन करता जाता है त्यों-त्यों उसे सात्विकता प्राप्त होती जाती है।)

टिप्पणी—इसमें विरोधाभास अलङ्कार है।

✓२२-शब्दार्थ—जुगुति—मुक्ति , धरक—खटका, चिन्ता।

भावार्थ—यदि मुक्ति में प्रियतम से मिलने का कोई उपाय नहीं है तो ऐसी मुक्ति के मुख में धूल डालनी चाहिए (भाव यह है कि प्रियतम से अलग करने वाली मुक्ति का तिरस्कार कर देना चाहिए) किन्तु यदि प्रियतम के संग नरक में रहना पड़ा तो उसके लिए तनिक भी चिन्ता न करनी चाहिए।

टिप्पणी—इसमें प्रियतम का सम्पर्क नरक में भी स्वर्ग के समान सुख देने वाला बताया गया है।

२३-शब्दार्थ—सौंह—शपथ ; आन—दूसरी।

भावार्थ—बिहारीलाल जी कहते हैंकि गोपियाँ मुरली की ध्वनि सुनने के लिए उत्सुकतापूर्वक रात-दिन वन की ओर कान लगाये रहती हैं मानो इन्होंने वंशी-ध्वनि के सिवा और कुछ भी न सुनने की शपथ सा ली है।

टिप्पणी—देखिए, वंशी ध्वनि सुनने के लिए गोपियाँ कितनी उत्सुक हैं।

✓२४-शब्दर्थ—हौं—मैं ; बलाइ—आपत्ति

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि श्रीकृष्ण के सौन्दर्य के लोभ में पड़े हुए मेरे नेत्र रूपी दलालो ने उनके नेत्रो से मिलकर गुप्त साँठ-गाँठ की और बिना कुछ कहे-सुने मुझे बेच डाला। यह मेरे लिए बहुत बड़ी बला है।

२५-शब्दार्थ—तिहारे—तुम्हारे।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि हे लाल! तुम्हारे सौन्दर्य की यह कौन सी रीति है कि जो नेत्र पल भर इसे देख लेते हैं उनमें एक पल के लिए भी नीद नही आती।

टिप्पणी—श्रीकृष्ण के रूप का जादू इस दोहे मे द्रष्टव्य है। इसमें यमक अलकार है।

२६-शब्दार्थ—पागि—पगे हुए।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि प्यारे कृष्ण! यद्यपि तुम सुन्दर और प्रेम से पगे हुए हो किन्तु तुम्हारा थोड़ा-सा कपट हमे उसी प्रकार दुख देता है जिस प्रकार तेल और नमक डालकर भूने जाने पर भी कुछ कच्चा रह जाने से सूरन मुँह में खुजलाहट उत्पन्न करता है।

टिप्पणी—इसमें श्लेष अलङ्कार है।

२७-शब्दार्थ—गुड़ी—पतंग, उड़ायक—उड़ानेवाला।

भावार्थ—(अध्यात्मपक्ष में)—भगवान अपने भक्त को सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि ऐ भक्त! यदि तू मुझ से बिछुड़ गया तो क्या हुआ? दूर रहते हुए भी तेरा चित्त मेरे पास उसी प्रकार रहता है जिस प्रकार उड़ाने वाले के हाथ में बहुत ऊँची उड़ी हुई पतग का सूत्र।

(शृङ्गार पक्ष में) परदेश गया हुआ नायक अपनी प्रेयसी को सान्त्वना देता है कि यदि मैं तुमसे बिछुड़ गया हूँ तो क्या

हुआ। मेरा हृदय तो तेरे हाथ में उसी प्रकार है जिस प्रकार उड़ाने वाले के हाथ में बहुत ऊँची उड़ी हुई पतंग का सूत्र। भाव यह है कि यद्यपि मैं तुमसे बहुत दूर हूँ किन्तु तेरा बुलावा आने पर मैं शीघ्र ही उपस्थित हो सकता हूँ।

२८—**शब्दार्थ**—हौं ही—मैं ही, बौसे—पागल।

भावार्थ—कोई वियोगिनी गोपी कहती है कि विरह के वशीभूत होकर मैं ही पागल हो गयी हूँ या सारे गाँव के लोग पागल हो गये हैं। पता नहीं, ये क्या जानकर चन्द्रमा को 'शीतकर' कहते हैं। (मुझे तो यह शीतकर नहीं प्रत्युत दाहक लगता है।)

टिप्पणी—वियोगिनी गोपी को चन्द्रमा दाहक लगता है इसलिए उसकी दृष्टि में चन्द्रमा का 'शीतकर' नाम रखा जाना पागलपन है। इसमें सन्देह अलंकार है।

२९—**शब्दार्थ**—कहलाने—(१) किसलिए; (२) गर्मी से व्याकुल; एकत—एक ही स्थान पर, एकत्र; दीरघ दाघ—कड़ी गर्मी।

भावार्थ—(स्वभाव से ही एक दूसरे के शत्रु होने पर भी) सर्प और मोर तथा हिरन और बाघ किस लिए (गर्मी से व्याकुल होकर) साथ रहते हैं? ग्रीष्म की कठोर गर्मी ने संसार को तपोवन-सा (जो) बना दिया।

टिप्पणी—तपोवन के प्रभाव से हिंसक जीव अपने स्वभाव का परित्याग कर देते हैं वहाँ ग्रीष्म की घोर तपन से बेसुध होकर सर्प और मोर तथा हिरन और बाघ अहिंसक होकर साथ बैठे दिखायी पड़ रहे हैं। इसमें प्रश्नोत्तर अलंकार है।

२०—शब्दार्थ—दुसह—कठिनता से सहा जाने वाला।

भावार्थ—जब अमावस की रात मे सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशि पर स्थित होकर ससार मे घोर अधकार कर देते हैं, तो दोहरे शासन मे प्रजा का घोर दुख क्यो न बढ़े ?

टिप्पणी—बिहारी के समय में जनता मुसलमान सूबेदारों और देशी राजाओं के दोहरे शासन के बीच मे पड़कर कितना घोर कष्ट पा रही थी। यह इस दोहे से स्पष्ट लक्षित होता है। इसमे अर्थांतरन्यास अलङ्कार है।

२१—शब्दार्थ—सयाने लोग—नीतिज्ञ पुरुष।

भावार्थ—वेद, स्मृतियाँ और नीतिज्ञ पुरुष सभी यही कहते हैं कि राजा, पाप और रोग तीनो निर्बल को ही दुख देते है।

२२—शब्दार्थ—बसे— रहने पर।

भावार्थ—नागरता का नाम सुनकर गाँव के लोग ताली बजा-बजाकर हँसते हैं। (सच है) गँवारों के गाँव मे बसने पर गुण का सारा गर्व नष्ट हो जाता है। (गाँव मे गुण की कोई उपयोगिता नही रहती है।)

२३—शब्दार्थ—रज—धूल।

भावार्थ—यदि तुम चाहते हो कि तेल से चिकनी की हुई किसी वस्तु की चटक (सौंदर्य) न कम हो और न वह मैली ही हो तो उसे धूल पड़ने से बचाइए। इसी प्रकार यदि तुम चाहते हो कि प्रेम से प्रभावित प्रेमी का चित्त सदैव उज्ज्वलता को प्राप्त होता रहे और उसमें कभी भी मलिनता न आवे तो उस पर शासन न करो।

टिप्पणी—प्रेम पात्र के ऊपर शासन नहीं करना चाहिए अन्यथा उसके चित्त में गाँठ पड़ जायगी।

√२४-शब्दार्थ—जोइ—देखो ; जेतो—जितना ; तेतो—उतना।

भावार्थ—मनुष्य की तथा नल के जल की एक ही सी दशा है। दोनों पहले जितने ही नीचे होकर चलेंगे अंत में उतने ही ऊँचे उठेंगे।

टिप्पणी—इस में मनुष्य को विनीत होने के लिए कहा गया है।

२५-शब्दार्थ—जोरि—इकट्ठा कर।

भावार्थ—हे मित्र ! यह कोई नीति नहीं है कि तुम घोर सङ्कट से ग्रस्त होकर धन का सग्रह करो। हाँ यदि खाने और आवश्यक खर्च करने पर भी बचत हो तो इससे करोड़ों रुपयों का सग्रह करो।

टिप्पणी—इसमें पेट काटकर पैसा बचाने की प्रवृति को बुरा बताया गया है।

२६-शब्दार्थ—अलि—भ्रमर ; मूल—जड़।

भावार्थ—भ्रमर यह आशा लगाये गुलाब की जड़ में (बहुत दिनों तक) बैठा रहा कि बसंत ऋतु में फिर गुलाब की इन कँटीली डालों में सुन्दर फूल खिलेंगे।

टिप्पणी—यहाँ अन्योक्ति अलंकार है, इसमें आशावादी जीवों को धैर्य बँधाया गया है।

√२७-शब्दार्थ—कनक—सुवर्ण ; कनक—धतूरा।

भावार्थ—सोने (धन) में धतूरे से सौ गुनी अधिक मादकता होती है। देखिए, धतूरे को खाने से आदमी पागल बनता है पर इस को पाने (स्पर्श करने) से ही आदमी पागल हो जाता है।

टिप्पणी—इस में धन का नशा सभी नशो से बुरा बताया गया है। इसमे यमक अलङ्कार है।

२८-शब्दार्थ—कत—क्यों ; कुरंग—हिरन।

भावार्थ—इस जाल मे पड़कर कौन छूट सका है ? ऐ हिरन! (ऐसी स्थिति में) तू क्यों व्याकुल होता है। देख, तू ज्यो-ज्यों इस जाल को सुलझाकर भागने का प्रयत्न करता है त्यो-त्यों और उलझता जाता है।

टिप्पणी—इस दोहे में प्रकारान्तर से भवजाल मे ग्रस्त जीवो की दुर्दशा दिखलायी गयी है। वे ज्यो-ज्यों भवजाल से मुक्त होने के लिये जप-तप, तीर्थ और व्रत आदि नाना प्रकार के उपाय करते हैं त्यों-त्यो और मोह-ग्रस्त होकर इस भवजाल में बुरी तरह से उलझ जाते हैं। इस भवजाल से मुक्ति पाने का केवल एक ही उपाय है कि धैर्य धारण कर जीव प्रभु की प्रार्थना करे। जिस प्रकार शिकारी हिरन को स्वेच्छा से मुक्त कर सकता है उसी प्रकार भगवान् जीव को भवबधन से मुक्त कर सकते हैं। इसमें अन्योक्ति अलकार है।

२९-शब्दार्थ—गंधी—इत्र बेचने वाला।

भावार्थ—सभी (गुलाब के इत्र को) हाथ में लेते है, सूँघते हैं, प्रशसा करते हैं और फिर मौन ग्रहण कर लेते हैं। अरे गंधी! गुलाब के इत्र का यहाँ गाँव में कौन गाहक है ?

टिप्पणी—इस दोहे में कवि ने अन्योक्ति द्वारा बतलाया है कि गुणग्राही व्यक्ति के सामने ही यथासमय गुण का प्रदर्शन करना चाहिए अन्यत्र गुण का प्रदर्शन करने से कोई लाभ न होगा।

४०—**शब्दार्थ**—नागर—सभ्य।

भावार्थ—ऐ गुलाब! जिन से सम्मानित होने पर ही तेरी प्रतिष्ठा है वे श्रेष्ठ नागर (सभ्य पुरुष) यहाँ गाँव में नहीं हैं। इसलिए यहां तेरा फूलना न फूलने के समान ही है।

टिप्पणी—इस दोहे में अन्योक्ति अलंकार है। गवाँरों के बीच गुण प्रदर्शन करना व्यर्थ ही है।

४१—**शब्दार्थ**—तऊ—तो भी; निपट—एकदम।

भावार्थ—ऐ सरोवर! यह एकदम कुचाल है। (इसे छोड़ दो) यद्यपि वे (बगले) पुराने साथी हैं, पर तो भी वे बगले ही हैं। ये हंस नये हैं तो क्या हुआ? ये मन को मोहित करने वाले (तो) हैं। (अतएव बगले का संग त्याग कर हंस का संग करो।)

टिप्पणी—इसमें अन्योक्ति अलंकार है। नये-पुराने का कुछ भी ध्यान न रखकर सदैव शिष्ट और गुणी जनों से सम्पर्क रखना चाहिए।

४२—**शब्दार्थ**—दई—दैव, विधाता; दई—दिया है।

भावार्थ—(बड़ों की) बड़ी भूल देखकर भी बड़ो से कौन कह सकता है? दैव ने गुलाब की इन (कँटीली) डालियों में सुन्दर फूल लगाए हैं। (फिर भी उनसे कोई नहीं कहने जाता कि यह आपकी भूल है!)

टिप्पणी—इसमें अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

४३—शब्दार्थ—मधु—पराग, मधुकर—भ्रमर।

भावार्थ—ऐ गुड़हल के फूल! तू (व्यर्थ में) वहककर क्यो अपनी (सुन्दरता की) प्रशंसा कर प्रसन्न हो रहा है। तू भूल मत कर। बिना पराग के (सुन्दर होने पर भी) तू भ्रमर के हृदय मे न गड़ सकेगा (भाव यह है कि बिना पराग के भ्रमर तुझे नहीं चाहेगा।)

टिप्पणी—इस दोहे में किसी रूपगर्विता नायिका पर अन्योक्ति है। रूपगर्विता नायिका से उसकी सखी कहती है कि तेरा अपने सौन्दर्य पर गर्व करना व्यर्थ है क्योंकि हाव-भाव आदि के गुण का अभाव देखकर नायक तुझसे प्रसन्न नहीं होगा।

४४—शब्दार्थ—सपर—परिवार के साथ, विहंग—पक्षी, पुहुमि—पृथ्वी।

भावार्थ—पंख ही तुम्हारा वस्त्र है, (सर्वत्र सुलभ) कंकड़ ही तुम्हारा भोजन है और सदैव तू परिवार के साथ अपनी कबूतरी के संग मे रहने वाला है। इसलिए ऐ परेवा! संसार मे तू ही एक सुखी पक्षी है।

टिप्पणी—इस दोहे मे सुखी जीवन का चित्र उतारा गया है।

४५—शब्दार्थ—काग—कौआ; सनमान—आदर।

भावार्थ—ऐ कौए! दस-पन्द्रह दिन तक सम्मानित कर तू (अपने मुँह से) अपनी प्रशंसा कर ले क्योंकि जब श्राद्ध पक्ष है तभी तक तेरा सम्मान भी है।

टिप्पणी—श्राद्ध पक्ष में कौओ को बलि का अन्न मिलता

है। इसी बात को लेकर अवसरवादी लोगों पर कवि ने अन्योक्ति की है।

✓४६-शब्दार्थ—बेर—बेला, समय।

भावार्थ—समय का फेर तो देखो। तोता पिंजड़े में बन्द होकर प्यास के मारे मर रहा है और बलि समय कौआ बुलाया जा रहा है।

टिप्पणी—इसमें भाग्य-चक्र पलटने की बात कही गयी है।

४७-शब्दार्थ—जड़ता—मूर्खता।

भावार्थ—जिस मुकुट को सिर पर धारण करके राजाओं और महाराजाओं ने पृथ्वी में यश प्राप्त किया उसको पैर में पहनने से अपनी ही मूर्खता सिद्ध होती है।

टिप्पणी—इसमें अन्योक्ति है, सत्पात्र का तिरस्कार करने से अपनी ही अयोग्यता सिद्ध होती है।

✓४८-शब्दार्थ—ह्याँ—यहाँ ; पुर—गाँव।

भावार्थ—ऐ हाथी के खरीदार! तुम यहाँ से चले जाओ। यहाँ हाथियों का व्यापार कौन करता है? क्या तुम नहीं जानते कि इस गाँव में (गधे पालने वाले) केवल धोबी और कुम्हार ही रहते हैं।

टिप्पणी—इसमें अन्योक्ति है। मूर्खों के बीच गुणियों की पूछ कहाँ?

४९-शब्दार्थ—सोधि—खोजकर।

भावार्थ—वृष-राशिस्थ सूर्य की घोर तपन के कारण तुझे जो प्यास लग रही है, उसे तरबूज खोजकर उसके जल से शान्त कर

और असीम तथा अगाध जल रखने वाले मूर्ख सागर की परवाह न कर (उसे तू यों ही वह जाने दे ।)

टिप्पणी—इसमें बताया गया है कि विपत्ति के समय बड़े किन्तु सहायता न करने वाले पुरुषो का आसरा न ताकना चाहिये वरन् छोटे व्यक्तियो की किंचित् मात्र सहायता से लाभ उठाना चाहिए। इसी आशा का एक दोहा रहीम ने भी कहा है—

"धनि रहीम जल पक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥"

५१०—शब्दार्थ—गिरि—पर्वत ; पयोधि—समुद्र।

भावार्थ—जिस प्रेमरूपी सागर मे हजारो पर्वत से भी ऊँचे रसिक मन डूब गये और बह गये वही गवाँरो को एक छोटी-सी पोखरी के तुल्य दिखाई देता है।

टिप्पणी—सच है, प्रेम की महत्ता को मूर्ख लोग क्या जानें।

५११—शब्दार्थ—चटक—स्पष्टता ; घटत—कम होते हुए।

भावार्थ—सज्जनो का गम्भीर स्नेह घटते हुए भी उसी प्रकार फीका नही होता जिस प्रकार मँजीठ के रंग में रगा हुआ कपड़ा फटने पर भी अपनी चटक नहीं छोड़ता।

टिप्पणी—इसमे सज्जनो के सच्चे प्रेम का दिग्दर्शन कराया गया है।

५१२—शब्दार्थ—तरे—पार उतर गये।

भावार्थ—वीणा के नाद मे, सुन्दर राग-रागनियों में, कविता के रस में तथा प्रेम-प्रसङ्ग मे जो डूब गये (पूर्ण रूप से

तल्लीन हो गये) वे (संसार-सागर से) पार उतर गये किन्तु जो नहीं डूबे (पूर्णतया तल्लीन नहीं हुए) वे (संसार-सागर में) डूब गये।

टिप्पणी—गहरी तल्लीनता होने पर ही सिद्धि या मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इसमें विरोधाभास अलंकार है।

५३—शब्दार्थ—कालि—कल, कत—क्यों।

भावार्थ—हे मूर्ख नीलकण्ठ ! कल विजयदशमी बीत जायगी। (कुछ तो) हृदय में लज्जा कर (सामने आ)। व्यर्थ में वृक्षों के बीच क्यों छिपा फिरता है ?

टिप्पणी—दशहरा के अवसर पर नीलकण्ठ का दर्शन शुभ माना जाता है किन्तु इस अवसर पर वह दिखलाई नहीं पड़ता। इसी बात को लेकर कवि ने उन गुणी व्यक्तियों पर आक्षेप किया है जो यथावसर अपने गुण का प्रदर्शन नहीं करते।

५४—शब्दार्थ—रुचि—प्रवृत्ति, जितै—जिस पर।

भावार्थ—समय-समय पर सभी सुन्दर लगते हैं, रूपवान और कुरूप कोई नहीं है। मन की प्रवृत्ति जिस पर जितनी ही अधिक होगी वह उतना ही सुन्दर लगेगा।

टिप्पणी—इसमें दार्शनिक चमत्कार है। कोई भी वस्तु वस्तुत: न अच्छी है न बुरी। इसकी अच्छाई और बुराई तो भोक्ता पर निर्भर है।

५५—शब्दार्थ—हौं—मैं; एकै रूप—एक ब्रह्म का रूप।

भावार्थ—बिहारीलाल जी कहते हैं कि मैंने भली-भाँति समझ लिया है कि यह जग काँच के समान कच्चा है और इसमें

जहाँ भी देखिए एक ही रूप के (परमात्मा के) अनेकों प्रति-बिम्ब दिखायी पड़ते हैं।

टिप्पणी—इसमें अद्वैतवाद का निरूपण हुआ है। जितना 'नानात्व' दिखायी देता है सब एक ही ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है।

५६-**शब्दार्थ**—सकल—सब।

भावार्थ—जिसने सारे संसार मे यह बात प्रसिद्ध की कि वह प्रभु का यथार्थ रूप जान गया है, समझ लीजिए कि उसने हरि को नही जान पाया है क्योंकि जिन आँखों से सब कुछ देखा जाता है, वे आँखें स्वतः अपने को नही देख सकतीं।

टिप्पणी—इसमें दार्शनिक चमत्कार है। ईश्वर-ज्ञान सचमुच अलभ्य है।

५७—**शब्दार्थ**—नाचै वृथा—व्यर्थ का ढोंग करता है।

भावार्थ—जप करने, माला, छापा और तिलक धारण करने मात्र से एक भी काम न सधेगा। यदि मन में कपट है तो यह सब स्वाँग व्यर्थ है। राम तो सच्ची उपासना करने वालों से प्रसन्न होते हैं।

टिप्पणी—राम अपने सच्चे व्यवहार से ही प्रसन्न होते हैं। उनके साथ दंभ करने से कोई भी काम नहीं चल सकता।

५८-**शब्दार्थ**—तौ लगि—तब तक; मन-सदन—मन रूपी घर; बाट—मार्ग; कपाट—किवाड़।

भावार्थ—जब तक दृढता से बन्द किये गये कपट-रूपी किवाड़ नही खुलते तब तक इस मन रूपी घर में भगवान किस मार्ग से आवें (भाव यह है मन के निष्कपट होने से ही उसमें ईश्वर आ सकते हैं।)

✓५९–शब्दार्थ—बिरियाँ—अवसर, समय ; पाहन—पत्थर ।

भावार्थ—ऐ जीव ! इस (अंतिम) अवसर पर और कोई तेरी सहायता नहीं कर सकता इसलिए तू उसी कर्णधार को खोज जिसने पत्थर की नाव पर चढ़ाकर (करोड़ों बन्दरों व भालुओं को) समुद्र के पार उतार दिया था ।

टिप्पणी—कवि इस दोहे में अंतिम अवस्था आने पर भगवान् राम की शरण में जाने के लिए कहता है । रामचन्द्र जी ने जब पत्थर का पुल समुद्र में बंधवाकर वानरों की सेना को लंका पार उतार दिया तो क्या वे इस भवसागर से पार नहीं उतारेंगे ? अवश्य उतारेंगे । फिर उतारने की बात तो दूर ही रही क्योंकि भगवान का नाम सुनते ही भवसागर आप से आप सूख जायगा । गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—"नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं ।"

✓६०–शब्दार्थ—भजन—भजन करना ; भजन—भागना ।

भावार्थ—ऐ मूर्ख मन ! (गर्भ में) जिस (प्रभु) का भजन करने के लिए तूने वादा किया था उसका नाम एक बार भी नहीं लिया और जिस से दूर भागने (त्यागने) का वचन दिया था उस से दूर नहीं रह सका । तू सदा विषयों में लिप्त रहा ।

✓६१–शब्दार्थ—पीठ दै—विमुख होकर ।

भावार्थ—गोपाल की लीला पतंग के समान है । गुण विस्तार करने के समय (अपने को गुणवान समझने के समय) वे पीठ देकर भागते हैं (ठीक उसी प्रकार जैसे कि डोरी बढ़ाने

से पतंग दूर चली जाती है।) और निर्गुण होते ही (अपने को गुणहीन या तुच्छ समझते ही) वे निकट ही प्रकट हो जाते हैं (ठीक उसी प्रकार जैसे डोरी खींच लेने पर पतंग हाथ में आ जाती है।)

टिप्पणी—इस दोहे में कवि ने बताया है कि जिन लोगों को अपने गुणो का अभिमान है, उनसे भगवान सदा दूर रहते हैं। वे तो उन्हीके पास आने के लिए सदैव तैयार रहते हैं जिन्हे अपने गुणो का कुछ भी अभिमान नही होता।

६२-**शब्दार्थ**—आन—अन्य ; उपाव—उपाय।

भावार्थ—ऐ मन! इस संसार-सागर को पार करने का दूसरा कोई उपाय नही है। तू माला रूपी पतवारी पकड़कर और हरि-नाम की नौका मे बैठकर इस ससार-सागर को पार कर जा।

टिप्पणी—इस दोहे मे नाम-स्मरण की महत्ता कही गयी है।

६३-**शब्दार्थ**—निहारि—देख; उर—हृदय।

भावार्थ—ऐ मन! (यदि तू मोही है तो) मोहन से मोह कर, (यदि तू सौन्दर्य-प्रेमी है तो) घनश्याम की ओर देख, (और यदि तू निरन्तर विहार ही करना चाहता है तो) कुञ्जविहारी के साथ विचरण कर। अरे, यदि तू अपने को बलवान लगाता है तो गिरिधारी कृष्ण को छाती पर क्यों नही रख लेता?

टिप्पणी—यह दोहा बहुत ही उत्कृष्ट है। बिहारी का वाक्चातुर्य इसमे देखते ही बनता है।

९४–शब्दार्थ—अनाकनी दई—सुनी-अनसुनी कर दी गुहारि—पुकार, तारन-विरद—उद्धार करने का यश।

भावार्थ—हे प्रभो! तुमने अच्छी आनाकानी की (मै क्या कहूँ) मेरी तो पुकार ही फीकी पड़ गयी। (जान पड़ता है कि) तुमने एक बार गजेन्द्र का उद्धार करके अब तारने का यश ही छोड़ दिया।

टिप्पणी—कहते हैं कि एक बार गजेन्द्र किसी सरोवर मे पानी पीने के लिए गया। वहाँ ग्राह ने उसका पैर पकड़ लिया। सहस्रो वर्षो तक निरन्तर युद्ध करने पर गजेन्द्र हताश हो गया। तब उसने करुण स्वर से प्रार्थना की कि हे प्रभो! मुझे बचाओ। दयालु भगवान ने तुरन्त ही अपने चक्र-सुदर्शन से ग्राह का सिर काट डाला और गजेन्द्र को बचा दिया। इस दोहे में इसी कथा की ओर सकेत है।

९५–शब्दार्थ—दीरघ—लम्बी, कबूल—स्वीकार करो।

भावार्थ—दु.ख मे लम्बी साँस मत लो और सुख में प्रभु को न भूलो। हाय-हाय क्यो करते हो? विधाता ने तुम्हें जो कुछ दिया है, उसे (प्रसन्नता से) स्वीकार करो।

टिप्पणी—इसमें यमक अलकार है।

९६–शब्दार्थ—सुचित न आयो—मन में नही बसे।

भावार्थ—ऐ मन! यदि तेरी प्रवृत्ति ब्रजवासियो के उचित घन श्रीकृष्ण की प्राप्ति की ओर है तो तू उनका ध्यान कर। यदि वे तेरे मन में नहीं बसे तो तुझे शान्ति ही कैसे प्राप्त हो सकती है?

९७–शब्दार्थ—सोई—वही, गिनौ न—गिनती न करो।

भावार्थ—हे गोपीनाथ ! चित्त मे वैसी ही दया रखिए जिससे मैं भी (अन्य) पापियो के साथ तर जाऊँ। मेरे गुणों और अवगुणो को न गिनिए क्योंकि इस गणना से मेरा उद्धार न हो सकेगा। (मुझे तो केवल आपकी दया का ही भरोसा है ।)

६८-शब्दार्थ—रीझते—प्रसन्न होते ; विसराई-भुला दी।

भावार्थ—हे कृष्ण ! थोड़े से ही गुणो पर रीझने वाली अपनी वह पुरानी आदत तुमने छोड़ दी है। जान पड़ता है कि तुम भी अब कलयुग के दानी बन रहे हो ।

टिप्पणी—इस दोहे मे कलियुगी दानियो की निन्दा की गयी है।

'**६९-शब्दार्थ**—टेरत—पुकारता हूँ , तुम हूँ—तुम्हे भी।

भावार्थ—हे प्रभो ! मै दीन बनकर कब से तुम को पुकार रहा हूँ (फिर भी तुम मेरी सहायता को नही आ रहे हो।) हे जगद्गुरु ! हे जग के अधिष्ठाता !! जान पडता है कि दुनिया की हवा तुम्हे भी लग चुकी है।

टिप्पणी—'जग-वाय' से कवि ने कलयुगी दानियो की ओर संकेत किया है।

७०-शब्दार्थ—विपति - विदारनहार—विपत्ति को नष्ट करने वाले।

भावार्थ—विहारीलाल जी कहते हैं कि चाहे कोई हजारो-लाखो रुपये एकत्र करे और चाहे कोई करोड़ो रुपये एकत्र करे पर मुझे इससे क्या ? मेरी सम्पत्ति तो विपत्ति को सदैव नष्ट करने वाले श्रीकृष्ण जी ही हैं।

७१-शब्दार्थ—हठ न करौ—जिद न कीजिए।

भावार्थ—हे गोपाल! मेरी करनी का जो फल होगा वही होकर रहेगा। आप हठ न करें क्योंकि मुझ जैसे पापी का उद्धार करना कोई खेल नहीं है।

टिप्पणी—कितनी सुन्दर युक्ति है!

७२–शब्दार्थ—बहस—उत्तर-प्रत्युत्तर होना।

भावार्थ—हे यदुराज! मुझ में और तुम में बहस छिड़ गयी है। देखना है कि कौन जीतता है। दोनो को अपने यश की लाज रखनी है। (तुम मुझे तारने के लिए कटिबद्ध हो और मैं पाप करने पर उतारू हूँ)

७३–शब्दार्थ—सरल चित्त—सरल हृदय।

भावार्थ—ससार भले ही निन्दा करे किन्तु हे दीन-दयालु! मैं अपनी कुटिलता त्याग नहीं सकता क्योंकि त्रिभंगीलाल जी! मेरे सरल चित्त में बसने पर तुम्हें कष्ट होगा।

टिप्पणी—सीधे हृदय में त्रिभंगी मूर्ति कैसे खड़ी रह सकेगी। इनके लिए तो टेढ़ा हृदय ही उपयुक्त होगा। हे नाथ! इसलिए मैं शरारत करता हूँ। बलिहारी है इस उक्ति पर!

७४–शब्दार्थ—मोष—मोक्ष; तोप—सतोष।

भावार्थ—हे प्रभो! मुझे भी मोक्ष दीजिए जिस प्रकार आपने अन्य पापियों को दिया है किन्तु यदि आप मुझे बंधन में रखने पर ही संतुष्ट होंगे तो कृपया अपने गुणों (रस्सियो) से बाँध रखिए। (भाव यह है कि मैं निरन्तर आपका गुणगान करता रहूँ।)

टिप्पणी—बंधन या मोक्ष दो में से एक भगवान

को देना ही पड़ेगा और दोनों ही दशाओं में बिहारी घाटे में न रहेंगे। देखिए, कितनी चतुरतापूर्ण युक्ति है!

७५-शब्दार्थ—कीजत—करता हूँ; डरो—पड़ा रहूँ।

भावार्थ—हे प्रभो! मैं हजार बार आप से विनती करता हूँ कि येन केन प्रकारेण आप के दरबार में डरता हुआ पड़ा रहूँ।

७६-शब्दार्थ—वलियै—वलैया लूँ; लखौ—देखो।

भावार्थ—हे नागर नन्दकिशोर! मैं तुम्हारी वलैया लूँ यदि तुम मेरी करनी पर कृपा की दृष्टि डालो क्योंकि मेरी बन जायगी (मेरा उद्धार हो जायगा)।

७७-शब्दार्थ—वित—धन; जिय—हृदय।

भावार्थ—धन के जाते समय जिस प्रकार हृदय में संतोष होता है यदि उसी प्रकार धन के आते समय संतोष हो तो घड़ी भर मे (या घर में ही) मोक्ष हो जाय। (तात्पर्य यह है कि लोभ बंधन का कारण होता है और सतोष से मुक्ति प्राप्त होती है।)

※—:०:—※

६—देव

—०:०::०:—

देव के काव्य की पृष्ठभूमि—हिन्दी साहित्य में रीति-ग्रन्थों की परम्परा किस प्रकार चली इसका संकेत 'बिहारी-के काव्य की पृष्ठभूमि' में किया जा चुका है अतः यहाँ उसका फिर से उल्लेख करना समीचीन नहीं जान पड़ता। बिहारी और देव दोनों एक ही परम्परा के कवि थे और दोनों का वर्ण्य-विषय भी प्राय एक ही है इनमें अंतर केवल इतना ही है कि देव की भाँति बिहारी ने अलग से लक्षण-ग्रन्थ नहीं लिखा है किन्तु इनका ध्यान लक्षणों के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करने की ओर अवश्य था। बिहारी सिद्धान्त-निरूपण' करके अपना पांडित्य-प्रदर्शन करने की अपेक्षा अपनी कृति को पूर्ण व्यवस्थित करना अच्छा समझते थे किन्तु वे परम्परा को लीक से एकदम हटना नहीं चाहते थे। उनकी सतसई में इन विचारों की स्पष्टता अंकित है। देव जी ने बिहारी की भाँति थोड़ी सी भी स्वतन्त्रता नहीं ली। इन्होंने परम्परा की लीक पर चलना ही अभिप्रेत समझा था। उस समय वस्तुतः वही इनके लिए राजमार्ग भी था।

वर्ण्य-विषय—बिहारी की भाँति देव जी के वर्णन का विषय शृंगार ही था। इन्होंने शृंगार के अंतर्गत संयोग और वियोग दोनों का वर्णन किया है। रूप-वर्णन और प्रकृति-वर्णन भी इन्होंने किया है। नीति और वैराग्य सम्बन्धिनी कविताएँ

भी इन्होंने की हैं। 'भाव विलास' और 'काव्य-रसायन' या 'शब्द-रसायन' इनके लक्षण ग्रन्थ है जो इन्हे आचार्यों की श्रेणी में बैठाते हैं। इन्होने इतने ग्रन्थ लिखे हैं कि रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियो मे से किसीने उतने ग्रन्थ नहीं लिखे। इनके सभी ग्रन्थों की संख्या ७२ या ५२ बतायी जाती है किन्तु आचार्य शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे इनके २५ ग्रन्थो का उल्लेख किया है। ग्रन्थों की अधिक सख्या होने के सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल जी ने लिखा है कि "देव जी अपने पुराने ग्रन्थो के कवित्तो को इधर-उधर दूसरे क्रम से रखकर एक नया ग्रन्थ प्राय. तैयार कर दिया करते थे। इससे वे ही कवित्त वार-वार इनके ग्रन्थो में मिलेंगे। 'सुखसागर तरग' तो प्रायः अनेक ग्रन्थों से लिए गये कवित्तों का संग्रह है।" देव जी को अभाग्यवश कोई ऐसा आश्रय दाता नहीं मिला जिसके यहाँ ये जीवन-पर्यंत रहते और सुचारु रूप से रचना करते। इन्हें जन्म भर आश्रयदाताओ की खोज करनी पड़ी है। इन्होंने अपने जीवनकाल मे जिन-जिन आश्रयदाताओं का आश्रय लिया है, प्रायः सभी को कोई-न-कोई ग्रन्थ अवश्य समर्पित किया है। ऐसी स्थिति मे अपने इस ग्रन्थ-निर्माण कार्य में इन्होने शुक्ल जी द्वारा कथित युक्ति से बहुत सहायता ली थी।

समीक्षा—रीति काल के 'रीति-ग्रन्थकार कवियो' मे देव जी का विशिष्ट स्थान है। ये इतने प्रगल्भ और प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे कि सोलह वर्ष की अवस्था मे ही 'भाव विलास' जैसा लक्षण-ग्रन्थ लिख डाला था। इनमे मौलिकता का गुण पर्याप्त था। काव्यानुशीलन भी इन्होने खूब किया था। पांडित्य और अनुभव की भी इनमें कमी न थी। इन्होंने प्रमुख रूप से शृंगार का ही वर्णन किया है। ये हमारे सामने आचार्य और कवि दोनों रूप में आते हैं। जहाँ तक आचार्यत्व का प्रश्न है ये बहुत सफल नही कहे जा सकते। इनका कवि रूप अपेक्षाकृत अधिक

निखरा हुआ और स्पष्ट है। इन्होंने काव्यांगो का निरूपण संस्कृत की 'रस तरंगिणी' के आधार पर किया है। इनके पद्य बद्ध लक्षण अधिकांश मे अस्पष्ट और दुरूह हैं। इनमें सिद्धांतों का विवेचन एवं पर्यालोचन वैज्ञानिक ढग से ठीक-ठीक नहीं हो सका है। उदाहरणार्थ जो रचनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं वे अपने लक्ष्य में पूर्णतया सफल नही है। इन्होने कई स्थलो पर एक ही छन्द को कई लक्षणो के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया है। इस प्रकार इनका आचार्यत्व बहुत सफल नहीं है। अपने लक्षण ग्रन्थ 'शब्दरसायन' में इन्होने शब्दालकारों की बहुत निन्दा की है किन्तु इनकी सम्पूर्ण रचना को यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उसमे शब्दालङ्कार ही प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। इनका कोई ऐसा छन्द नही है जिसमे अनुप्रासो का आग्रह न पाया जाता हो। इस रुचि के कारण इनकी काव्य-भाषा में बहुत प्रांजलता और सरसता नही आ सकी है। अक्षर-मैत्री का सौन्दर्य लाने के लिए इन्होंने शब्दों को खूब तोडा और मरोड़ा है। तुकांत में बहुत स्थलों पर इन्होने निरर्थक शब्द भी बैठा दिये हैं। बहुत से छन्दों में इन्होने भरती के भी शब्द-रक्खे हैं वास्तव में ऐसे स्थलों पर शब्दों का अधिक व्यय हुआ है जिससे भाषा में शिथिलता आ गयी है। इसके विपरीत इन्होने कुछ स्थलों पर शब्दालंकारो की ऐसी सुन्दर छटा छहराई है कि क्या मजाल जो तनिक भी अर्थ आछन्न हो अथवा भाषा की सजीवता और सरसता नष्ट हो। उदाहरणार्थ इस छन्द को देखिए—

आई बरसाने ते बोलाई वृषभानु-सुता,
निरखि प्रभानि प्रभा-भानु की अथै गई।
चक-चकवान के चकाये, चक-चोटन सों,
चौंकत चकोर चकचौंधी सी चकै गई।

'देव' नन्द नन्दन के नैननि अनन्दमयी,
नन्द जू के मंदिरन चंदमयी छै गई।
कंजन कलिनमयी, कुंजन नलिनमयी,
गोकुल की गलिन अलिनमयी कै गई।

इन्होंने प्रकृति-वर्णन स्वतन्त्र और उद्दीपन विभाग दोनो ही रूपों में किया है। इनका प्रकृति-वर्णन बहुत ही मनोहर और आकर्षक बन पड़ा है। उदाहरणार्थ पवन देव की इस प्राकृतिक-क्रीड़ा का निरीक्षण कीजिए—

अरुन उदोत, सकरुन है अरुन नैन,
तरुनी-तरुन-तन तूमत फिरत हैं।
कुज-कुंज केलि कै नवेली, बाल बेलिन सों,
नायक-पवन बन झूमत फिरत हैं।
अन्न कुल, बकुल समीडि, पीड पॉडरनि,
मल्लिकानि मीडि घने घूमत फिरत हैं।
द्रुमन-द्रुमन दल दूमत मधुप 'देव',
सुमन-सुमन मुख चूमत फिरत हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि देव जी ने प्रमुख रूप से शृंगार का वर्णन किया है। बिहारी की भाँति इन्होंने भी इस शृंगार को अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया है। नखशिख वर्णन में इन्होंने सौन्दर्य का निरूपण अच्छे ढंग से किया है। इनका 'जाति-विलास' नायिका भेद के ढग का बहुत मनोरम ग्रन्थ है। इसमे प्रायः सभी जाति व सभी प्रांतो की नायिकाओ का वर्णन किया गया है। 'प्रेम-पचीसी', 'जगदर्शन-पचीसी', 'आत्मदर्शन-पचीसी' और 'तत्वदर्शन-पचीसी' ये चार ग्रन्थ वैराग्य विषयक हैं। इसमें इनकी शान्त रस की कविताएँ है।

जिस प्रकार विहारी को लेकर कई समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखे गये उसी प्रकार देव को लेकर भी खूब आलोचना की गई। हिन्दी संसार में इनके समर्थकों व प्रशंसकों की कमी कभी नहीं रही किन्तु निष्पक्ष दृष्टि से यदि इनके सम्पूर्ण काव्य का अवलोकन किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि इनकी रचना जितनी सदोप है उतनी ही निर्दोष भी है। निस्सन्देह ये अपने युग के उत्कृष्ट कवि थे।

भाषा और शैली—देव जी की भाषा में स्निग्ध-प्रवाह का प्राय अभाव है। अनुप्रासों की ओर रुचि रहने के कारण इन की भाषा में दुरूहता और व्यर्थ की तड़क-भड़क आ गई है। वास्तव में इनकी इस रुचि ने अभिप्रेत भावों तक पहुँचने में बड़ी बाधा डाली है। ये जिन स्थलों पर अपने मनोभावों को पूरी तरह व्यक्त करने में समर्थ हुए हैं वहाँ की भाषा टकसाली, सरस और माधुर्य व प्रसाद गुण से परिपूर्ण है। ऐसे स्थलों पर अर्थ-सौष्ठव भी निखरा हुआ मिलता है। इन्होंने फारसी शब्दों का प्रयोग अधिक किया है किन्तु अपने काव्य में व्यवहृत करते समय उस को देशी साँचे में ढाल लिया है। शब्दों का तोड़-मरोड़ भी इन्होंने खूब किया है। मुहाविरों और लोकोक्तियों का प्रयोग यत्र-तत्र किया है। इन्हें कवित्त की अपेक्षा सवैया लिखने में विशेष सफलता मिली है। भावों और शैली की मौलिकता इनमें बहुत है।

—०—

९—देव

१—शब्दार्थ , तुलसै—शोभा देती है।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि जिनके पैरो मे सुन्दर नूपुर बजा करते हैं, जिन के कटि की किंकिणी मधुर ध्वनि करती है, जिनके श्यामल शरीर में पीताम्बर और वक्षस्थल पर वनमाला सुशोभित होती है, जिनके मस्तक पर मोर-मुकुट शोभा देता है, जिनके नेत्र विशाल और चञ्चल हैं, जिनके मुख की मधुर मुस्कान चन्द्रमा की किरणो के समान (प्रकाशमय) है तथा जो संसार रूपी मन्दिर के सुन्दर दीपक हैं वे व्रजपति श्रीकृष्ण जी हमारी सहायता करें।

टिप्पणी—इस सवैये में देव जी ने भगवान से विनय की है।

२—**शब्दार्थ**—सूनो कै—खाली करके, नदीस—समुद्र; फुरै परी—प्रकट हो गयी, पारावार—समुद्र।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि भादौं की अँधेरी अर्द्धरात्रि के समय विशाल समुद्र की भाँति पूर्ण परब्रह्म की अपार राशि श्रीकृष्ण जी वसुदेव और देवकी के मनोरथो को (अपने मन मे) छिपाये हुए मथुरा के मार्ग से आकर जब माता यशोदा की गोद मे अचानक अवतीर्ण हो गये तो उस समय व्रज की ऐसी शोभा हुई मानों मुनियो की महिमा, दिगीश्वरो की सम्पत्ति तथा

योगीश्वरों की सिद्धि ब्रज की गलियों में बिखेर दी गयी हो अथवा स्वयं लक्ष्मी जी वैकुण्ठ को सूनाकर, विष्णु के ऐश्वर्य को फीका कर तथा नदियों और समुद्रों की उमंग को दूना कर ब्रज में प्रकट हो गयी हो।

टिप्पणी—इस कवित्त में भगवान श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव का मनोरम चित्र उपस्थित किया गया है।

९-शब्दार्थ—धाये फिरौ—दौड़ते फिरते हो; धाये—प्यारे; दुरे—छिपे।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि हे नन्दलाल जी! मैं मन्द-बुद्धि आप को कहाँ खोजूँ और कहाँ आप से भेंट करूँ? (हे प्रभो! आप का कोई निश्चित स्थान नहीं है।) सुना जाता है, आप कभी ब्रज की गलियों में दौड़ते फिरते हैं, कभी गोपियों के साथ रास रचाते हैं, गोपों की भीड़ में नाचते हैं, कभी कालिय नाग का दमन करने के लिए यमुना में कूद पड़ते हैं, कभी (कुरुक्षेत्र में) अर्जुन का रथ हाँकते हैं, कभी अंकुश की भाँति अपने नखों को तीक्ष्ण करके हिरण्यकश्यप के पेट को फाड़ देते हैं, कभी बिना साथी के अकेले ही कुवलयापीड़ हाथी को तीर द्वारा मार डालते हैं, कभी विदुर की भाजी, भीलनी शबरी के बेर और ब्राह्मण सुदामा के चावल चबाते हैं और कभी द्रौपदी के चीर में छिपे दिखायी पड़ते हैं।

टिप्पणी—इस कवित्त में भगवान की लीलाओं का वर्णन किया गया है। इसमें व्याजस्तुति अलंकार है।

१०-शब्दार्थ—महीतल—पृथ्वी मंडल; लहत हौं—पाता हूँ; आठों-जाम—आठों पहर।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि हे रामचन्द्र जी! मैं

आकाश रूपी मन्दिर मे पृथ्वी के आसन पर आसीन करके आपको सम्पूर्ण विश्व के जल से स्नान कराने मे प्रसन्नता मानता हूँ। मै पृथ्वी मण्डल के समस्त फल-फूल, पत्ती और मूल को सुगन्धित द्रव्यो के सहित आप पर चढ़ाना चाहता हूँ। पृथ्वी पर जो अग्नि और धूप है उसका अखण्ड दीपक जलाकर आपकी आरती करना चाहता हूँ और जल तथा स्थल मे उत्पन्न होने वाले समस्त प्रकार के अन्नो का भोग लगाना चाहता हूँ। मैं वायु रूपी चवँर हर समय झलना चाहता हूँ। हे प्रभो! इसके अतिरिक्त मेरी कुछ भी कामना नहीं है। मैं आठो पहर आप की (इसी प्रकार) पूजा करना चाहता हूँ।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त मे देव जी ने प्रभु की विश्व व्यापिनी पूजा के लिए बड़ी ही सुन्दर कल्पना की है।

५–शब्दार्थ—वारि बुन्द—जल की बूँद; अनुकन—परमाणु; निकेत—घर, सुमति—सुन्दर शिक्षा।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि आत्मा ने अपने आप यह अनुभव किया कि परमात्मा की लीला से स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल तीनो सुई के छेद से बाहर निकल सकते हैं, चौदहो लोक एक भूखे भुनगे का भोजन हो सकता है, चींटी के अण्डे जैसे बर्तन में समूचा ब्रह्माण्ड समा सकता है, एक बूँद में सातो समुद्र हिलोरें मार सकते हैं, सृष्टि का स्थूल स्वरूप अपने सूक्ष्म स्वरूप में विलीन हो सकता है और पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और पवन आदि पञ्चतत्व एक परमाणु मे रह सकते हैं तथा नख की कोर या राई में सुमेर पर्वत दिखाई पड़ सकता है।

टिप्पणी—"भगवत्-कृपा से असम्भव बातें सम्भव हो

सकती हैं।" इसी धार्मिक विचार का निरूपण इस कवित्त में हुआ है।

६-शब्दार्थ—जंगम—चलने वाले; भव—संसार; भरि पूरि—समाया हुआ, व्याप्त।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि हे प्रभो! तुम्हीं पंच तत्व (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) हो · तुम्हीं सत्व, रज और तम हो : संसार में जितने चर और अचर हैं वह भी तुम्हीं हो। मैंने जब-जब तुम्हारा रहस्य जानने का प्रयत्न किया तब-तब मुझे यही ज्ञात हुआ कि यह सब तुम्हारी कला का विलास है। सभी तुझ से प्रकट होते हैं और तुझ में ही समा जाते हैं। हे प्रभो! मैं संसार में जहाँ भी देखता हूँ वहाँ तू ही तू दिखायी पड़ता है। तुम सब को संजीवनी बूटी के समान जीवन-दान करते हो और तुम्हीं सबको मारकर धूल में मिला देते हो। तुम सबसे दूर रहते हो और सब में व्याप्त भी रहते हो। (हे प्रभो! तुम्हारी महिमा को भला कौन जान सकता है?)

टिप्पणी—इस कवित्त में अद्वैतवाद के सिद्धांत की व्याख्या की गयी है।

७-शब्दार्थ—गूढ़गति—मुक्ति; नेह भरे—(१) प्रेम भरे (२) तेल भरे; अमल जोति—विमल ज्योति।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि ऐ जीव! (व्यर्थ में) मूर्ख क्यों बन रहा है, तू मुक्ति प्राप्त के लिए प्रयत्न क्यों नहीं करता? तू अपने इन्द्रिय रूपी गुप्तचरों को सावधान कर दे और उनके द्वारा कामादि चोर को सरलता से नष्ट कर दे। तू अपने आंतरिक और बाह्य अज्ञानांधकार रूपी वन को

ज्ञान की अग्नि से जला दे। तू अपने स्नेहपूर्ण हृदय मे ज्ञान रूपी दीपक की जो विमल ज्योति जलाये हुए है उसका प्रकाश यत्न से चारो ओर फैला दे। इस समय यदि मोह रूपी मेघ उमड़ घुमड कर आवे तो तू उसकी चिन्ता न कर क्योंकि यह मोह-मेघ स्वत· नष्ट हो जायगा। तेरी आँखो मे माया का जो माडा छाया हुआ है उसे निकाल दे। (इस माया रूपी माड़े के नष्ट हो जाने से तुझे अपना मत-स्वरूप दिखायी पड़ने लगेगा।)

टिप्पणी—इस कवित्त मे कवि ने बताया है कि माया से आच्छादित होने के कारण जीव अपने वास्तविक रूप को नही देख सकता। इसके हटते ही उसे अपना सत्-स्वरूप दिखाई पड़ने लगेगा।

८-शब्दार्थ—ख्याल—खेल ; खाल मे मढ्यौ फिरै—शरीर का आवरण धारण किये हुए है।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि देवता, राक्षस, मनुष्य, नाग, किन्नर, प्रेत, पशु, पक्षी, पहाड़ और अन्य जड़ पदार्थ सभी करोड़ो की सख्या में उस (ब्रह्म) से उत्पन्न होते हैं। ये सभी जीव मायिक त्रिगुण के कारण उत्पन्न होते है। ये काल की प्रेरणा से पांचभौतिक शरीर को धारण करते हैं और फिर नष्ट हो जाते हैं। यह ब्रह्म स्वयं भक्ष्य और भक्षक तथा अदृश्य-दृश्य है। यह आप ही पडित और आप ही मूर्ख बना फिरता है। यह स्वयं ही अस्त्र है, मारने वाला है और मरने वाला है। यह स्वयं पालकी पर चढ़ने वाला है और उसे स्वयं ढोने वाला है।

टिप्पणी—इसमे अद्वैत ब्रह्म का सरस वर्णन किया गया है।

९—शब्दार्थ—लिलाट—मस्तक, भाट—बंदीजन ; कपट-कपाट—कपट के किवाड।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि ऐ जीव! यदि अष्ट-सिद्धियाँ आठों पहर तेरे घर के सामने खड़ी रहती हैं और विधाता ने तेरे मस्तक में नवनिधियों का स्वामी होने को लिखा है, तू महाराजाओ का अधिपति है और तेरा ठाट-बाट और वैभव बहुत है, वन्दीजन अपनी बुद्धि के अनुसार नित्य तेरी कीर्ति का गायन करते हैं और तेरे अधिकार में त्रिलोकी का राज्य भी है तो तू क्यो मलीन और दीन बनकर दर-दर भटक रहा है? तेरी अंतरात्मा से जो (सोऽहं सोऽहं की) ध्वनि निकल रही है उसे तू क्यों नहीं पहचानता? (अच्छा होगा कि) तू अपने हृदय में बन्द किये गये कपट रूपी कपाट को खोल दे (और इस ध्वनि से परिचय करके अपना काम बना ले।)

टिप्पणी—इसमें अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जीव और ब्रह्म की एकता दिखायी गयी है।

१०—शब्दार्थ—हौं ही—मैं ही; स्याम रंग अवलीन की—स्याम रंग के भवँरो की।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि मैं ही ब्रजभूमि हूँ, मुझ में ही वृन्दावन स्थित है और यमुना की श्याम वर्ण की तरंगे व भवँर मुझ में ही तरंगित होती है। यहाँ पर चारों ओर सुन्दर सघन वन दिखलायी पड़ते हैं और कुंजों में भ्रमरो की गुंजार सुनाई पड़ती है। वशीवट के नटनागर श्रीकृष्ण जी रास रचाकर नृत्य करते हैं इस रास में बीन की मधुर ध्वनि में तान और ताल व थाप की भनक भर रही है और बीच-बीच में

गोपियों के चूड़ियो की धीमी-धीमी झनकार भी सुनायी पड़ती है।

टिप्पणी—अध्यात्म की दृष्टि से इस कवित्त मे रास-विलास का हृदयहारी वर्णन किया गया है।

११-शब्दार्थ—खुलायौ—मुक्त हुआ है ; लवारन लोग—मूर्ख लोग।

भावार्थ—पंडितो ने वेद-पुराण पढ़-पढ़कर गवाँर लोगों को अच्छा भुलावा दिया। बताइए, तपस्या करके कौन इन्द्रासन का अधिकारी हुआ और किसने यमराज के बंधन से मुक्ति पायी? इसके अतिरिक्त पृथ्वी से लेकर सुमेरु पर्वत तक के मध्य मे कौन ऐसा प्राणी हुआ जिसने वस्तुत. कुबेर की सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया हो? (मेरी समझ मे) पाप, पुण्य, नरक और स्वर्ग कुछ भी नही है। जो मर जाता है, वह एकदम मर जाता है और उसका पुनर्जन्म नही होता।

टिप्पणी—इस कवित्त मे पुनर्जन्म के सिद्धान्त का खण्डन किया गया है।

१२-शब्दार्थ—मूढ़—मूर्ख ; भौन—भवन ; छार परे—राख हुए।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि भला कही मरे हुए व्यक्ति का पुनर्जन्म होता है? पर मूर्ख ऐसा विश्वास करते हैं कि यदि वे इस संसार मे अपने घर की सारी सम्पति दान कर देंगे तो वह उन्हे अगले जन्म मे मिलेगी। यह सोचकर वे अपना सर्वस्व लुटा देते है और फिर धन के नष्ट हो जाने पर अपनी करनी पर खिसियाते व पश्चात्ताप करते हैं। ऐसे लोग जब तक जीवित रहते है तब तक हरे कल्पवृक्ष के समान

अपने सुन्दर शरीर को व्रत रहकर और वायु पीकर सुखा देते हैं। ये मूर्ख ऐसे मन्द-बुद्धि हैं कि मृतक का बड़ी ही श्रद्धा के साथ श्राद्ध-कर्म करते हैं।

टिप्पणी—इस सवैये में चार्वाक के 'भस्मी-भूतस्य देहस्य पुनर्जन्म न विद्यते'' की पुष्टि की गयी है।

१ १३–शब्दार्थ—विन से हूँ—नष्ट होने पर भी ; विसेखु—विशेषता ; तापर—तिसपर।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि सभी व्यक्ति स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य के सयोग से ही उत्पन्न हुए हैं और मरने पर सभी भस्म होकर अपनी राख पृथ्वी पर छोड़ जाते हैं। सभी के शरीर का ढाँचा कुम्हार के बर्तन के समान एक ही तरह का होता है। किसी में कुछ विशेषता नहीं होती है तिस पर भी ये पंडितगण स्वयं अपने को ऊँचा बताते हैं और दूसरों को नीचा बताकर उससे अपना पैर पुजाते हैं। अरे ! इन ब्राह्मणों ने ही शूद्रों में अपवित्रता और अपने में पवित्रता का आरोप किया है। इन्होंने वेदों का अट-सट अर्थ करके अंधेर कर दिया है।

टिप्पणी—इसमे वर्ण-व्यवस्था और ऊँच नीच के भेद-भाव को बहुत बुरा कहा गया है।

१४–शब्दार्थ—मूक—गूँगा ; औवट—रद्दी घाट ; रुचि राच्यौ—रुचि लग गयी ।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि मैंने बड़े-बड़े राज-दर्बार में ज्ञान-चर्चा कर यह भली-भाँति देख लिया है कि वहाँ पर स्वामी अंधा और गूँगा होता है, सभा बहिरी होती है और वह अपने राग-रंग मे ही मस्त रहा करती है। ज्ञानी लोग ऐसे स्थानों में पहुँचकर इतना भटक जाते हैं कि उन्हें

घाट-कुघाट कुछ भी नही सूझता है और वे नारकीय कर्मों को अपनाने लग जाते हैं। वहाँ पर उन्हे अपना (ज्ञानी का) भेष नहीं सूझता, यदि उनसे कोई कुछ कहता है तो भी वे उस पर ध्यान नही करते, वे न जाने किस उमंग मे फूले फिरते है और पागल नट की भाँति रात भर ज्ञान चर्चा करने मे मस्त रहा करते हैं।

टिप्पणी—इस सवैये में देव जी ने बताया है कि अनधिकारियो के सामने ज्ञान-चर्चा करने से अपनी प्रतिष्ठा स्वयं घट जाती है और ज्ञान-चर्चा का कुछ भी प्रभाव नही पड़ता है।

१५—**शब्दार्थ**—हाय दई—हाय दैव ; मीच पै—मृत्यु से; मही—पृथ्वी ; अदेव—राक्षस।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि हाय दैव! काल की इस लीला में पड़कर, सभी प्राणी फूल की भाँति फूलकर सदा के लिए कुम्हला गये। मृत्यु ने इस संसार मे किसी को नहीं छोड़ा। जो (प्राणी) उत्पन्न हुए थे वे सभी मिट्टी में मिल गये। कहाँ तक कहूँ, देवता और राक्षस, बली और अशक्त, रूपवान और कुरूप तथा गुणी और गुणहीन सभी मोह की हवस लिए हुय इस ससार से विदा हो गये। जो जहाँ पैदा हुआ था, वही नष्ट हो गया।

टिप्पणी—इस सवैये मे बताया गया है कि काल-चक्र के कारण सभी प्राणियो की एक न एक दिन अवश्य मृत्यु हो जायगी।

१६—**शब्दार्थ**—जिये हृदय की ; गहि आवत नाही—पकड़ मे नही आता।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि यदि कोई मुझ से मेरे हृदय का हाल पूछे तो मैं उससे यही कहूँगा कि मेरे हृदय मे

इतनी पीडा भरी हुई है जिसका अंत नही दिखायी पड़ता। विद्वानो ने ब्रह्म-दर्शन के हेतु जिन मत-मतान्तरों की सृष्टि की है वे सब मिथ्या हैं, इन्हे तो मौन होकर भी नही सहा जा सकता। मेरा मन (लोभ रूपी) नदियो की तरंगो मे फेन होकर वह रहा है. यह अब मेरी पकड़ में नहीं आता। मैं यद्यपि (ब्रह्म और जगत के सम्बन्ध मे) बहुत कुछ कहना चाहता हूँ किन्तु क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता।

टिप्पणी—इस सवैये मे देव जी ब्रह्म और जगत का अनिर्वचनीय सम्बन्ध वर्णन कर रहे हैं।

१७—शब्दार्थ—दीपति—प्रकाशित होता है ; सुधारस बोरी—अमृत से सनी हुई।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि संपत्ति सबको सुख देने वाली है किन्तु सम्पत्ति का सुख दाम्पत्य-प्रेम है जो कि विश्वास पर आधारित है। यह विश्वास भी शुद्ध प्रेम स्वरूप है और यह विशुद्ध प्रेम विवेक तथा स्नेह पूर्ण गीतों में ही प्रकट होता है। ये विचारपूर्ण गीत तभी सफल हैं जब कि इनकी भाषा कोमल और अमृत के समान मधुर हो। यह वाणी प्रधानतया शृंगार रस का वर्णन करती है। इस शृङ्गार के सर्वस्व युगल सरकार राधा-कृष्ण हैं।

टिप्पणी—देव जी ने इस सवैये में राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति को ही काव्य का सर्वस्व माना है।

१८—शब्दार्थ—उदधि—समुद्र ; दधि—दही ; फरश—फर्श . आरसी—दर्पण ; अम्बर—आकाश।

सन्दर्भ—देव जी किसी ग्रीष्म रात्रि का—जिसमें चन्द्रमा तारा गणों के सहित प्रकाशित है, वर्णन कर रहे हैं—

भावार्थ—आकाश का यह श्वेत मन्दिर स्फटिक की शिलाओ से निर्मित हुआ है, इसकी अत्यधिक श्वेतता दधि-सागर की तरंगो की भाँति उमड़ी सी जान पडती है। यह मन्दिर इतनी विचित्रता के साथ बनाया गया है कि बाहर से भीतर तक चाहे जहाँ दृष्टि डालिए, दीवार कही नही दिखायी देती। इस मन्दिर के आँगन का फर्श इतना श्वेत है मानो दूध का फेन चारो ओर फैला हुआ है। इस मन्दिर में कोई स्त्री (चन्द्रमा से तात्पर्य) मल्लिका के मकरद से सुवासित और मोतियो से वेष्टित हो शोभा पा रही है। इसकी झिलमिल ज्योति ताराओं के झिलमिल प्रकाश के समान है। दर्पण जैसे विशाल आकाश में इस नायिका (चंद्र) की उजियाली राधिका के शरीर की आभा के समान प्रतीत होती है और इसका मुख राधिका के प्रतिविम्ब के समान दृष्टिगोचर होता है।

टिप्पणी—ग्रीष्म रात्रि के आकाश का यह बहुत ही सुन्दर वर्णन है।

१६-शब्दार्थ—पौरि—ड्योढी ; गुनयतु हैं—वर्णन करते हैं।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि आज सुनाई पड़ रहा है कि महाराज व्रजेश श्रीकृष्ण जी सुन्दरतापूर्वक सुसज्जित होकर राधिका जी के भवन पधारे हैं तभी तो उनकी ड्योढ़ी तक पाँवड़े बिछे हैं, घर-घर मे धूपबत्ती सुलगायी गयी है जिसका सुगन्धित धुआँ आकाश में छा रहा है। अतर, चन्दन, सुन्दर चोवारस और कपूर आदि की सुगन्धि चारों ओर फैल रही है, हजारो दीपक प्रकाशित होकर सारे अधकार को दूर कर रहे हैं और मधुर-मृदङ्ग अपने राग-रंग की तरंगो में गोपियों के अंग-अंग का सुन्दर गायन कर रहा है।

टिप्पणी—ब्रजराज के शुभागमन का इस कवित्त में कमनीय चित्र चित्रित है।

२०-शब्दार्थ—चितौति—देखती हुई; छीन—मलीन; जामिनि—रात्रि, जोन्ह—चन्द्रिका।

सन्दर्भ—कोई वियोगिनी प्रातःकाल के समय प्राची की लालिमा देखकर कहती है।

भावार्थ—(वियोगिनी) चकई की मनचाही बात पूरी हुई। वह चारों ओर प्रकाश होता देखकर प्रसन्नता से नाच उठी, इस समय चन्द्रमा (जिसने रात्रि भर प्रकाश किया था) की आभा इस प्रकार मलीन हो गयी मानों उसे यमराज ने नष्ट कर दिया हो। मेरे ये वैरी पक्षी भी चहकने लगे हैं। मैं क्या कहूँ, मेरे समस्त शत्रुओं के घर में ऐसी प्रसन्नता छायी हुई है मानों उन्हें बहुत-सा धन मिल गया हो। जान पड़ता है कि इस प्राची राक्षसी ने किसी वियोगिनी का रक्त पान कर अपना मुख लाल किया है।

टिप्पणी—प्राची की लालिमा का इसमें बहुत ही वर्णन किया गया है। भारतेन्दु जी ने इसे अपने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में उद्धृत किया है।

२१-शब्दार्थ—सच्यौ—सचित किया; लोभ भाँड़े—लोभ के बर्तन

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि रोने बिलखने पर गर्भ-यातना से मुक्ति पाया हुआ जीवन रूपी कच्चा दूध लोभ के बर्तन में सचित किया गया फिर काम-वासना की तुष्टि के लिए उसे क्रोध की आँच से तपाया गया। इस जीवन रूपी दूध में जब उफान आया तो क्षमा रूपी जल के शीतल छींटों से शान्त न किये जाने पर इसका अधिकांश बह गया। जो बचा भी,

उसमे गुरु का उपदेश रूपी जावन ठीक से न पड़ने पर अच्छा दही न बन सका। फिर यदि इसको विवेक की मथानी से भली प्रकार मथा नही गया और भुक्ति (भोगविलास) को नही छोड़ा गया तो मक्खन रूपी मुक्ति कहाँ प्राप्त हो सकती है ? इस प्रेम रूपी मक्खन के बिना जीवन का सारा आनन्द धूल मे पड़ जाता है अर्थात् सारा आनन्द किरकिरा हो जाता है।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त में सांगरूपक है। इस रूपक के द्वारा कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि प्रेम के बिना मानव-जीवन सरस नही हो सकता।

२२-शब्दार्थ—साँचै करि कर मे—सत्य को अपने अधिकार मे करके, पाँचन—पच, समाज, ऐठौ—गर्व करो।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि जो अनेक प्रकार से (प्रेमपात्र के दर्शनादि की) अपनी एक मात्र अभिलाषा का पोषण करता है और ससार में प्रेम-पात्र के अतिरिक्त कुछ भी नही देखता है, जो प्रेमपात्र से मन लग जाने पर अपना तन-मन (सर्वस्व) निछावर कर देता है और सत्य को अपने हाथ में करके अपनी रुचि के अनुसार प्रेम करता है, जो समाज की (निन्दा रूपी) आँच से सतप्त होकर भी अपने प्रेम को नही छोड़ता और अपने प्रेम की सत्यता उसी प्रकार प्रमाणित करता है जिस प्रकार सती चिता में जलकर अपने सतीत्व को प्रमाणित करती है। कोई चतुर नीतिज्ञ कहता है कि यो ही (ससार मे लेन-देन का व्यवहार निभाकर और उसे प्रेम की सज्ञा देकर) गर्व न कीजिए प्रत्युत बडे से बड़ा कष्ट सहने के लिए अपने को तैयार कर प्रेम के घर मे घुसने की चेष्टा कीजिए।

टिप्पणी—प्रेम-मार्ग वस्तुतः बहुत विकराल है, इस पर चलना टेढ़ी खीर है।

२३-शब्दार्थ—बादि कै—शास्त्रार्थ करके; लरि मरो—बलिदान हो जाओ।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण के प्रेम में रँगी हुई कोई गोपी अपना उपहास सुनकर कहती है।

भावार्थ—जिन्होंने वेदाध्ययन किया है, उन्हें शास्त्रार्थ करके प्रसिद्धि प्राप्त करनी चाहिए और जिसे लोक मर्यादा का ज्ञान है उसे लोक-मर्यादा की रक्षा के लिए बलिदान हो जाना चाहिए। जिन्होंने तप करना सीखा है उन्हें त्रयताप से तप्त होकर पचाग्नि की साधना करनी चाहिए और इस प्रकार प्रयत्न करते हुए समाधिस्थ हो जाना चाहिए। योग के जानने वाले योगी भी युग-युग जीते रहें। ब्रह्म-ज्योति को जानने वाले इन योगियों को ज्योति को लेकर जल मरना चाहिए। हे नन्दलाल श्रीकृष्ण जी! मैं तो अब आपकी दासी हो चुकी हूँ भले ही संसार के करोड़ो व्यक्ति मेरा उपहास करते रहें। (इसका प्रभाव मुझ पर कुछ भी न पड़ेगा।)

२४-शब्दार्थ—ठाढ़ेई—खड़े रहते हैं; कलंकनि पंकनि—कलङ्क रूपी कीचड़।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि यदि मन रुपी माणिक्य गाँठ से खुलकर गिर जायगा तो फिर किसी प्रकार मिलने का नहीं भले ही सम्पूर्ण विश्व इसके खोजने में व्यस्त हो जाय। इस मायिक जगत् में स्थान स्थान पर (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि) चोर छिपे खड़े हैं, यह इतने निर्दयी हैं कि किसी के रोने और चिल्लाने पर भी तनिक नहीं पसीजते। ऐ जीव! अपना मन उसी को देना चाहिए जो उसके साथ समता का व्यवहार करे और कलंक रूपी कीचड़ को धोकर साफ कर दे

इसलिए तू अपने मन-माणिक्य को बुद्धि-वधू को सौंप दे, वह इसे यत्नपूर्वक सँभाल कर रक्खेगी। तू इस मन-माणिक्य को धोखे में न खो।

टिप्पणी—इस सवैये में बुद्धि द्वारा मन को वश में करने के लिए कहा गया है। बुद्धि-वधू को मन रूपी माणिक्य सौंपकर कवि ने अपनी लोकव्यवहार-दक्षता का परिचय दिया है।

२५-शब्दार्थ—घनश्याम—श्रीकृष्ण रूपी मेघ, भाजी—भाग गयी।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण रूपी मेघ ने आनन्द रूपी जल की घनघोर वृष्टि की जिससे प्रेमनदी पूर्ण रूप से भर गयी और उसमें बाढ़ आ गयी। इस प्रेमनदी के किनारे स्थित मन-मन्दिर अचानक प्रवाह के वेग से ढह गया। फिर क्या था, विषय रूपी बन्धु डूब गये, मद-मोह रूपी पुत्र आदि दब गये। (मन का) मित्र अहङ्कार भी मूर्छित होकर गिर पड़ा और मर गया। आशा और तृष्णा आदि बहू-बेटियाँ मन रूपी मन्दिर से निकल भागीं। माया रूपी स्त्री तो देहरी पर भी खड़ी न रह सकी। इस प्रकार सब के सब नष्ट हो गये, किसी का कहीं पता न चला। अन्त में वन के एकान्त स्थल में जीव ने बसेरा लिया।

टिप्पणी—भगवान के प्रेमानन्द में तल्लीन होने से, विषयादि की वासना नष्ट हो जाती है और जीव प्रेममय हो जाता है। इस बात को देव जी ने सांग-रूपक के सहारे बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है।

२६-शब्दार्थ—तिमिर—अन्धकार ; स्याम रङ्ग—काला रङ्ग।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि अचानक ही स्याही का अथाह समुद्र इतना उमड आया कि उसमें तीनों लोक एक साथ डूब गये। (इस समय प्रिय का जो प्रेमपत्र पढ़ने के लिए मिला) वह जामुन के काले रस के समान जमुना जल से लिखा गया था, इसका कागद काला था और अक्षर भी काले थे। अमावस की अँधेरी रात्रि मे जब कि आँखों मे घोर अन्धकार छाया हुआ था, वह पढ़ने को मिला। ऐसे समय में इन काले अक्षरो को कौन पढ़ सकता था? निदान मेरा चित्त चक्कर खाने लगा और मन हाथ में न रहा। वह मन श्याम रग होकर श्याम-रग मे समा गया।

टिप्पणी—देखिए, देव जी ने श्याम रंग की श्यामता के लिए अपने कल्पना-तुरग को कितना दौड़ाया है! श्याम रग होकर श्याम रग में समा जाना और स्वयं श्याममय हो जाना बड़ी ही रमणीय कल्पना है। इसमें अतिशयोक्ति अलकार है।

२७—शब्दार्थ—रह्यो मुख मूँदि अजौं—अब भी लज्जा कर, अनीत—अन्याय।

भावार्थ—कोई गोपी अपने मन को समझाती है कि ऐ मन! प्रेम रूपी अथाह सागर में पड़कर भी तू गर्व रूपी फेन को क्यों पकड़ रहा है? ऐ बहिरे मन तू क्रोध की तरंगों मे बहा जा रहा है तो बहता चल। तू लाज की जहाज से कूदकर अब क्यों पछता रहा है और गुहार लगा रहा है? ठहर, अब भी तनिक लज्जा कर। हे मन! तू स्वयं ही प्रेम को जोडता और तोड़ता है। इसलिए अब अपने अन्याय को तू ही सहन कर।

टिप्पणी—इसमें रूपक अलंकार है। जो अनीति करे वह अपने फल को भुगते; कितना सच्चा न्याय है।

२८-शब्दार्थ—हारी—थक गयी ; सँभार—रक्षा ; बाधा सिन्धु—आपत्ति के समुद्र।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि ऐ मन! तेरे कहने के अनुसार कार्य करने पर मुझे त्रयताप में जलना पड रहा है, मै तेरे पैर पड़ते-पड़ते (प्रार्थना करते-करते) थक गयी किन्तु फिर भी तू ने (जीव की) रक्षा न की। ऐ कपटी और चचल मन! प्यारे को देखकर तूने तुरन्त पलकें वन्द नही की प्रत्युत उन्हे खुले रखकर तू मुझे वेचैन करता रहा। तूने ऐसे निर्मोही के प्रेम-पाश मे मुझे बाँध दिया जिसके कारण मैं निराश्रित होकर आपत्ति के समुद्र मे डूब गयी। तूने मुझे वहुत दुख दिये हैं इसलिए (प्रतीकार चुकाने के लिए) मैं पलक रूपी किवाड़ में वन्द करके तुझे एक वार मे मूँद मारूँगी।

टिप्पणी—मन ने जीव की कई वार साँसत की है अव अवसर पाने पर इसे ऐसा दण्ड दिया जा रहा है जिससे इसके होश ठिकाने आ जायँगे।

२६-शब्दार्थ—विपै—विपय-वासना ; वारिधि—समुद्र।

भावार्थ—देव जी कहते हैं कि ऐ मन! यदि मै ऐसा जानता कि तू विषयो की संगति करेगा तो मैं तेरा हाथ-पैर तोड़ देता। तेरे ही कारण मैंने आज तक कितने नरेशो की 'नाही' सुनी। यदि तू मुझे बाध्य न करता तो मैं क्यो उनकी ओर अभिलाषा भरी दृष्टि से ताकता और उनका निहोरा मानता। यदि मै तेरे कपट से तनिक भी परिचित होता तो मै तुझ जैसे चंचल को एक डग भी न वढ़ने देता और चेतावनी रूपी चावुक तेरे मुँह पर मारकर तुझे अचल किये रहता। यही नही, मैं डौंडी पीटकर तेरे गले में भारी प्रेम-पत्थर बाँध देता और तुझे श्रीकृष्ण के सुयश समुद्र मे डुवा देता।

टिप्पणी—'आजु लौं...बदन निहोरतो'—में कवि के जीवन पर प्रकाश पडता है। देव जी किसी एक राजा के आश्रय में जीवन-पर्यन्त नहीं रहे। इन्हें एक के पश्चात् दूसरा और फिर तीसरा आश्रयदाता ढूँढ़ना पड़ा था। देव जी को ऐसे अवसरों पर बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। इस कवित्त में उनकी झुँझलाहट दर्शनीय है।

३०—शब्दार्थ—धाय—दौड़कर, उकसीं—निकल सकीं, चितै—देखकर; चेरी—दासी।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि मेरी आँखें मधु-मक्खियों की तरह प्यारे (श्रीकृष्ण) के सौन्दर्य-रस के लोभ में पड गयीं और मेरे मना करने पर भी हठात् उनकी दासी हो गयीं। मेरा इन पर कुछ भी वश न चल सका। ये दौडकर श्रीकृष्ण के सौन्दर्य-रस की धार में निरवलम्ब होकर पैठ गयीं। (लोभ रूपी) अँधेरे के कारण इन्हें कुछ भी न दिखायी पडा और ये उसमें बुरी तरह फँस गयीं। जब अँगड़ाई लेकर इन्होंने निकलने की चेष्टा की तब लुढ़ककर और गहरे जल में चली गयीं और तुरन्त ही इनके पंख डूब गये। इसके पश्चात घेरा डालने पर न तो ये फिर सकीं और न लौटाने का प्रयत्न करने पर लौट ही सकीं।

टिप्पणी—मधु-मक्खियों का यह साँग-रूपक अत्यन्त मनोहर है।

३१—शब्दार्थ—काल—समय, अवधि, रजनी—रात्रि; जनी जिनु—उस समय भी।

भावार्थ—कोई विरहिणी गोपी कहती है कि अवधि रूपी कालिया सर्प के भयंकर विष की ज्वाला के कारण यमुना

का जल रात-दिन जला जा रहा है, इसकी लपट वृक्षों को नष्ट कर अकेली वह रही है। पृथ्वी तथा आकाश के जीव-जन्तु भी जले जा रहे है। मैं इस कालिया के फन की फाँस मे फँस गयी हूँ और अब तक निकलने का प्रयत्न करने पर भी नहीं निकल सकी हूँ। हे व्रजपति श्रीकृष्ण जी! आप शीघ्र ही आकर मेरी रक्षा कीजिए अन्यथा आपके विना मैं अनाथ हो रही हूँ।

टिप्पणी—इस मे भी रूपक अलंकार है। यह विरह-वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक और उत्कृष्ट है।

३२–शब्दार्थ—कंचुकी—चोली , साँवरे लाल—श्रीकृष्ण।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि मैं ने श्रीकृष्ण के प्रेम को शिरोधार्य कर लिया है इसलिए कस्तूरी का विन्दु मैं ने मस्तक पर लगा रक्खा है और चोली में चोवा लगाकर उसे उमग के साथ वक्षस्थल पर धारण कर लिया है। मैं ने मखतूल के आभूषण गूँथ कर उसे पहन रक्खा है। यही नही, मैनेअपनी आँखो को कज्जल युक्त करके उसे काले श्रीकृष्ण के निवास के अनुरूप वना दिया है। इस प्रकार सजधज कर मैं साक्षात श्रृंगार की मूर्ति वन गयी हूँ और उसका आनन्द ले रही हूँ। विश्वास है, श्रृंगार-शिरोमणि श्रीकृष्ण जी मुझे अवश्य नन्दित करेंगे।)

टिप्पणी—इस कवित्त में वासकसज्जा नायिका के श्रृंगार वर्णन किया गया है। इसकी अंतिम पंक्ति अत्यन्त मनो- है।

३३—शब्दार्थ—रैन—रात्रि; इन्दु—चन्द्रमा, दिनेस—सूर्य; जुन्हाई—चन्द्रिका ; ऊत—कम।

सन्दर्भ—कोई विरहिणी गोपी भ्रमवश शरत् काल की रात्रि को ग्रीष्म काल का दिन समझकर अपनी सखी से कहती है—

भावार्थ—हे सखी! देखो, रात्रि दिन है, चन्द्रमा सूर्य हैं और चन्द्रिका विष के समान दाहक घोर धूप है। पुष्पों की शैया तथा सुगन्धित रेशमी वस्त्र मेरे शरीर में शूल की भाँति चुभ रहे हैं और रुई लपेटी आग के समान चुपके से ये मेरे शरीर को जला दे रहे हैं। भूमि की बाहरी और भीतरी हरियाली भी न्यून होती जा रही है। (ग्रीष्म काल के इन लक्षणों के स्पष्ट प्रतीत होने पर भी) लोग इसे शरत् ऋतु का आरम्भ बता रहे हैं। बता, क्या मैं ही भ्रम में पड़ गयी हूँ या सभी भूल में पड़े हुए हैं।

टिप्पणी—विरहिणी की सम्मति में शरत् ऋतु को ग्रीष्म ऋतु कहा जाना चाहिए। इस सवैये के पूर्वार्द्ध में अपह्नुति और उत्तरार्द्ध में भ्रम अलंकार है।

३४—शब्दार्थ—बसन—वस्त्र; जामिनि—रात्रि।

भावार्थ—कोई दूती कहती है कि उस वियोगिनी के नेत्रों की बरौनियाँ बाघम्बर के समान हैं और दोनों पलकें गूदड़ी के समान हैं। विरहिणी की आँखों में जो लालिमा छायी हुई है वही इस (जोगिनि) का भगवा वस्त्र है। ये रात-दिन जागती हैं और जल में डूबी रहती हैं। विरहानल का धुआँ सिर तक पहुँच

रहा है, इस धुएँ के कारण आँखे विलख रही हैं। इस योगिनी ने आँसुओ की स्फटिक-माला पहन रक्खी है और (आँखो की) लाल रंग की रेखाओ की सेल्ही पहन रक्खी है। ये योगिनी आँखें सग की चेलियों और सखियों का साथ छोड़कर अब अकेली हो गयी हैं। हे कृष्ण प्यारे! आप यथाशीघ्र दर्शन देकर इन आँखो को अपनी सगिनी बनाकर रखिए क्योकि ये पूर्णरूप से योगिनी के समान हो गयी हैं।

टिप्पणी—इस कवित्त में वियोगिनी की आँखों का करुणोत्पादक चित्र खींचा गया है। इसमें सांग रूपक है।

३५—शब्दार्थ—कत—प्यारे ; बासर—दिन ; त्रिविधि समीर—शीतल, मन्द और सुगन्धि से युक्ति वायु ; दहकन—जलने लगे।

सन्दर्भ—बसन्त ऋतु मे कोई नायिका प्रियतम के आगमन का अनुमान करके शृंगार करती है किन्तु प्रियतम के न आने पर उसे इस प्रकार का सताप होता है—

भावार्थ—प्यारे के बिना बन्सत के दिन काल के समान दुखदायी हो रहे हैं, इस समय की शीतल, मद और सुगन्धि से युक्त वायु तीर की भांति हृदय को वेध रही है। शरीर पर लगे हुए चन्दन और कपूर अत्यन्त तीक्ष्ण भाले के समान दुखदायी हो रहे हैं, कस्तूरी महककर घोर दुख उत्पन्न कर रही है। मुझे फुलेल फाँसी के समान, गुलाब का इत्र तीर की तीक्ष्ण गाँसी के समान और अरगजा गाज के समान लग रहा है। मेरे शरीर पर चोवा का जो लेप लगा हुआ है

वह चहक कर मुझे दुखी बना रहा है। केशर का जल शरीर में आग लगाता है जिससे चीर जलने लगा है और अबीर दहकने लगा है।

टिप्पणी—देखिये, संयोग में आनन्द देने वाली वस्तुएँ वियोग में किस प्रकार दुखदायी हो जाती हैं।

३६—शब्दार्थ—चातक—पपीहा ; दल—पत्ती।

सन्दर्भ—पावस ऋतु में श्रीकृष्ण जी वाटिकाओं में घूमने निकले हैं, उस समय की शोभा का वर्णन कोई गोपी कर रही है।

भावार्थ—हे सखी! वृंदावन की शोभा तृणों और पत्तों की हरियाली से एकदम नवीन हो गयी है, देखो, मेघ की श्यामल घटाएँ घिर रही हैं। इन को देखकर पपीहे और मोर हर्ष-ध्वनि कर रहे हैं और कोकिल चारों ओर कूक रही है। इस समय सुन्दर और हरी लताएँ वायु के झोंको से झुक रही हैं और हहरा रही हैं तथा श्रीकृष्ण जी (पपीहे, मोर और कोयल की ध्वनियों को सुनकर) आनन्दित हो बड़े प्रेम से अचूक प्रभाव रखने वाली रागों का गान कर रहे हैं।

टिप्पणी—इस सवैये का प्रकृति-वर्णन स्वाभाविक है।

३७—शब्दार्थ—कुलटा—दुष्टा ; न्यारी—अलग , टेक—हठ , याहि—इस

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण के प्रेम में मस्त कोई गोपी कहती है—

भावार्थ—लोग मुझे चाहे कुलटा, कुलीना, अकुलीना, गरीविनी, कलंकिनी या दुष्टा भले ही कहे (पर इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं।) मैं .ने लोक-मर्यादा की लीक से अलग हटकर कुमार्ग पर पैर रक्खा है इसलिए नरलोक और परलोक जैसे श्रेष्ठ लोको के व्यवहार की वात क्या जानूँ? मेरा शरीर छूट जाय, मन छूट जाय, गुरुजन छू' जायँ, यहाँ तक कि प्राण छूट जाय तो भी मैं अपने हठ को नही छोड सकती। मैं पीताम्वर और मोर-मुकुट धारण करने वाली वृन्दावन के वनवारी की मूर्ति पर निछावर हूँ।

टिप्पणी—देखिए, इस गोपी की लगन कितनी ऊँची है। वलिहारी !!

७—हरिश्चन्द्र

— :※: —

हरिश्चन्द्र के काव्य की पृष्ठभूमि—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का काव्य-काल रीति काल की समाप्ति और आधुनिक काल के आरम्भ का सन्धिकाल है। रीति काल की समाप्ति होते होते भारत में अंग्रेजी राज्य पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो गया था। अंग्रेजों के सम्पर्क और उनकी शिक्षा के प्रभाव से भारतवासियों के हृदय में नवीन भावनाओं का सञ्चार होने लगा। हिन्दी साहित्य में अभी तक भक्ति और शृंगार सम्बन्धी रचनाएँ पुरानी वेष-भूषा धारण किये चली आ रही थीं। गद्य साहित्य का तो एकदम अभाव ही था। नयी शिक्षा से प्रभावित होकर धीरे-धीरे कुछ देश-प्रेमी सज्जनों ने इस अभाव की पूर्ति करनी चाही। इनमें सर्वाधिक सफल प्रयास भारतेन्दु जी ने किया। संवत् १९२२ में जब इन्होंने जगन्नाथपुरी की यात्रा की तो इन्हें बंग भाषा में नये ढंग के नाटक, निबन्ध और उपन्यास आदि दिखायी पड़े। हिन्दी में ऐसे नवीन साहित्य का अभाव उन्हें खटका। फिर तो सं० १९२५ में इन्होंने 'विद्या-सुन्दर नाटक' का बंगला से हिन्दी में अनुवाद किया। इसके पश्चात् इन्होंने बहुत से नाटक लिखे जिनमें कुछ तो मौलिक हैं और कुछ अनूदित हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने निबंध, गद्य-काव्य, जीवन-चरित और इतिहास भी लिखे। कहा जाता है कि अपने जीवन के अंतिम दिनों में उपन्यासों को लिखने की ओर भी आकृष्ट हुए थे। यह तो हुई गद्य की बात, पद्य के क्षेत्र

म भी इन्होने बहुत कुछ कार्य किया है किन्तु वह गद्य की अपेक्षा कम है।

वर्ण्य-विषय—ऊपर यह लिखा जा चुका है कि ब्रजभाषा के पद्य-साहित्य में अभी तक भक्ति और शृंगार सम्बन्धी रचनाएँ चली आती थी। भारतेन्दु जी ने इस प्रकार की रचनाओ की उपेक्षा नहीं की प्रत्युत इसीमें अपनी कवित्व-शक्ति का उद्‌घाटन किया। समय के अनुरोध से इन्होंने देशभक्ति, राजभक्ति, अतीत गौरव और समाज-सम्बंधी कविताएँ भी लिखी हैं।

समीक्षा—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी अत्यन्त सरस और भावुक कवि थे। इनके शृंगार रस के कवित्त और सवैये इतने रसीले और मर्मस्पर्शी होते थे कि लोगो के हृदय पर बरबस अधिकार जमा लेते थे। इसका कारण यह था कि इन्होने अपने कवित्तों और सवैयो मे उन्ही शब्दों का प्रयोग किया है जो बोलचाल की भाषा मे व्यवहृत होते थे। इन्होंने प्राकृत और अपभ्रंशकाल से चले आते हुए बहुत से पुराने अव्यवहृत शब्दो को एकदम हटा दिया। इन्होंने अपनी काव्य-भाषा को खूब परिमार्जित और जन-साधारण के ग्रहण करने योग्य बना दिया था। इनके कवित्तों और सवैयों का वाक्य-विन्यास अत्यन्त सरल, चुस्त और युक्तिपूर्ण होता था। उदाहरणार्थ इनके दो रसीले सवैयो को देखिए—

यह सग में लागियै डोलैं सदा, बिन देखैं न धीरज आनती हैं।
छिनहूँ जो वियोग परै 'हरिचन्द' तौ, चाल प्रलै की सु ठानती हैं।
बरुनी में फिरैं, न झपैं, उझपैं, पल में न समाइबो जानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना, अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं॥

जानत हौं नहिं हौं जग में, जिहि को सबरे मिलि भाखत हैं सुख।
चौंकत चैन को नाम सुनैं सपनेहुँ न जानत भोगन को रुख॥
ऐनैन सों 'हरिचन्द जू' दूरहिं, बैठनो का लखनो न भलो मुख।
मो दुखिया के न पास रहौ, उड़ि कै न लगै तुमहूँ को कहूँ दुख॥

इन्होंने महात्मा सूरदास आदि कवियों की भाँति पदों की भी रचना की है। ये पद राधा-कृष्ण की प्रेम लीला, विहार और विनय सम्बन्धी हैं। भक्तवर नाभा जी के 'भक्तमाल' के ढंग का 'भक्तमाल' भी लिखा है, इसमें भक्तों के जीवन चरित का गायन छप्पयों में किया गया है। बिहारीलाल जी की सतसई के कतिपय दोहों पर इन्होंने कुन्डलिया भी लगाई है। इनकी इस प्रकार की एक कुण्डलिया देखिए—

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ।
बसत सुचित अंतर तऊ प्रतिबिंबित जग होइ॥
प्रतिबिंबित जग होइ कृष्णमय ही सब सूझै।
यह संयोग वियोग भेद कछु प्रगट न बूझै॥
श्री हरिचन्द न रहत फेर बाकी कछु जोहन।
होत नैन मन एक लखत दरसत जब मोहन॥

भारतेन्दु जी ने जिस प्रकार काव्य की प्राचीन भावनाओं का स्वागत किया है उसी प्रकार अपने समय में उठी हुई देश-की भावनाओं का भी सहृदयता से वर्णन किया है। कविता को इस नयी धारा की ओर मोड़कर इन्होंने अपनी जागरूकता का परिचय दिया है। ऐसी कविताओं में देश-भक्ति सम्बन्धी कविताएँ अधिक हैं। अतीत का गौरव इन्हें सदा अपनी ओर खींचता था और इनके हृदय में वर्तमान के प्रति क्षोभ भरा था। अपने इस क्षोभ का उल्लेख इन्होंने इस प्रकार किया है—

हाय ! वहै भारत-भुवि भारी। सब ही बिध सों भई दुखारी ॥
हाय ! पंचनद, हा पानीपत। अजहुँ रहे तुम धरनि विराजत ॥
हाय चितौर ! निलज तू भारी। अजहुँ खरो भारतहिं मँझारी ॥
तुम मे जल नहिं जमुना गंगा। बढ़हु वेगि किन प्रबल तरंगा ?
बोरहु झट किन मथुरा कासी ? धोवहु यह कलंक को रासी ॥

भारतेन्दु जी के मन में सदा यह भावना बनी रहती थी कि भारत का मस्तक ऊँचा रहे। इनके समय में जब भारतीय सेना ने मिस्र देश पर विजय की तो ये बहुत प्रसन्न और चकित हुए और तुरन्त ही लिख डाला—

फरकि उठीं सबकी भुजा, खरकि उठीं तरवार।
क्यों आपुहिं ऊँचे भए, आर्य मोछ के बार ॥

भारत की गिरती दशा का पश्चाताप इन्हें सदैव रहा। इसलिए कभी-कभी ये दुखित होकर लिखते थे—

कहाँ करुणानिधि केसव सोए ?
जागतनाहिं अनेक जतन करि भारतबासी रोए।

भारतेन्दु जी ने राजभक्तिऔर समाज सुधार सम्बन्धी कविताएँ भी की हैं इनके समय मे काव्य-भाषा के परिवर्तन का प्रश्न भी उठ खड़ा था। इसलिए इन्होंने देश की गति को समझते हुए खड़ी बोली में भी कुछ कविताएँ की थी। इनके सम्पूर्ण साहित्य को देखने से पता चलता है कि ये युग-कवि थे। प्राचीन और नवीन के संधि-स्थल पर जिस प्रकार के साहित्यकार की आवश्यकता होती है, भारतेन्दु जी ठीक उसी प्रकार के थे।

भारतेन्दु जी मे सर्वतोमुखी प्रतिभा विद्यमान थी। इसी प्रतिभा के बल पर ये प्राचीनता और नवीनता दोनो का अपूर्व सामंजस्य कर सके। इन्होंने प्राकृतिक वर्णन मे अपनी

रुचि नहीं दिखाई है। ये वस्तुतः नर-प्रकृति के कवि थे। नदियों, पहाड़ों, झीलों और वन-प्रदेश की प्राकृतिक छटा इनके मन को मुग्ध नहीं कर सकी थी।

भाषा और शैली—भारतेन्दु जी के काव्य की भाषा बोलचाल की चलती हुई व्रजभाषा है। इन्होंने व्रजभाषा को जनसाधारण के निकट लाने का श्लाघनीय प्रयत्न किया था। इन्होंने शब्दों को तोडने-मरोड़ने की प्रथा को एकदम तिलांजलि दी है और पुराने अव्यवहृत शब्दों को भी हटा दिया है इस प्रकार काव्य भाषा में सफाई और चलतापन ला दिया है। इन्होंने सभी ढंग की कविताएँ की हैं। इनका भावों के व्यक्त करने का ढंग अपूर्व था। इन्होंने लोकोक्तियों और मुहाविरों का भी प्रयोग किया है। इनकी भाषा माधुर्य और प्रसाद गुण से ओतप्रोत है। कुछ स्थलों पर ओज के भी दर्शन हो जाते हैं।

७–हरिश्चन्द्र

—::०※०::—

१-शब्दार्थ—नेह—प्रेम ; अथोर—पर्याप्त, अधिक, अपूरव—विचित्र।

सन्दर्भ—हरिश्चन्द्र जी आनन्दघन श्रीकृष्ण की विनय करते हैं—

भावार्थ—प्रेम के नवजल से नित्य परिपूर्ण रहने वाले और (सदा) प्रेम-रस की पर्याप्त वृष्टि करने वाले किसी अपूर्व मेघ (श्रीकृष्ण जी) की जय हो जिसे देख कर मेरा (हरिश्चन्द्र का) मन-मयूर नृत्य करने लगता है।

टिप्पणी—'कोऊ' शब्द से अभिप्राय आनन्दघन श्रीकृष्ण जी से है। इस शब्द को अर्द्ध-स्पष्ट रखने से भाव में सौन्दर्य-वृद्धि हो गयी है।

२-शब्दार्थ—लहि—पाकर ; आस—आशा ; बरन—अक्षर ;

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि जिसको पा चुकने पर हृदय में किसी प्रकार की अभिलाषा शेष नहीं रह जाती, संसार को पवित्र करने वाले दो अक्षरों के इस "प्रेम" की जय हो।

३-शब्दार्थ—मिटै—नष्ट हो जाय ; अविचल—स्थिर।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि चन्द्रमा मिट जाय, सूर्य मिट जाय और जगत की मर्यादा भी नष्ट हो जाय पर मेरा (हरिश्चन्द्र का) दृढ़ और स्थिर प्रेम नहीं मिट सकता।

टिप्पणी—हरिश्चन्द्र जी की जीवनी से विदित होता है कि उन्होंने अपनी इस टेक को आजन्म निवाहा है।

४–शब्दार्थ—मोरौ—मोड़ लो ; तोरौ—तोड़ दो ; छोरौ—छोड़ दो।

भावार्थ—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि सुनो! घर से विमुख हो जाओ, भव-जाल को तोड़ दो और हर प्रकार के साधन (की साधना) को छोड़कर एकमात्र श्रीकृष्ण भगवान का भजन करो।

५–शब्दार्थ—श्रीवल्लभ वल्लभ — श्रीवल्लभाचार्य के उपास्यदेव श्रीकृष्ण।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि (भव-बन्धन से मुक्ति पाने के लिए) अनेक उपाय करना छोड़कर श्रीवल्लभाचार्य के उपास्यदेव श्रीकृष्ण का नाम-स्मरण करो। दीनबन्धु होने की अपनी टेक जानकर वे अवश्य ही (तुम्हें) अपना लेंगे।

टिप्पणी—इस दोहे से इनके वल्लभकुलावलम्बी होने का पता चलता है।

६–शब्दार्थ—महाप्रसाद—तुलसी दल ; श्रीवल्लभ—श्रीकृष्ण।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हे मनुष्यो! श्री जमुना जी का जल पान करो, श्री वृन्दावन धाम में निवास करो, उर में तुलसी रक्खो और कृष्ण का नाम-स्मरण करो।

७–शब्दार्थ—उन्मत्त ह्वै—मतवाला होकर ।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते है कि ऐ जीव ! तू पुलकित और रोमाञ्चित होकर नेत्रों से आँसुओं की धारा वहा दे ! तू प्रेम मे मगन और मतवाला होकर राधिका जी का नाम स्मरण-कर ।

८–शब्दार्थ—दीननि—दीनो , दीनता—गरीबी ।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हे मन ! तू अपने आप यह समझ ले कि सभी गरीबो की गरीबी और सभी पापियो का पाप सिमिट कर मुझ मे आ गया है ।

९–शब्दार्थ—व्रजनाथ—व्रजपति श्रीकृष्ण , भव—ससार-सागर ।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते है कि हे व्रजपति नन्दलाल जी ! आप मेरे प्राणो के स्वामी है तथा दुखियो के दुख को हरने वाले हैं । हे प्रभो आप दौड़कर मुझ डूबते हुए को बाँह पकड़कर उबार ले ।

१०–शब्दार्थ—विहाइ—बीता जा रहा है ।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि सन्तों का सत्सग पाकर मै प्रभु के यश का गायन करता हूँ और प्रभु के प्रेम में मस्त होकर नृत्य करता हूँ । मेरा जन्म इसी प्रकार बीता जा रहा है ।

११–शब्दार्थ—प्रनतारति-भंजन—दुखियो के दुख को नष्ट करने वाले ; चन्द्रवदनी-मनरजन—चन्द्रमुखी गोपियों के चित्त को प्रसन्न करने वाले ।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि वृषभानु के मान्य
जनों मे श्रेष्ठ तथा नद जी को आनन्दित करने वाले श्रीकृष्ण
जी! तुम्हारी जय हो। अत्यन्त दानी तथा यश को भी यश
प्रदान करने वाले यशोदा माता के पुत्र श्रीकृष्ण जी! तुम्हारी
जय हो। दुखियों की आपत्तियो को दूर करने वाले तथा राधिका
जी के प्राण-प्यारे श्रीकृष्ण जी ! तुम्हारी जय हो। चन्द्रमुखी
गोपियों के चित्त को प्रसन्न करने वाले तथा वृन्दावन में चन्द्रमा
के समान प्रकाश करने वाले श्रीकृष्ण जी! तुम्हारी जय हो।
इन्द्रियो के स्वामी, गायों के पालक, गोपो और गोपियो के स्वामी
तथा गोकुल की रक्षा करने वाले हे श्रीकृष्ण जी तुम्हारी जय
हो। संत के कष्ट को हरने वाले, अत्यन्त करुणाशील तथा
गोवर्द्धन पर्वत को धारण करने वाले श्रीकृष्ण जी! तुम्हारी
जय हो।

प्रेम फुलवारी

१—शब्दार्थ—दिसि—तरफ ; निवाह—निर्वाह ;
सुरत—स्मरण : विधि—तरह ।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी भगवान श्रीकृष्ण से आत्मनिवेदन
करते हैं कि हे प्रभो! बहुत हो चुका, अब तो बस कीजिए। हे
करुणानिधि! अपने सुयश की ओर देखकर मेरे साथ यह नयी
चलन न चलाइए। (भाव यह है कि आप का यश पापियो को
मुक्त करने से हुआ है। इस यश की रक्षा का ध्यान रखकर मेरा
भी उद्धार कीजिए।) यदि आप मेरे दोषों की छानबीन करेंगे
तो मेरा उद्धार नहीं होगा। आप गजेन्द्र, अजामिल आदि
पापियों का स्मरण करते हुए मेरे पाप कर्मों को भूल जायँ
हे प्रभो! अब मुझ से (यह विपत्ति) किसी प्रकार नहीं सही
जाती और मैं (इतना विवश हूँ कि) तनिक भी धैर्य नहीं रख

सकना। ऐसी स्थिति में आप तुरत दौड़कर मुझ (हरिश्चन्द्र) को गले से लगा मेरा उद्धार कर दें।

१३–शब्दार्थ—नावँ—नाम ; बनाव—साज, शृङ्गार ; जन—भक्त।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हे प्यारे! क्या इसीका नाम न्याय है? आप खूब रहे कि जो आपको भजता है उसको भव-जल से भागने (मुक्त होने) नहीं देते। अपना भक्त समझकर आप उस (भक्त) की भलाई के कुछ काम किये बिना ही दुख देने लगते हैं। (गुण पर ध्यान देने की अपेक्षा) आपने जो अवगुणों को देखकर अब निर्णय करना आरम्भ किया है, यह नयी रीति अच्छी रही! अंतर्यामी होकर आप ने खूब फैसला किया! आप चोरों को तो नहीं दंड देते प्रत्युत जिसका माल चोरी गया है उसे ही उलटा डाँटते हैं। (भाव यह है कि आप जीवात्मा पर ही अपना अमर्ष व्यक्त करते है और काम, क्रोधादि चोरों को तनिक भी नहीं बरजते।)

टिप्पणी—देखिए, हरिश्चन्द्र जी ने कितनी चतुरता से भगवान् श्रीकृष्ण को उलाहना दिया है।

१४–शब्दार्थ—सहि न जाति—झेली नहीं जाती ; पंछी—पक्षी ; कोउ विधि—किसी प्रकार।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हे प्यारे! अब मुझ से यह दुर्दशा झेली नहीं जाती है। मैं क्या करूँ; कोई सेवा-कार्य मुझसे पूरा नहीं होता। रात-दिन मेरा मन पश्चाताप करता रहता है। जिस प्रकार छोटे से पिंजड़े में बन्द होकर पक्षी तड़-पता है उसी प्रकार इस शरीर रूपी पिंजड़े में पड़े हुए मेरे प्राण ... के लिए व्याकुल हो रहे हैं। मेरा इन पर अब कोई

वश नहीं चल रहा है, ये अत्यन्त व्याकुल हैं और ऐंठ-ऐंठकर पछाड़ खाकर गिरते हैं। हे प्रभो ! अब संकल्प-विकल्प छोड़कर मेरे प्राणों को अपने समीप बुला लीजिए।

टिप्पणी—प्रेम मूर्ति भारतेन्दु जी के प्राणों की छटपटाहट पर भला कौन न करुणा के आँसू बहायेगा। इस पद में उन्होंने अपने हृदय की सम्पूर्ण वेदना प्रभु के सामने प्रकट कर दी है।

√१५—**शब्दार्थ**—पतित-उधारी—पापियों का उद्धार करने वाले, रीझि— प्रसन्न होने की बानि।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि प्रभु (श्रीकृष्ण) की तुरन्त प्रसन्न होने की बानि देखकर मुझे भी इस बात पर विश्वास होता है कि श्रीकृष्ण जी 'पापियों के उद्धारक' हैं। यदि उनका ऐसा स्वभाव न होता तो अहीरों के वंश में जन्म लेना क्यों पसन्द करते, कौस्तुभ मणि को छोड़कर घुँघचियों की माला गले में क्यों धारण करते, रत्न-जटित मुकुट को छोड़कर मोर-पंख (का मुकुट) क्यों धारण करते तथा मेवों का स्वाद भुलाकर करील फल को क्यों अपने फाँड में बाँधते ? प्रभु की ऐसी उलटी रीति देखकर मेरे हृदय में यह आशा होती है कि संसार की निन्दा का पात्र बने हुए मुझ जैसे व्यक्ति को वे दास बनाकर अपना लेंगे।

√१६—**शब्दार्थ**—सान दै राखौ—सान द्वारा तेज कर लो ; तारी—उद्धार कर दिया।

सन्दर्भ—हरिश्चन्द्र जी भगवान् श्रीकृष्ण जी से कहते हैं कि मेरा उद्धार करना कुछ हँसी-खेल नहीं है, इसलिए आप सावधान हो जाइए।

भावार्थ—हे श्री कृष्ण जी ! सजग होइए। अपने मोर-पंखो के मुकुट और उसकी कलँगी को सिर की पगड़ी से खूब कस लीजिए, अपनी अलकावली को भी सँभाल लीजिए। वक्षस्थल पर हिलती हुई अपनी वनमाला को उतार दीजिए और मुरली को भूमि मे रख दीजिए। अपने सुदर्शनचक्र आदि आयुधों को सान देकर खूब पैना कर लीजिए। करके कंकन चक्र चलाते समय कहीं फँस न जायँ, इसलिए इन्हे भी उतार दीजिए, नूपूर को चढाकर ठीक कर लीजिए, कमर की किंकिणी को और कसकर बाँध लीजिए तथा पीताम्बर के पटके से कमर को खूब कस लीजिए। हे बनवारी ! ऐसी ही तैयारी कीजिए क्योंकि इस बार मेरी बारी है। आप अपने इन बाने को ठीक से सँभाल लीजिए क्योंकि मैं उन पापियो मे से नही हूँ जिन्हे आपने आसानी से बंधन मुक्त कर दिया है।

टिप्पणी—इस पद मे माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनो गुण विद्यमान हैं। सूरदास के 'आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।" के समान यह भी अत्यन्त भावपूर्ण है।

१७—शब्दार्थ—जुगति—उपाय , हेर चुकी—देख चुकी , विहरोंगी—भ्रमण करूँगी।

सन्दर्भ—कोई विरहिणी गोपी कह रही है।

भावार्थ—हे प्राणनाथ ! तुमसे मिलने के लिए मैंने क्या-क्या उपाय नही किया पर मेरा इस हेतु किया गया सारा परिश्रम व्यर्थ रहा। विधाता ने मेरे सारे मनोरथो को चौपट कर दिया। मैं सभी दूतियो का मुख देख चुकी हूँ और सभी हृदय की थाह ले चुकी हूँ। सब ओर से निराश होने पर मैंने खूब सोच-विचार कर एक अचूक और नवीन युक्ति निकाली

है। यह युक्ति वह है कि माया के सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों को क्षीणप्राय करके और शरीर का परित्याग करके मन को तुम्हारे चरणों मे लगा दिया जाय। ऐसा करके मैं तुम्हें प्राप्त कर लूँगी और तुम्हारे अधरामृत से छककर निश्शंक घूमूँगी।

टिप्पणी—इसमें प्रेम की पूर्ण पराकाष्ठा दिखायी गयी है।

१८-शब्दार्थ—लगन—प्रेम ; सायक—बाण।

भावार्थ—हे कृष्ण प्यारे ! तुम्हारी सुधि बार-बार क्यों आती है ? जब तुम्हारी याद आती है तो संसार के सारे कार्य छूट जाते हैं और सभी प्रकार के स्वाद फीके जान पड़ते हैं। हे प्यारे ! जब तक तुम्हारी याद नहीं आती है तब तक हम चैतन्य रहते हैं किन्तु तुम्हारी याद आते ही प्रेम के बाण (हृदय में) चुभने लगते हैं। हमें यह निश्चयपूर्वक ज्ञात है कि तुम संसार की समस्त कामनाओं के शत्रु हो। पर बताओ ऐसा होने पर भी लोग क्यों तुम्हारे प्रेम-प्रसंग में लोक-व्यवहार की चर्चा किया करते हैं ? (भाव यह है कि परमार्थ और लोक-व्यवहार दोनों एक साथ नहीं निभ सकते इसलिए लोगों को चाहिए कि या तो वे प्रेमी ही बनें या लोक-व्यवहार में निपुणता ही प्राप्त करें।)

१९-शब्दार्थ—प्रबोधौ—समझाओ, कदली-बन—केले का वन।

भावार्थ—गोपियाँ उद्धव जी से कहती हैं कि हे उद्धव जी ! एक म्यान में दो तलवार कैसे समा सकती हैं ? हमारे जिन नेत्रों में श्रीकृष्ण की रसीली मूर्ति बसी हुई है, उनमें दूसरी वस्तु कैसे रह सकती है ?

जिन (गोपियों) के शरीर और मन में मन-मोहन रम रहे हैं उन्हें (नीरस) ज्ञान क्यों सुहाने लगे ? हे उद्धव जी ! आप चाहे जितनी ज्ञान की बातें कहकर हमें समझायें पर यहाँ पर कोई भी (गोपी) आपकी बात पर विश्वास नहीं कर सकती। भला ऐसा मूर्ख कौन होगा जो अमृत पान करने के पश्चात् इन्द्रायण के कड़वे फल को चखने की लालसा करे। उद्धव जी! यह ब्रज कदली वन के समान है, आप अपने ज्ञान रूपी खड्ग से इस प्रेम रूपी केले के वन को चाहे जितनी बार काटिए, यह बराबर फूलता और फलता रहेगा।

टिप्पणी—इस पद में गोपियों ने अपने प्रेम-मार्ग की पुष्टि बड़ी युक्ति से की है।

२०—शब्दार्थ—प्रतच्छ—प्रत्यक्ष ; विहरौ—भ्रमण करौ ;

सन्दर्भ—कोई विरहिणी गोपी श्रीकृष्ण की याद कर कहती है—

भावार्थ—प्यारे नन्दलाल! तुम एक बार फिर दर्शन दे जाना क्योंकि मुझे इन प्राणों का कुछ भी भरोसा नहीं है, ये तो अब चलने की तैयारी कर रहे हैं। प्यारे! यदि तुम इधर हमारे सामने आने मे कुछ संकोच करते या शरमाते हो तो अपना मुख दूर से ही दिखलाओ। यही तुम से मेरी प्रार्थना है। इसको तुम अपने चित्त में स्वयं विचार करके देखो, ऐसा न हो कि मैं अपने मन की बात मन ही में लिए चली जाऊँ इसलिए ब्रज मे तुम निमत्रण के बहाने ही सही, शीघ्र आओ।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में विरहिणी गोपी ने श्रीकृष्ण-दर्शन की उत्कंठा व्यक्त की है। उसकी व्याकुलता और छटपटा-हट चित्त में करुणा उत्पन्न करती है।

२१-शब्दार्थ—बिगरैल—बिगड़ने वाली ; चवाव—निन्दा।

भावार्थ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी ! मेरी ये आँखें अब बिगरैल हो गयी हैं। ये जब बिगड़ पड़ती हैं तो बिना साँवरे किशोर श्रीकृष्णजी को देखे चैन नहीं लेतीं। श्रीकृष्ण का रूप रस पान करके ये मतवाली बन गयी हैं और अपना पैर डगमगाते हुए रख रही हैं। इन्हें कुल की मर्यादा का कुछ भी ध्यान नहीं है। लोक लज्जा और गुरुजनों के सम्मान का कुछ भी ध्यान न कर ये भगवान् श्रीकृष्ण की रखेली हो गयी हैं। अपनी निन्दा सुनकर ये और भी प्रसन्न होती हैं। इनके मन में किसी प्रकार की मलीनता नहीं आती। ये सबका साथ छोड़कर अब केवल श्रीकृष्ण के रूप के साथ सैर कर रही हैं। (भाव यह है कि श्रीकृष्ण के सौन्दर्य में पग गयी हैं।)

टिप्पणी—गोपियों की बिगड़ी हुई आँखों के सुन्दर करतब इस पद में दिखाये गये हैं।

२२-शब्दार्थ—चीन्हौ—पहिचानो , करहु बखान—वर्णन करो।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि हे प्यारे ! हमारी तुम्हारी जो जान पहिचान थी वह पुरानी पड़ गयी। सयान हो जाने के कारण अब तुम हम क्योंकर पहचानो ? हे सुजान ! हम यह भली भाँति जानती हैं कि तुम अभी प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हुए हो, तुम्हारा प्रेम नया है और तुम से प्रेम करने वाले भी तुम्हारे ही सदृश नववयस्क हैं किन्तु हे प्यारे ! तुम्हीं बता दो कि (बहुत दिनों से प्रेम करती चली आने वाली) हम गोपिकाएँ अब किसका सहारा ढूँढ़ें ?

टिप्पणी—पुरानी जान-पहचान भी कभी-कभी बहुत काम दे जाती है। इस पद मे इसी पुरानी जान-पहचान के बल पर ही गोपियाँ अपना सारा काम निःशुल्क कराने की चिन्ता में हैं।

७२-शब्दार्थ—बरजै—मना करे; जिमि—जिस प्रकार।

भावार्थ—हे सखी! हमारे ये नेत्र बड़े ही उलझने वाले है, यह जब उलझ जाते हैं तो फिर सुलझना जानते ही नही; उस अवस्था मे ये कुछ नही सोचते समझते। हमे कोई ऐसा नही दिखायी देता जो इन नेत्र रूपी मदमस्त हाथियो को वश मे कर ले। हे सखी! इन बैरी नेत्रो के पीछे मुझे लेने के देने पड़ रहे हैं अर्थात् मै घोर आपत्ति में फँस गयी हूँ।

टिप्पणी—इस पद मे 'उरझौंहे नैन" का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है।

७३-शब्दार्थ—पीर—पीड़ा; खोय—नष्ट करके।

भावार्थ—कोई विरहिणी गोपी व्यथित होकर कह रही है कि हृदय की पीड़ा को कोई नहीं जानता। मैं अपने हृदय की बात किससे कहूँ फिर (मेरी बातो को सुनकर) कौन विश्वास करेगा? मै तो अब घर में बैठी हुई रो रही हूँ। मेरे हृदय में प्रेम की जो आग जल रही है, उसे पहचानने वाला यहाँ कोई नही है। सभी लाग अंतर की बातो से अनभिज्ञ है। सभी अपनी ही बात चलाते हैं, मेरी तनिक सुनते भी नहीं, मै इन लोगो को क्या कह कर समझाऊं? मै तो लोक-लज्जा और कुल की मर्यादा सबको खोकर बैठी हुई हूँ। जो भवितव्यता घटित होने वाली है वह हुआ करे किन्तु मेरी तो इसी प्रकार बीतेगी।

टिप्पणी—कितनी मर्मस्पर्शिनी उक्ति है! अतर की पीर

अंतर ही जानता है। कृष्ण-प्रेम मे दिवानी गोपी की बात न तो कोई सुनता है और न कोई उस पर विश्वास ही करता है। ऐसी स्थिति में उक्त गोपी को जैसी झुँझलाहट होती है, वह द्रष्टव्य है। देखिए, इस झुँझलाहट के अन्दर प्रेम की कैसी तरलधार वह रही है!

२५–शब्दार्थ—निरलज—निर्लज्ज; बेशरम; फाट—दरक।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण के ब्रज चले जाने पर सारा ब्रज सूना दिखायी पड़ता है, इस पर कोई विरहिणी-व्रजांगना अपने नेत्र-द्वय की ओर सम्बोधन करते हुए कहती है—

भावार्थ—हाय! व्रज की ऐसी दुखद स्थिति को देखने के लिए मेरे नेत्र-द्वय अभी तक जीवित हैं। मेरे प्राण श्रीकृष्ण से बिछुडने पर भी नहीं निकले, से निर्लज्ज आँखें भी इसी (प्राण की) तरह जी रही हैं। मैं अपनी आँखों से व्रज के इन निकुंजो को पहले की तरह हरा देख रही हूँ। तोते और कोयल आदि भी वही दिखायी पड़ते हैं किन्तु बिना श्रीकृष्ण के मेरी सेज सूनी दिखाई पड़ती है। पहले मैं संध्या समय नित्य गोचारण से लौटते हुए श्रीकृष्ण का दर्शन अटारी पर चढ़कर किया करती थी। मेरे सामने आज भी वही झरोखा है वही अटारी है, वही गली है और वही सायंकाल की वेला है किन्तु वंशी बजाता हुआ कन्हैया कहीं से आता नहीं दिखायी पड रहा है। अब भी वही व्रज है, वही गायें हैं और वही गोप हैं किन्तु श्रीकृष्ण बिना सब व्याकुल होकर और अनाथ बनकर तितर-बितर हो रहे हैं। हाय! नन्द के भवन को सूना देखकर हम सबका हृदय दरक क्यों नहीं गया। हे व्रजवासियों! जल्दी से उठकर दौड पड़ो और श्रीकृष्ण को व्रज-मार्ग की ओर लौटा लो।

टिप्पणी—इसमें स्मरण अलंकार है। वियोगिनी गोपी का विलाप करुणोत्पादक है। समस्त पद माधुर्य और प्रसाद गुण से परिपूर्ण हैं।

२६—शब्दार्थ—बिगरी—कुमार्गगामिनी।

सन्दर्भ—कोई वियोगिनी गोपी श्रीकृष्ण के प्रति कहती है—

भावार्थ—हे प्रियतम! हमारे ये प्राण संसार के समस्त प्राणियों को नीचा दिखाकर, सभी स्थानों पर भटकना छोड़कर तथा तुम्हारे साथ एक होकर विहार करेंगे। सभी मिलकर चाहे हमारी निन्दा करें, हमें बिगड़ी हुई बताएँ तथा हमारा नाम बदनाम करें किन्तु हम इस सुअवसर को कभी भी हाथ से नहीं जाने देंगी। (भाव यह है कि बदनामी आदि से डरकर मैं आपका संग न छोड़ूँगी।)

टिप्पणी—इस पद में गोपी की तन्मयता दर्शनीय है।

२७—शब्दार्थ—खीजै—प्रसन्न हों, कलाम—बात।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि पता नहीं, प्रभु जप-तप, ज्ञान-ध्यान आदि किस कर्म के करने पर खीझकर प्रसन्न हो। वेदों और पुराणों में भी उनके वास्तविक मर्म का प्रतिपादन नहीं हो सका है। इनमें कुछ का कुछ लिखा हुआ है। यदि हम वेदों और शास्त्रों में लिखित इस बात पर विश्वास कर लें कि जप-तप और दान-पुण्य आदि करने से मुक्ति प्राप्त होती है तो फिर बताओ गणिका ने कौन-सा जप-तप किया था जिसके कारण उसकी मुक्ति हो गयी अथवा गिद्ध जटायु ने कौन सा दान-पुण्य किया था (जिसके कारण भगवान् राम ने उसकी क्रिया अपने हाथों की?) इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि जपी-तपी तथा ज्ञानी

भगवान के दरबार से दूर ही रहते हैं इन्हें वहाँ पर स्थान नहीं मिलता। ये धृष्ट ज्ञानी लोग जो कि लोक और वेद दोनों द्वारा निन्दित हैं, व्यर्थ ही समाज में जा जा कर विवाद किया करते हैं। भगवान् की गति कहीं सीधी है, कहीं उलटी है और कहीं पर तो इन दोनों से भी विचित्र है। इन्होंने अब मनमानी घर जानी करना आरम्भ कर दिया है इसलिए इनके मन की बातें कौन जान सकता है।

टिप्पणी—भावोत्कृष्टता की दृष्टि से यह पद उत्तम है। 'मन की रीति निकारी' कहकर कवि ने वेद और पुराणादि के दोषों—वेद पुरान भेद नहिं पायो—का मार्जन कर दिया है।

२८—शब्दार्थ—लाल—प्यारे, लाल रंग ; मिसकै—बहाना करके, विदित—प्रकट।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि ऐ प्यारी राधिके! तू लाल के रंग में (प्यारे कृष्ण के अनुराग में) रँगी हुई प्रतीत होती है तभी तो तुमने इसी बहाने से लाल रंग की सारी पहननी आरम्भ कर दी है। तेरे हाथ-पैर और अधर लाल हैं, सिर पर लाल तिलक सुशोभित हो रहा है यही नहीं तेरे नेत्रों के कोरों में लाल लाल रेखाओं के रूप में लालविहारी झलक रहे हैं। तू तो गिरधारी के रंग में नखशिख रंग गयी है अथवा नखशिख गिरधारी हो गयी है। इसी कारण तुझे अपने शरीर की थोड़ी-सी भी सुधि नहीं है। तेरा यह प्रेम अब तो संसार में प्रकट हो गया है। (व्यर्थ में तू क्यों छिपाती है?)

टिप्पणी—देखिए, लाड़ली राधिका में लाल की लाली दिखाने में कवि ने कैसा कमाल कर दिखाया है।

२९—शब्दार्थ—टरौ—हटो ; निवसौ—निवास करो, राजो—सुशोभित होओ।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि सौभाग्यवती राधिका जी ! आप अब क्षण भर के लिये भी मेरी आँखों से ओझल न हों प्रत्युत् पुतली होकर मेरी आँखो मे ऐसा रूप धारण कर निवास करें कि आपके शरीर मे नीले रग की साड़ी हो, कानो में कर्णफूल हो, सिर में सिन्दूर हो, मुख मे पान हो, नेत्रो मे कज्जल लगा हुआ हो, मुख में मन को मोहित करने वाली मधुर मुस्कान हो तथा चेहरे से भोलापन प्रकट होता हो। इस प्रकार आप सदैव वृन्दावन मे सुशोभित होवें तथा ब्रजभूमि में सुख-पूर्वक निवास करें और आप घनश्याम का वेश धारण कर प्रेमियो के ऊपर प्रेमामृत की वृष्टि करें। हमारे प्राण जब तक इस शरीर में रहें तब तक आप की इस सुन्दरमूर्ति के अतिरिक्त उन्हें और कुछ भी देखने को न मिले। हमारी अतिम श्वास के रहते हुए आप प्रेम की इस रीति का निर्वाह करें।

३०—**शब्दार्थ**—सुहाग—सौभाग्य ; तुव—तुम्हारे।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हे राधिके ! तुम्हारे सौभाग्य की छाया से ही समस्त ससार सौभाग्यशाली हुआ और तेरी अनुराग-छटा को देखकर ही भगवान् सृष्टि-रचना में तल्लीन हो गये। तुम्हारी लीला के कारण ही जीव का सत्-चित स्वरूप पृथक हुआ। तुम से विलग होने के पश्चात् फिर तुम्हारे चरण-कमलो के सान्निध्य से जीव परमानन्द को प्राप्त करता है।

टिप्पणी—उपर्युक्त पद राधिका जी के विषय में लिखा गया है। कवि ने इस मे राधिका जी की आनन्द-विधायिनी कला को सृष्टि-रचना का कारण माना है।

३१—**शब्दार्थ**—याको—इसको , जाननिहारी—जानने वाली।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि प्रेम की रीति बहुत विचित्र है। यह लोक और वेद दोनो से अलग है और केवल प्रमियो को ही प्यारी है। इसके रहस्य को विरले ही जान सकते हैं, दूसरा कौन जान और समझ सकता है। श्रीकृष्ण जी जिस प्रेम से सम्बन्धित हैं, उसे अनुभव से ही देखा जा सकता है।

३२–शब्दार्थ—वेनी—चोटी ; जुगुल-कृपा—राधाकृष्ण की कृपा।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि ऐ मन! तू नित्य प्रति राधाकृष्ण की इस शोभा का ध्यान किया कर जो गौर और श्यामल रूप है तथा इतनी सुन्दर है कि उसका वर्णन ही नही हो सकता। इस युगल मूर्ति में एक के सिर पर मोर मुकुट है तो दूसरी के सिर पर चन्द्रमा के आकार की सुन्दर कलेंगी है ; एक के कान में कुडल है तो दूसरी के कान में कर्णफूल है , एक का कटि-प्रदेश काछनी से कसा है तो दूसरी का सुन्दर सारी से, एक के पैर में नूपुर हैं तो दूसरी के पैरो मे अनवट, त्रिछिया और पान हैं, एक के हाथ मे कंकन हैं तो दूसरी के हाथ में चूडियाँ हैं। दोनों की भुजाओं में वाजूबन्द शोभा दे रहे हैं। एक मूर्ति क मस्तक म केशर का तिलक है और दूसरी क सिर मे सुन्दर सिन्दूर है जो मन को मोहित कर लेता है। एक के मुख पर अलकें छिटकी हुई है और दूसरी के पीठ पर सुन्दर चोटी नागिनि के सदृश्य लहरा रही है। इस युगल मूर्ति के चटकीले पीत और नील वर्ण के वस्त्र अत्यन्त मनोहरता के साथ फहराते हैं। एक मूर्ति के अधरों से वशी की मधुर ध्वनि प्रस्फुटित होती है और दूसरी के अधरों से मृदु-मुस्कान दिखायी पड़ती है। युगल-मूर्ति के नेत्रों में प्रेम भरी चितवन है, यह दया की खानि

ही हैं। युगल सरकार का ऐसा अद्भुत वेष देखकर सभी चकित होते हैं। युगल सरकार की इस रूप-माधुरी का दर्शन बिना उनकी कृपा के किसी को नही हो सकता।

टिप्पणी—हरिश्चन्द्र जी ने युगल-सरकार की पूर्ण झाँकी इस पद में दिखलाई है। किसी अग विशेष की शोभा इसमें छूटने नही पायी है। वर्णन अत्यन्त मनोहर है।

प्रेम प्रलाप

३३—**शब्दार्थ**—नखरा—मटकना, टीकौ—तिलक।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हे कृष्ण! समय-समय पर नखरा करना अच्छा होता है। इधर तो हमारे प्राण तुम्हारे दर्शन बिना छूटे जा रहे हैं और उधर तुम हमारे हृदय के दुख को देखते तक नही मानो विधाता ने इतराने वालों मे तुम्हें सर्वश्रेष्ठ बना दिया हो। हे नाथ! अब हमारे मान को फीका न करो और हृदय में दया-भाव उत्पन्न कर हमारी रक्षार्थ शीघ्र ही दौड़ पड़ो।

टिप्पणी—भारतेन्दु जी का यह व्यंग बड़े मार्के का है।

३४—**शब्दार्थ**—निहारौ—देखो; गुन गननि—गुण का समूह; अबलों—अब तक; बिसराई—भुलाकर; भाखेहूँ—कहनेपर भी।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हे नाथ! तुम अपने को देखो और अपने गुणो पर विचार करो, तुम हमारी ओर न देखो। यदि तुम अब तक अपने गुणो को भूलकर भक्तो के अवगुणों को ही देखते होते तो फिर बताइए, अजामिल जैसे पापियो का उद्धार किस प्रकार होता? प्यारे! अब तक तो तुमने भक्तों के अवगुणों को कभी नहीं देखा फिर अब क्यो हमारे

कहने पर भी तुम यह नई रीति चलाने की ठान रहे हो। हे कान्ह ! तुम्हारे क्षमा और दया आदि गुणों से मेरे पाप अधिक बड़े नहीं हैं इसलिए आप अविलम्ब मेरा उद्धार कर दें।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में प्रभु के क्षमा और दया आदि गुणों को सर्वश्रेष्ठ बतलाकर कवि ने अपने उद्धार की प्रार्थना की है।

६५—शब्दार्थ—हेम—सुवर्ण, नाहक—व्यर्थ; लेहु अपनाई—स्वीकार कर लीजिए।

भावार्थ—भारतेन्दु जी कहते हैं कि लोभादिकों ने व्यर्थ में ही मुझे भ्रम मे डाल दिया। इन्होंने कभी ससार के तथा कभी स्वर्ग के भोगों की ओर लालायित किया। लोहा और सोना अथवा पाप और पुण्य के दोनो पलड़े भले ही बराबर हों पर मुझे तो यही प्रतीत होता है कि परमार्थ और स्वार्थ दोनो एक ही हैं, क्योंकि इनका मूल लोभ है। इनमे केवल नाम का ही अन्तर है। हे कृपानिधि ! इनमें ही भूलकर मैंने तुम्हारे चरण-कमलों को भुला दिया फिर तो तुम्हारे बिना इस संसार में भटकता ही रहा और व्यर्थ ही अपना जीवन खो दिया। मैं हाय-हाय करता हुआ मोह के फन्दे मे पड़ा रहा। मैं ने कभी भी धैर्य नहीं धारण किया। जोरों से जलती हुई ससार की इस अग्नि मे मैंने अपने अच्छे दिनो को जला दिया। हे करुणानिधि केशव ! आप इस जगज्जाल से कृपा कर छुड़ावें और मुझ दीन-हीन दास को तुरन्त अपना लें।

टिप्पणी—परमार्थ मे दूसरे लोक के भोगो को भोगने की लालसा रहती है और स्वार्थ मे इस लोक के भोगो को भोगने की इच्छा रहती है। दोनों ही लोभ पर आधारित हैं इसलिए कवि ने परमार्थ-स्वार्थ मे केवल नाम का ही भेद बतलाया है।

३६—**शब्दार्थ**—अविचल—स्थिर ; दहते—जलावे ।

भावार्थ—हरिचन्द्र जी कहते हैं कि अच्छा होता यदि हम भी कभी सुखपूर्वक अपना जीवन बिताते, संसार के इस जजाल को छोड़कर रात-दिन श्रीकृष्ण के नाम का स्मरण करते, भगवत्लीला के गायन मे सदा मग्न रहते और उसका हृदय में अनुभव कर नेत्रो से प्रेमाश्रु बहाते। उस समय एक घनश्याम के ही विरह मे हमारा सांसरिक दुख तृण के समान जल जाता और मुझे पूर्ण शान्ति मिल जाती।

टिप्पणी—इसमे भारतेन्दु जी ने अपने मनोराज्य की सुन्दर कल्पना किया है।

३७—**शब्दार्थ**—करुनाकर—करुणा करने वाले भगवान श्रीकृष्ण ;अवरेखो—देखो।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते है कि हे करुणाकर प्रभो! आप दया करके शीघ्र ही हमारी सुधि ले। आप मुझ पर अविलम्ब दया करे क्योकि संसार की दावाग्नि की ज्वाला मे नहीं सह सकता। हे नाथ। हमारे अवगुणो को आप स्वप्न में भी न देखें प्रत्युत हे प्यारे। आप अपने गुणो की ओर देखें। हे प्राणनाथ! हम तो सब तरह से हीन, कुटिल, क्रूर और कामी हैं और धन-वानों के चरणों की सदैव गुलामी करते रहते हैं। हम दुष्ट हैं तथा महान पापी है और धर्म तो एक दम जानते ही नहीं हैं। आपको प्रसन्न करने के लिए हम किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करते किन्तु हम अपने को आपके शरण में जाने योग्य समझते हैं। हे प्यारे। हम सब प्रकार से आपके हैं और आप ही तक हमारी पहुँच भी है। हम तो अब सारे प्रयत्न कर हार चुके है, कृपया किसी प्रकार आप हमारी रक्षा करें। आप द्रौपदी, अजामिल तथा गजेन्द्र का स्मरण करके मुझ दीन की रक्षा करें।

९८-शब्दार्थ—निरस—रसहीन ; घिन—घृणा। लौन—नमक ; फाँसैं—फंदा।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हे कृष्ण प्यारे! तुम्हारे बिना संसार में कहीं भी सुख नहीं है। अनेक प्रकार के भोग भोगने की लालसा कर मैं स्थान-स्थान पर भटकता रहा। हे प्यारे! जहाँ पर मेरा मन पहले बहुत लालायित होकर जा लगता है, कुछ दिन बीतने पर वहाँ से (विरक्त होने पर) इस प्रकार हट जाता है कि फिर उलट कर अपने स्थान पर पहुँच जाता है। मैं जिधर देखता हूँ उधर ही स्वार्थ की पुरानी नीरस बातें दिखायी देती है। संसार के इस अत्यन्त मलिन व्यवहार को देखकर मुझे घृणा होती है। हे प्यारे! मैं पहले जिसे हीरा समझता हूँ। बाद में उसकी वास्तविकता कच्चे काँच के रूप में दिखाई देती है। संसार के इस व्यवहार में पीछे पछताना ही हाथ लगता है इस बात को मै पुकार कर कहता हूँ। मैंने सुन्दर चतुर, रसिक और स्नेही जानकर जिन व्यक्तियों से प्रेम किया था बाद म वे सभी पूर्ण रूप से स्वार्थी और कपटी दिखाई पडे। सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति, तुम्हारे बिना फीकी रसोई क सदृश्य है इसीलिए मेरा मन (सब ओर से निराश होकर) जहाज के पक्षी की तरह तुम्हारे चरणो की शरण ग्रहण करता है। हे प्रभो! अपने और पराये सभी लोग यद्यपि मुझसे बहुत प्रेम करते हे किन्तु आश्चर्य है कि उनके द्वारा हमें तनिक भी संतोष नहीं मिलता है। यद्यपि मैं यह भली प्रकार जानता हूं कि तुम्हारे बिना मेरी श्वासें व्यर्थ मे नष्ट हो रही हैं फिर भी मोह की यह कठिन फाँसें मुझे नहीं छोड़ रही हैं।

टिप्पणी—हरिश्चन्द्र जी ने इस पद मे जगत व्यवहार

का सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया है। यह पद उनके विशाल अनुभवो का परिचायक है।

३९—**शब्दार्थ**—वृथा—व्यर्थ मे ही।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि यदि गोसाईं श्री विट्ठलनाथ जी का सत्सग न किया तो अनेक प्रकार के साधनो मे पडकर व्यर्थ भटकने से लाभ ही क्या हुआ? यदि जीव ने गोसाईं जी के प्रेम-तत्व का हृदयगम नही किया तो उसकी सारी रसिकता और चतुराई व्यर्थ है। जीव का कर्मो के कठिन जाल मे पड़ना, विषय-रस के प्राप्ति की चेष्टा करना तथा वेद का मन्थन करना आदि सब व्यर्थ हैं। जो गोसाईं विट्ठलनाथ जी से प्रेम करता है और उनके विना सारे ससार को असत्य मानता है उसे ही पवित्र समझना चाहिए।

टिप्पणी—इस पद मे स्वामी वल्लभाचार्य जी के पुत्र गोसाईं श्रीविट्ठलनाथ जी की स्तुति की गयी है। इससे जान पड़ता है कि कवि वल्लभाचार्य जी की शिष्य-परम्परा में दीक्षित हैं।

४०—**शब्दार्थ**—सिगरो—सारा; सिरान्यो—बीत गया।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हे कृष्ण प्यारे! आप हमारी परीक्षा न लीजिए क्योकि हम आपकी परीक्षा के योग्य नहीं हैं। आप अपने मन में यह समझ लें कि मैं पाप से ही उत्पन्न हुआ हूँ और पाप में ही अपना सारा जीवन व्यतीत कर चुका हूँ। ऐसी स्थिति मे, मैं आपकी न्याय-तुला पर कैसे ठीक ठहर सकता हूँ। हे दयानिधान कृष्ण जी! आप भक्तों के स्वामी, दयालु और संसार की आपत्ति को दूर करने वाले हैं, आप मुझ (हरिश्चन्द्र) को दुखी देखकर मेरा शीघ्र ही उद्धार

टिप्पणी—इस पद में भारतेन्दु जी अपने को इतना बड़ा पापी मान रहे हैं कि न्याय-तुला में चढ़ने का साहस ही नहीं करते। वे निरभिमान होकर प्रभु से अपनी मुक्ति के लिए विनय करते हैं।

वेणु-गीत

४१-**शब्दार्थ**—धनि—धन्य, वेनु धुनि—वंशी की ध्वनि।

सन्दर्भ—वैष्णव भक्तों का विश्वास है कि आनन्दकन्द श्याम का निकुञ्ज-विहार देखने और उनकी मुरली-ध्वनि सुनने के लिए ऋषि गण पशु-पक्षी के रूप में अवतरित हुए थे। इसी भावना को लेकर कोई गोपी अपनी सखी से कहती है।

भावार्थ—हे सखी! भगवान् के माधुर्य रूप की उपासना करने वाले ये मुनिगण धन्य हैं जो कि भगवान् कृष्ण के दर्शन की लालसा से वृन्दावन के पक्षी हुए हैं। ये पक्षी उड-उड़कर डाल के कोमल पत्तों पर मिलकर बैठ जाते हैं और आँखें मूँद कर बड़े शान्त भाव से वंशी-ध्वनि सुनते हैं। ये प्राणनाथ श्रीकृष्ण के मुख से निकली हुई वाणी का अमृत-रस पान किया करते हैं। हे सखी! विधाता की वामता तो देखो कि यह वाणी हमें आज भी दुर्लभ है।

४२-**शब्दार्थ**—गोगन—गायें; वेनु—वंशी, अपूरब—विचित्र; जंगम—चलने वाले।

सन्दर्भ—कोई गोपी अपनी सखी से कहती है—

भावार्थ—हे सखी! यह बड़े आश्चर्य की बात है जब श्रीकृष्ण जी धीरे-धीरे वंशी बजाते हुए बलराम और गोप-बालों के संग में गो-चारण करने जाते हैं तो उनके अपूर्व वशीरव

को सुनकर संसार के प्राणी अपनी गति भूल जाते हैं। वृक्षों को रोमाञ्च हो जाता है, जड़ पदार्थ गतिमान हो जाते हैं तथा गतिशील प्राणी जड़ हो जाते हैं। जब श्रीकृष्ण जी गाय बाँधने की रस्सी कंधे पर रक्खे हुए, पगड़ी (साफा) बँधे माथ को झुकाये हुए, भ्रमर से युक्त वनमाला को गले में धारण किये हुए तथा हाथ में फूलछरी लिए हुए ग्वाल-बालों के संग में गीत गाते और वंशी बजाते हुए वन से लौटते हैं तो उनकी शोभा को देखकर हमारे अङ्ग-अङ्ग में काम की उमङ्ग बढ़ती है।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में गोचारण के लिए वन की ओर जाते तथा वन से लौटते समय का श्रीकृष्ण जी का चित्र भारतेन्दु जी ने बड़ी सावधानी से खींचा है।

होली

४३—शब्दार्थ—व्रज की वाम—व्रज की स्त्रियाँ।

भावार्थ—हे मनमोहन कृष्ण जी! तुम चतुर, सुजान, छबीले तथा व्रजवासियों के प्राण हो। तुम्हारे बिना सभी बहुत व्याकुल रहते हैं। व्रज की स्त्रियाँ अपना धन-धाम छोड़कर वन-वन व्याकुल हो तुम्हें ढूँढ़ती फिरती हैं। हे नन्दलाल प्यारे! जब तुम बाँस की छोटी-सी वंशी (बजाने के लिए) हाथ में लेते हो तो देवांगनाएँ अपने पतियों का साथ छोड़कर वंशी की ध्वनि सुनने के लिए व्याकुल हो दौड़ पड़ती हैं। हे मोहन! तुम्हारी तान देवता, मुनि और मनुष्यों के मन को मोहित करने वाली है। तुम्हारी वंशी की ध्वनि सुनकर यमुना का प्रवाह स्थिर हो जाता है, देवताओं के विमान आकाश में एक ही स्थान पर स्थिर रहते हैं, जड़ चैतन्य हो जाते हैं और चैतन्य जड़ हो जाते हैं। जब इन सबकी ऐसी दशा है, तो हम अबला व्रजांगनाओं की बात ही क्या? तुम्हारी

मुरली की ध्वनि सुनते ही व्रजबालाएँ लज्जा की शंका त्यागकर तुम्हारी ओर दौड पड़ती हैं और तुम्हें घेर लेती हैं। सभी गोकुल गाँव की सुधि भुलाकर तुम्हारे स्वरूप का ध्यान करती हुई तुम में लीन हो जाती हैं। हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि व्रज की स्त्रियाँ धन्य हैं, सभी भक्त-जन उन पर निछावर हैं।

टिप्पणी—इस पद में मुरली का प्रभाव वर्णित है।

√४४-शब्दार्थ—चाकर—सेवक ; बदत न काहू—किसी को गिनता नहीं।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हम महारानी राधिका जी के सेवक हैं। हमारे स्वामी नन्दलाल श्रीकृष्ण जी हैं और स्वामिनी राधिका जी हैं। मैं सदैव निर्भय रहता हूँ ; किसी को कुछ भी नहीं समझता तथा चण्डिका के भी डर से नहीं डरता। मैं युगल-मूर्ति के अनुपम स्वरूप पर सदैव दीवाना रहता हूँ।

√४५-शब्दार्थ—इत सों उत—इधर से उधर।

सन्दर्भ—जिस समय उद्धव जी गोपियों को योग-मार्ग का उपदेश दे रहे थे उस समय एक भ्रमर बाहर से उड़ता हुआ आकर गोपियों के मध्य में मँडराने लगा। बस फिर क्या था, गोपियों ने इसी भौंरे को सम्बोधित करते हुए उद्धव जी की सारी बातों का उत्तर दिया और उन्हें कृष्ण-प्रेम में विभोर कर दिया। इस पद में कोई गोपी भौंरे को सम्बोधित करती हुई कह रही है।

भावार्थ—ऐ भौंरे ! तू तो रस का लोभी है इसलिए तेरा विश्वास ही क्या ? तू अपने ही सुखों का गान करता हुआ मस्त होकर फूलों पर घूमता रहता है। पुष्पों के मधुर-पराग

का पान कर तू उन्मत्त हुआ इधर से उधर फिर रहा है। मैं तेरी कपट की बातो को अच्छी तरह पहचानती हूँ। अब मैं तेरे फदे में नही आ सकती। (भाव यह है कि ऐ उद्धव जी! तुम स्वार्थी हो, तुम्हारा कुछ भी विश्वास नही है। तुम अपने ज्ञान के गुमान में फूले फिरते हो। हम तुम्हारी दाँव-पेंच की बातें अच्छी तरह जानती हैं इसलिए तुम्हारे योग के फन्दे में नही आ सकती।)

४६–शब्दार्थ—छिन हूँ—क्षण भर के लिए भी।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते है कि हे प्यारे प्राणनाथ! सुन्दर मनमोहन!! आप हमारे नेत्रो से क्षण भर के लिए भी अलग न हो। हे घनश्याम! आप गोकुल, गोपों और गोपियो के स्वामी है। हे बलराम जी के भ्राता! आप वृन्दावन के रक्षक तथा व्रज के सर्वस्व हैं। आप सब के मित्र तथा प्राणो से भी प्यारे हैं। हे राधिका के स्वामी तथा यशोदा और नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण जी! आप क्षणभर क लिए भी मेरे नेत्रो से अलग न हों। आप के दर्शन बिना हमारे रोम-रोम में दुख भर जाता है। आप का स्मरण किये बिना संसार की प्रिय वस्तुएँ भी मुझे विष तुल्य प्रतीत होती हैं। केवल आप ही मेरे दुखी जीवन की रक्षा करने वाले है। इसलिए आप क्षण भर के लिए भी मेरे नेत्रो से अलग न हो। हे कन्हैया जी! आप ही मेरे जीवन के आधार हैं, आपके बिना सारा सुख-साज हमें अत्यन्त दुखदायी लगता है। हे मेरे नेत्रो के तारे, हे जीवनधन! आप क्षण भर के लिए भी मेरे नेत्रो के सामने से न हटे। आप के बिना एक क्षण करोडो कल्प के समान लम्बा लगता है और आपके बिना स्वर्ग नरक से भी अधिक दुखदायी हो जाता है। हे बनवारी! आपके संग मे बन घर से भी अधिक सुखदायी हो जाता है। हे गिरिधारी! आप ही

हमारे सर्वस्व हैं। आप हमारे मान की रक्षा करें और क्षण-मात्र के लिए भी मेरे नेत्रों के सामने से न हटें।

टिप्पणी—इस पद में हरिश्चन्द्र जी हर समय अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को निगाहों के सामने रखना चाहते हैं। प्रियतम के सम्मुख रहने पर ही उन्हें पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है इसके विपरीत उन्हें क्षण भर का भी वियोग अत्यन्त असह्य है।

चन्द्रावली

४७-शब्दार्थ—पराये—दूसरे के ; दुरे—छिप जाने पर, वरज्यौ—मना किया।

सन्दर्भ—कन्हैया से आँख लग जाने पर कोई गोपी उन्मत्त बनी फिरती है, वह अपनी सखी से नेत्रों की शिकायत करती है—

भावार्थ—हे सखी! मेरे ये नेत्र बहुत ही दुष्ट हैं। देखो न, जब से ये श्रीकृष्ण के नेत्रों से मिले हैं तब से ये उन्हीं के हो गये हैं। ये सदैव मनमोहन के रूप-रस को पाने की लालच में फिरते रहते हैं और उनके तनिक भी आँख ओट होते ही तलफने लगते हैं। ये ऐसे निगुरे हैं कि मेरी शिक्षा और प्रेम सब को त्याग दिया है। सारे संसार ने इन (नेत्रों) पर अपना क्रोध प्रकट किया और कृष्ण से प्रेम करने के लिए मना किया पर इन्होंने अपना हठ तनिक भी नहीं छोड़ा। ये देखने में तो अमृत से परिपूर्ण कमल-पुष्पों की भाँति प्रतीत होते हैं पर वास्तव में ये विष से बुझे हुए छुरे की भाँति (तीक्ष्ण और घातक) हैं।

टिप्पणी—'विष से बुते छुरे'—कवि ने नेत्रों की तीक्ष्ण घाव करने की शक्ति का अनुमान करके उसकी उपमा 'विष से बुने छुरे' से दी है। इसमें उपमा अलङ्कार है।

४८-शब्दार्थ—करन रही—करना था ; रस की बात—प्रेम की बात।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण के प्रेम से छकी हुई कोई गोपी उनसे वियुक्त हो जाने पर कहती है।

भावार्थ—हे कृष्ण प्यारे ! यदि तुम्हें ऐसा ही (बिछोह) करना था तो फिर तुमने अपने मुख से रस भरी बातें क्यों कीं ? मैंने तो यह समझा था कि जैसी इस समय बीत रही है वैसे ही आगे भी बीतेगी पर विधाता ने मेरे मनोरथ को उलटा कर दिया जिससे हमारी तुम्हारी कुछ भी नहीं निभी। मोहन ! तुम मेरी सुधि भुलाकर अब अन्यत्र रह रहे हो ; तुमने अब कुछ और ही रवैया ग्रहण कर लिया है । (हाय !) मुझ से अब कुछ कहा नहीं जाता कि यह क्या से क्या हो गया।

टिप्पणी—गोपी का यह पश्चात्ताप अत्यन्त मर्मस्पर्शी है।

४९-शब्दार्थ—रूठे—नाराज ; परसौ—छुओ।

सन्दर्भ—कोई गोपी कृष्ण के विषय में कह रही है—

भावार्थ—ऐ मेरे प्यारे झूठे मोहन ! तुम आओ । तुम बड़े कपटी हो और अपनी प्रतिज्ञा से (विमुख होकर) हार चुके हो (फिर भी न जाने क्यों) उलटे मुझसे रूठ रहे हो। तुम्हारा अधरामृत किसी स्त्री ने पान कर जूठा कर दिया है, तुम्हारे अधरों पर उसके रंग लक्षित हो रहे हैं इसलिए व्यर्थ में तुम मेरे अधरों का स्पर्श न करो । मेरे शरीर का स्पर्श करते हुए क्या तुम्हें तनिक भी लज्जा नहीं मालूम होती है ? सचमुच तुम बड़े ही निर्लज्ज हो ।

५०-भावार्थ—लौं—तक , नेह-नगर—प्रेम नगर।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि प्रेम की जोगिनि

आयी हुई है। उसके विशाल नेत्र कानों को छू रहे हैं उसकी चितवन में मद को अलसान बनी हुई है। वह प्रीति की रीति को जानने वाली और रसीली है तथा प्रेमियों के मन को भाने वाली है। यह प्रेम की जोगिनी प्रेम-नगर में अलख जगाती है और विरह की बधाई गाती है।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में प्रेम की जोगनी का वर्णन अत्यन्त उत्तम है।

५१—शब्दार्थ—मनभाई—मन को अच्छी लगी।

भावार्थ—इस जोगिनि के मुख पर ऐसी अलकें लटक रही हैं जो अत्यन्त प्यारी, कारी, घुँघरारी तथा सबके मन को विमोहित करने वाली हैं। गेरुआ रंग के कुर्ते पर बिखरे हुए केश इसकी दूनी शोभा बढ़ाते हैं। यह जोगिनि सचमुच प्रेम की मूर्ति सी प्रतीत होती है। इसे देखकर सबकी आँखें शीतल होती हैं।

टिप्पणी—इसमें जोगिनि को गेरुआ वस्त्र धारण कराकर प्रेम की साक्षात् मूर्ति बना दिया गया है।

प्रेम-माधुरी

५२—शब्दार्थ—जनमाई—पैदा किया।

सन्दर्भ—कोई विरहिणी गोपी विधाता को दोष देते हुए कहती है—

भावार्थ—विधाता ने सारे संसार को छोड़कर वियोगी व्रज वासियों के घर में ही हमें क्यों पैदा किया? हाय दैव! (श्रीकृष्ण का) मिलना तो दूर रहा, उलटे उनके कारण हमें बदनामी सहनी पड़ी। तूने हमें संसार के समस्त सुखों से वञ्चित कर वियोग का

असह्य दुख सहने के लिए जीवित कर रक्खा है। हाय विधाता ! तूने किस वैर क कारण हमे दुख देखने के लिए बनाया है।

५३-शब्दार्थ—पयान समै—विदाई के समय।

सन्दर्भ—विदाई के समय कोई स्त्री अपने पति से कह रही है—

भावार्थ—हे प्यारे ! यदि मैं आपको रोकती हूँ तो अमगल होता है और यदि कहती हूँ कि "प्यारे आप जाइए" तो प्रेम का नाश होता है। यदि मैं यह कहती हूँ कि "आप न जाइए" तो मेरा प्रेम-गर्व प्रकट होता है। यदि मै कुछ न कहकर मौन ग्रहण करती हूँ तो भी प्रेम नष्ट होता है तथा यदि मैं यह कहूँ कि "आपके विना मै जीऊँगी ही नही।" तो इस पर आपको विश्वास ही कैसे होगा। इसलिए हे प्यारे ! आप को विदा करते समय मैं क्या कहूँ, बतला दीजिए ?

टिप्पणी—प्रस्तुत सवैये में बिदाई का अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किया गया है।

५४-शब्दार्थ—हौस—लालसा, हाल—समाचार।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण के वियोग में तड़पती हुई कोई गोपी कहती है—

भावार्थ—मैं प्रियतम श्रीकृष्ण के विना व्याकुल होकर तडप रही हूँ। मेरी दशा को देखकर कोई भी दया तो दिखलावे मैं प्रियतम के रूप-सुधा की प्यासी हूँ उनका सौन्दर्यामृत न पान कर सकने पर मैं अवश्य अपने प्राणों को त्याग दूँगी। कोई मुझ चातकी को घनश्याम का रूप-जल पिलाये और कोई दौड़

कर मेरे प्राणों की रक्षा करे क्योंकि कहीं ऐसा न हो जाय कि मेरे मन की बात मन में ही रह जाय और मेरे प्राण छूट जायँ। कौन जाने प्रियतम मेरे पास आयेंगे या न आयेंगे, इस लिए कोई जाकर उनसे मेरी यह दारुण दशा बताये (जिससे वे शीघ्र आकर मुझे दर्शन दें।)

टिप्पणी—मरण-दशा के समीप पहुँची हुई वियोगिनी गोपी की करुण-पुकार रसिकों के हृदय में सचमुच टीस उत्पन्न करती है।

५५-शब्दार्थ—बेदनि—वेदों में।

सन्दर्भ—भगवान् की रुखाई देखकर कोई भक्त उन्हें उलाहना देता है—

भावार्थ—हे प्रभो! आप दीनदयालु क्यों बने और गरीबों के पास दौड़कर उनसे प्रेम क्यों बढ़ाया? आप वेदों में करुणा-निधि (दया के भण्डार) कहलाये? आपने कृपा कर जिसको एक बार अपना लिया फिर उसके साथ ऐसी रुखाई क्यों की? आपको ऐसा न करना चाहिये हाँ, यदि आप का ऐसा स्वभाव पहले से ही था तो फिर आपको 'गरीबनेवाज' (गरीबों पर कृपा करने वाले) के नाम से न प्रसिद्ध होना चाहिए था।

टिप्पणी—यह उपालम्भ अत्यन्त मनोहर और युक्ति-पूर्ण है।

५६-शब्दार्थ—आनतीं हैं—लातीं हैं; पल मे—पलक में।

सन्दर्भ—कोई वियोगिनी गोपी अपनी दुखिया आँखों के विषय में कहती है—

भावार्थ—मेरी ये आँखें सदैव प्रियतम श्रीकृष्ण के संग मे लगी डोलती हैं, श्रीकृष्ण-दर्शन के बिना इन्हे क्षण भर भी चैन नही मिलता है। यदि कभी उनसे क्षण भर का वियोग हो जाता है तो ये प्रलयकालीन मेघों की भाँति आँसुओं की धारा बहाने लगती हैं। उस समय यह बरौनी के नीचे नाचती रहती हैं, और इन्हे नींद नही आती है। यह पलक के अन्दर बन्द रहना ही नहीं जानतीं प्रत्युत खुल-खुल पड़ती हैं। हे प्रियतम प्यारे! तुम्हे देखे बिना हमारी ये दुखी आँखें नही मानती।

टिप्पणी—देखिए "दुखिया आँखों" की कितनी करुणा-पूर्ण दशा है।

५७-शब्दार्थ—व्यापक—समाया हुआ।

सन्दर्भ—उद्धव जी जब यह कहते हैं कि उस ब्रह्म का जो कि विराट ब्रह्माण्ड मे व्याप्त है, भजन करना चाहिए तो गोपियाँ उत्तर देती हैं—

भावार्थ—हे उद्धव जी! हमे यह भली भाँति मालूम है की ब्रह्म सभी स्थलों में पूर्ण रूपेण व्याप्त है किन्तु हम बिना नन्द-लाल के सदैव व्याकुल रहती हैं इसलिए ज्ञान-चर्चा नही करती। कृपया आप उनसे जाकर यह कह दें कि 'हे प्रियतम प्यारे! तुम्हें देखे बिना हमारी ये दुखिया आँखें नही मानती और इसके अतिरिक्त हम कुछ भी नही जानती।"

टिप्पणी—सच है, प्रियतम को देखने के लिए व्याकुल गोपियों का मन ज्ञान-चर्चा में क्यों लगने लगे? उनकी अभि-लाषा तो श्रीकृष्ण के दर्शन पर ही टिकी है।

५८-शब्दार्थ—आस—आशा ; निरादर—अपमान ।

भावार्थ—कोई वियोगिनी गोपी कहती है कि प्रियतम से मिलने की मेरी सारी आशाएँ छूट गयी हैं किन्तु अब मेरे प्राण न जाने कौन सा मनोरथ कर रहे हैं। ये अनेक दुखों को सहते हुए अड़े रहते हैं और कहीं भी नहीं भागते। वह सभी से निडर होकर बैठे रहते हैं और अपने अपमान की कुछ भी परवाह नहीं करते। मैं नहीं समझती कि ये पापी प्राण किस मोह से इस शरीर को नहीं छोड़ते।

टिप्पणी—इस सवैये का भाव अनूठा है।

५६-शब्दार्थ—हितू—प्रेमी ; ठौर—स्थान।

भावार्थ—कोई विरहिणी गोपी कहती है कि हाय ! मैं अपनी यह दारुण-दशा किससे कहूँ। मुझे ऐसा कोई भी नहीं दिखायी पड़ता जो मेरी बातों को सुनकर प्रियतम श्रीकृष्ण से सिफारिश करे। यों तो (वचन द्वारा) मेरा हित चाहने वाले करोड़ों व्यक्ति हैं पर कोई भी ऐसा नहीं है जो मेरे प्राणों की रक्षा करे। हे गिरिधारी ! तुम्हारे वासस्थान को हमारी ये आँखें बलात् अश्रु-जल द्वारा डुबा दे रही हैं इसलिए तुम गोवर्द्धन-धारण करने वाली बाव की याद करके दौड़ पड़ो और इन चोरों (आँखों) को अश्रु-वृष्टि करने से रोक दो।

टिप्पणी—भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन पाने के लिए इस गोपी ने बड़ी ही सुन्दर युक्ति खोजी है। अपने वास स्थान को जलमग्न होने से बचाने के लिए गिरिधारी भला क्यों न दौड़कर चले आवेंगे। इसमें स्मरण अलङ्कार है।

६०-शब्दार्थ—अटवे—रुके; हतभागिनी—अभागिनी।

सन्दर्भ—सवेरा होने पर कोई विरहिणी गोपी कहती है—

भावार्थ—पता नही क्यो मेरे ये पापी प्राण इस शरीर को नहीं छोड़ते। विधाता की भी गति नही जानी जाती कि वह हमारे पीछे क्यो हठकर पड़ा हुआ है। हाय! आज की रात्रि भी व्यतीत हो गयी किन्तु पता नही क्यो, प्रियतम के बिना भी ये प्राण नही निकल सके। हाय! यह सवेरा भी कदाचित इसलिए हुआ है जिससे हमारी अभागिनी आँखें नित्य-प्रति दुख देखा करें।

टिप्पणी—प्रियतम के दर्शन की आकुलता इस सवैये में दर्शनीय है।

६१–शब्दार्थ—भाखत—कहते हैं।

सन्दर्भ—कोई दुःखिनी गोपी अपनी दयनीय दशा का वर्णन करती है—

भावार्थ—मैं नहीं जानती कि संसार मे लोग सुख किसे कहते है। मैं चैन (आराम) का नाम सुनते ही चौंक पड़ती हूँ और भोगो की लालसा तो मुझे स्वप्न में भी नही दिखाई पड़ी; अतएव ऐसी दुखिया के पास से दूर हटकर बैठना चाहिये और इसका मुँह तक न देखना चाहिए। हे प्यारे! तुम मुझ दुःखिनी के पास न रहा, ऐसा न हो कि दुख (की बीमारी) उड़कर तुम्हें भी न लग जाय।

टिप्पणी—इस सवैये में दुःख को छूत का रोग बना दिया गया है। भारतेन्दु जी की यह सूझ वस्तुतः बहुत निराली है।

६२–शब्दार्थ—विलोकि—देखकर , पग्यौ—पूर्ण हुआ है।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण के स्वरूप का दर्शन पाकर कोई गोपी अपनी सखी से कहती है—

भावार्थ—हे सखी ! श्रीकृष्ण के सुन्दर रूप को देखकर मेरा मन हाथ से निकल कर बहक गया ; उनकी माधुर्य मूर्ति को देखकर मेरा चित्त अनुराग से परिपूर्ण हो गया। श्रीकृष्ण के दर्शन के पश्चात अब मुझे औरों से कुछ भी काम नहीं। मुझे जो कुछ भी कलङ्क लगना था, लग चुका (अब उस से भयभीत होने की बात ही क्या) हे सखी मेरा मन कृष्ण-रंग में रंग गया है, इस पर अब दूसरा रंग चढ़ने का नहीं है।

टिप्पणी—"रँग दूसरो...रँग्यौ"—सही बात है काले रंग में फिर कोई रंग नहीं चढ़ता। सूरदास ने भी कहा है—"सूर-दास प्रभु कारी कामरि चढ़ै न दूजो रंग।"

६३—शब्दार्थ—सजनी—सखी ; उपाव—उपाय।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण के प्रेम में छकी हुई कोई गोपी अपनी सखी से कहती है—

भावार्थ—हे सखी ! जिस देह और गृह के (लोभ के) कारण प्रेम टूट जाता है उसको धिक्कार है। प्राणप्यारे श्रीकृष्ण के बिना जी को शरीर में रखकर क्या सुख मिलेगा ? अब तो जो प्रसङ्ग छिड़ा है उसको छिड़ने दीजिए ; यह हमारे नित्य के कलह को छुड़ा देगा। हे सखी ! हमें अब लोक-निन्दा रूपी विष पीना ही पड़ेगा, इसके अतिरिक्त मेरे लिए अब कोई उपाय शेष नहीं रह गया है।

टिप्पणी—प्रस्तुत सवैये में प्रियतम के प्रेम के सामने लोक-निन्दा से निर्भय रहने के लिए कहा गया है।

६४—शब्दार्थ—स्रवननि—कानों में , जुल्फैं—अलकें।

सन्दर्भ—कोई गोपी श्रीकृष्ण की वंशी बजाने, अग संचालन करने आदि क्रियाओं पर मुग्ध होकर कहती है—

भावार्थ—हे कृष्ण प्यारे! तुम्हारी वशी-ध्वनि हमारे कानों में हरदम बजती रहती है, तुम्हारी मुख की छवि बलपूर्वक हमारे चित्त को चुरा लेती है; तुम्हारी हँसी (हम पर) ससार को हँसाती है और तुम्हारी मुडने की कला हमारा मन ससार से मुड़ा लेती है। तुम्हारे पीताम्बर की फहरानि तथा तुम्हारा बोलना, चलना और बातें करना वह सब मिलकर हमें धैर्यहीन कर देता है। तुम्हारी जुलफें (अलकें) लोक-लज्जा रूपी ताले को तोड़ देती हैं और तुम्हारे कटाक्ष हमारे प्राणों को अपनी ओर खींच लेते हैं।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त में श्रीकृष्ण की सम्मोहन-शक्ति का वर्णन अनूठे ढंग से किया गया है।

६५—शब्दार्थ—स्रौननि—कानों ; पीतपट—पीताम्बर।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि हे कृष्ण प्यारे! तुम्हारे पैरो के नूपुर की झनकार सदैव मेरे कानो मे गूँजती रहती है और तुम्हारे चरणो मे मेरा मन सदैव रमता रहता है। तुम्हारी वशी की ध्वनि हमारे रोम-रोम को प्रफुल्लित करती है और तुम्हारे मुख की मन्द-मुस्कान हमारे मन को हर लेती है। तुम्हारा चलना, मुड़ना और बतलाना हमारे चित्त में बसा रहता है और तुम्हारी मुख-छवि हमारी आँखो में समाई रहती है। हे प्या ! तू मुझे प्राणों से भी प्यारा है, तेरा पीताम्बर सदैव मेरे हृदय मे फहरता रहता है।

६६—शब्दार्थ—घन—मेघ ; सुरित—सुधि ; बग-पंगति—बगलों की कतार।

सन्दर्भ—कोई वियोगिनी गोपी सावन की रात का वर्णन कर रही है—

भावार्थ—हे प्राणनाथ! तुमने हमारी सुधि क्यों भुला दी जब कि मेघ चारो ओर से घिर रहे हैं। आकाश में बिजली और पृथ्वी पर जुगनू चमक रहे हैं, आकाश में उड़ती हुई बगलो की पंक्ति भी इन्हीं के समान सुन्दर शोभा देने वाली है अतएव ऐसे समय में मैं विरह के दुख से अत्यन्त व्याकुल हूँ और मेरा मन धीरज खो रहा है। हे प्रियतम नंदलाल! (मुझे ऐसी प्रतीत हो रहा है कि) तुम्हारे बिना यह सावन की रात कहीं द्रोपदी की साड़ी तो नहीं हो गयी (जो इतनी लम्बी होती जा रही है!)

टिप्पणी—पावस के समय जब आकाश में मेघ गरजने लगते हैं तो विरही-विरहिणी को दुःख होता है. प्रस्तुत कवित्त म पावस का आगमन होने पर विरहिणी गोपी दुखित हुई है।

६७—**शब्दार्थ**—फूली सी—प्रसन्न हुई सी; नैकु—थोड़ा, निशानी—चिह्न।

भावार्थ—हे सखी! तू कभी प्रसन्न हुई सी, कभी भ्रमित हुई सी, कभी चौंकी सी, कभी उचकी सी और कभी इतनी दुखी सी रहा करती है कि तुझे अपने घर की कुछ भी सुधि नहीं रहती है। तू कभी मोहित हुई सी, कभी ललचाई सी तथा कभी इस प्रकार मन ही मन प्रसन्न होती है कि तू अपने घर की सुधि भूली सी रहती है। तू कभी रिसानी सी रहती है, कभी फूले अङ्ग नहीं समाती और कभी हँस-हँसकर उमङ्ग मे आ प्रेम भरी बातें करती है। (तेरी इस दशा से अभिज्ञ होने के लिए) यदि कोई तुझ से कुछ पूछता है तो तू निरुत्तर हो जाती है और (प्रश्नकर्त्ता पर) क्रोधित हो जाती है। तेरी इन सभी बातों पर

विचार कर हमने यह समझ लिया है कि तुझ में अब प्रेम का उदय हो रहा है।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त में गोपी की प्रेमारम्भ के समय की दशा दिखलाई गई है।

८८-शब्दार्थ—भोई—नीच व्यक्ति।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि ऐ मेरे मन! इस ससार मे जन्म लेकर किसी को किसी से शत्रुता न करनी चाहिए और सब को उसकी इच्छा के अनुसार कार्य करने देना चाहिए। यदि तू ससार भर मे सर्वश्रेष्ठ होना चाहता है तो ब्राह्मण की, क्षत्रियो की, वैश्य की, शूद्र की, डोम की. आचार-विचार से पतित व्यक्ति की, ग्वाल की, अत्यन्त नीच व्यक्ति की, भले की, बुरे की, मुझ जैसे पतित की, थोडे व्यक्तियो की, बहुत व्यक्तियो की अथवा एक या दो व्यक्तियो की ही सही कभी भी निन्दा न करनी चाहिए।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त में परनिन्दा से बचने का उपदेश दिया गया है।

८९-शब्दार्थ—थाकी—शिथिल हो गयी ; रावरे—आपके।

सन्दर्भ—कोई वियोगिनी गोपी कहती है—

भावार्थ—हे प्यारे कन्हैया! आपके विरह के कारण मुझे यह संसार दुखमय प्रतीत होता है और भवितव्यता कुछ और ही दृष्टिगोचर होने लगी है। वियोग के कारण अब

शरीर शिथिल हो गया है, बुद्धि कुण्ठित हो गयी है, शरीर सूखकर झाँझर हो गया है देह पीली पड़ गयी है, बुद्धि बावली हो गयी है, हँसी जाती रही है और सुख के सारे साज अब मुझ से दूर हो रहे हैं। मेरे नेत्र कुम्हिलाने लगे हैं, वाणी भी कण्ठ में अवरुद्ध हो रही है तथा अब प्राण भी मुरझा रहे हैं इसलिए हे प्राणनाथ! आप शीघ्र ही आकर मेरी प्राण रक्षा करें।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त मे विरह का बड़ा ही मार्मिक वर्णन हुआ है। इसका अन्तिम चरण बड़े मार्के का है।

७०—**शब्दार्थ**—लावण्य-धाम—सुन्दरता के भण्डार अर्थात् कामदेव; वंक गति—टेढ़ी चाल; सुअंक—ललाट, मस्तक।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण जी का शरीर सुन्दर, चिकना, सुढार-युक्त और शोभा देने वाला है; उनके अङ्गों की लटक करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर है। नटवर श्रीकृष्ण के चरण-कमल कोमल हैं तथा उनके शरीर की पोर-पोर ऐसी छविमान है कि उसके सामने करोड़ों कामदेव की शोभा फीकी जान पड़ती है। वे लचकती हुई कटि से लेकर शिर पर्यन्त अपने शरीर को तिरछा किये हुए हैं और कोमल हाथों मे वशी लेकर बजा रहे हैं। कानों में कुण्डल और शिर में तिरछे ढङ्ग से मोर पख धारण करने वाले राधिका-रमण बाँकेविहारी श्रीकृष्ण जी की जय हो, जय हो।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त में नटवर श्रीकृष्ण की त्रिभंगी मूर्ति की छवि वर्णित है।

७१-शब्दार्थ—सङ्कट समन—विपत्ति को नष्ट करने वाले; देव मद के दमन जू—देवराज इन्द्र का गर्व चूर्ण करने वाले।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि हे श्रीकृष्ण जी! आप श्री गोपाल भट्ट के सुकृत को पूर्ण करने वाले, भक्तराज के सङ्कट को दूर करने वाले, गजेन्द्र के प्राण की रक्षा करने वाले, द्रौपदी की लाज बचाने वाले, और गोवर्द्धन-धारण कर देवराज इन्द्र के गर्व को चूर्ण करने वाले हैं। दासी कुबरी की दीनता और दुख को हरने वाले आपके सुन्दर चरण, सुख देने वाले और सम्पत्ति के भण्डार हैं। हाथ में मुरली और लाठी धारण करने वाले, शिर में मोर पख के मुकुट को धारण करने वाले तथा राधिका जी के साथ विहार करने वाले आप हमारे दुखों को नष्ट करें।

७२-शब्दार्थ—उनयो—उमड़ा रहता है।

भावार्थ—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहते हैं कि अनुपम प्रेम-रस के भण्डार जिन आनंदघन (श्रीकृष्ण) की कृपा से मैंने प्रेम-मार्ग का वर्णन किया है वे सदैव उनये रहें (मुझ पर कृपा करते रहें।)

७३-शब्दार्थ—भजवि भई—भजने लगीं।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि व्रजांगनाएँ प्रेम की परात्पर अवधि हैं, इन सब ने वंशी की मधुर ध्वनि का श्रवण कर अपनी लज्जा आदि का परित्याग कर दिया और श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगीं।

७४–शब्दार्थ—विवस—लाचार होकर।

भावार्थ—श्रीकृष्ण के प्रेम-पाश में फँसी इन गोपियों ने भले ही आर्योचित मर्यादा का उल्लंघन कर दिया हो पर वास्तव में ये व्रजमोहन श्रीकृष्ण के मन को मोहित करने वाली थीं। इनका प्रेम दिव्य और पूर्ण था।

७५–शब्दार्थ—रमा—लक्ष्मी।

भावार्थ—व्रज-रज के आनन्द को पाने के लिए लक्ष्मी जी क्यों न लालायित हों जब कि यह व्रजभूमि राधाकृष्ण के चरणों से चिह्नित होकर अवर्णनीय शोभा को धारण किये हुए है।

७६–शब्दार्थ—श्री पद-पंकज धूरि—श्रीकृष्ण के चरण-कमल की धूलि।

भावार्थ—एक (प्रभु की) कृपा के कारण मनुष्य को मति-गति और रति प्राप्त होती है किन्तु राधाकृष्ण के चरण कमल की रज इस (भगवत् कृपा) से भी बढ़कर है, इस रज की प्राप्ति हो जाने से मति, गति और रति के मिलने की लालसा फीकी पड़ जाती है।

७७–शब्दार्थ—हारि—थक गये।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि गोपियों के अद्भुत प्रेम को देखकर और समझ कर हम दंग रह गये। वास्तव में गोपियों की तरह प्रेम की सीमा तक कौन पहुँच सकता है। इनके अद्भुत प्रेम को देखकर रसिकवर

श्रीकृष्ण जी ने अपनी हारी मान ली और इनके वशीभूत हो गये।

७८-शब्दार्थ—अतुल—अतुलनीय ; अपूरव—विचित्र

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि गोपी और श्रीकृष्ण का समाज अत्यन्त आनन्दमय है इनका शृंगार अपूर्व है तथा इनके रूप और गुण का माधुर्य अनुपम है।

७९-शब्दार्थ—ब्रज सपदा—ब्रज की सम्पत्ति।

भावार्थ—हरिश्चन्द्र जी कहते हैं कि ब्रज की सम्पत्ति और परम प्रेम, गुण, रूप व रस के स्वरूप नदलाल श्रीकृष्ण की तथा श्री गोपियो की जय हो, जय हो, जय हो।

८—जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

—:—

रत्नाकर के काव्य की पृष्ठभूमि—ब्रजभाषा की पुरानी परिपाटी पर चलने वाले कवियों में बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। पंडित अम्बिकादत्त 'व्यास' और बाबू रामकृष्ण वर्मा के प्रयत्न से काशी में जो 'कवि समाज' चलता था, रत्नाकर जी उसमें बड़े उत्साह से भाग लेते थे और ब्रजभाषा में अपनी समस्या-पूर्तियाँ सुनाते थे। धीरे-धीरे ब्रजभाषा से इनका अनुराग बढ़ता गया और ये उसके अच्छे कवियों में गिने जाने लगे। भारतेन्दु जी की भाँति ये भी ब्रजभाषा की पुरानी परिपाटी के परिपोषक थे। रत्नाकर जी के काव्य-काल में खड़ी बोली की रचनाएँ बड़े वेग से हो रही थीं और ब्रजभाषा को काव्य-भाषा के पद से हटाया जा रहा था किन्तु ब्रजभाषा के अनन्य-भक्त रत्नाकर जी खड़ी बोली की सरगर्मी से तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे बराबर ब्रजभाषा की सेवा में लगे रहे। उन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं अद्‌भुत काव्य कौशल द्वारा ब्रजभाषा को प्रौढ़ काव्य-भाषा का रूप दिया और उसकी मधुरता और सरसता की धाक जमा दी।

वर्ण्य-विषय—रत्नाकर जी ने ब्रजभाषा की परिपाटी के मुक्तक कवियों की भाँति बहुत से फुटकल कवित्त लिखे हैं, ये शृंगार और वीर दोनों रसों में हैं। 'हिंडोला' इनका पहला काव्य-ग्रन्थ है। 'समालोचनादर्श' अंग्रेज़ कवि पोप के 'एसे आन

क्रिटिसिज्म' का अनुवाद है। 'हरिश्चन्द्र' 'गंगावतरण' और 'उद्धव शतक' ये तीनों ग्रन्थ इनके प्रसिद्धि-प्राप्त प्रवन्ध काव्य हैं।

समीक्षा—रत्नाकर जी एक प्रौढ़ साहित्य-मर्मज्ञ कवि थे। इनकी कवि-दृष्टि बहुत व्यापक थी। इनमें सूक्ष्म निरीक्षण, मार्मिक स्थलों की पहचान और स्वतंत्र प्रसङ्गो की उद्भावना करने की विचक्षण शक्ति थी। रोला और कवित्त लिखने मे इन्होने बहुत सफलता पायी है। सवैये भी लिखे हैं पर कवित्तों और रोलो की अपेक्षा कम लिखे हैं। इन्होने अपनी रचना मे जिन भावो को जहाँ पर उठाया है उन्हे बड़ी ही कुशलता से उनके लक्ष्य तक पहुँचाया है। अनुभाव, विभाव और संचारी भावों का चित्रण इतनी बारीकी से किया है कि हिन्दी के बहुत कम कवि वैसा चित्रण करने में सफल हो सके हैं। 'गंगावतरण' काव्य के आरम्भ मे जब इन्होंने भगवती वीणापाणि का ध्यान किया तो हृदय से पहला कवित्त इस प्रकार निकला—

सुमिरत सारदा हुलसि हँसि हंस चढ़ी,
विधि सौं कहति पुनि सोई धुनि ध्याऊँ मैं।
तालतुक हीन अंग-भंग छवि छीन भई,
कविता बिचारी ताहि रुचि रस प्याऊँ मैं।
नन्ददास देव घनआनन्द बिहारी सम,
सुकवि बनावन की तुम्हें सुधि द्याऊँ मैं।
सुनि रतनाकर की रचना रसीली नैंकु,
ढीली परी बीनहिं सुरीली करि ल्याऊँ मैं।

इस गर्वोक्ति के पश्चात् रत्नाकर जी 'गंगावतरण' की रचना करने मे प्रवृत्त हुए। इससे स्पष्ट है कि रत्नाकर जी नन्ददास, देव, घनआनन्द और बिहारी के समान सुकवि बनना चाहते थे। इस लक्ष्य को सामने रखकर रत्नाकर जी ने प्रयत्न भी किया

है, यह उनके 'गंगावतरण' और 'उद्धव शतक' को देखने से स्पष्ट लक्षित होता है। भगवती वीणापाणि ने अपने अनन्य भक्त रत्नाकर की इस अभिलाषा कोबहुत अंशों में पूर्ण कर दिया है। इनकी रचना मे नन्ददास की भाषा जैसा माधुर्य है और कोमल कान्त-पदावली का व्यवहार है। देव की भाँति नये प्रसंगो की उद्भावना करने और उन्हें पूरा उतार देने का हौसला है, आनन्दघन की भाँति लाक्षणिकता और सांकेतिकता है और विहारी की भाँति समासिकता और संक्षिप्तता है। इन चारों कवियो में रत्नाकर जी विहारी और आनन्दघन से विशेष प्रभावित हुए हैं। 'विहारी सतसई' का गम्भीर अनुशील करने के कारण विहारी की भाषा, भाव और शैली की इन पर अद्भुत छाप पड़ गयी। विहारी के समान भाषा की चुस्ती पर अधिक ध्यान देने के कारण इनके कवित्तों की भाषा कुछ जकड़ सी गई है। मुहाविरों का प्रयोग करने में रत्नाकर जी ने अद्भुत कौशल दिखलाया है। उदाहरण एक कवित्त देखिए—

जोगिनि की भोगिनि की बिकल बियोगिनि की,
जग मैं न जागती जमातैं रहि जाइँगी।
कहै रतनाकर न सुख के रहे जो दिन,
तौ ये दुख-द्वन्द की न रातैं रहि जाइँगी॥
प्रेम नेम छाँड़ि ज्ञान-छेम जो बतावत सो,
भीति ही नहीं तौ कहा छातैं रहि जाइँगी।
घातैं रहि जाइँगी न कान्ह की कृपा तैं इती,
ऊधौ कहिबे कौं बस बातैं रहि जाइँगी॥

रत्नाकर जी की प्रारम्भिक कविताएँ परम्परा युक्त हैं, उन में प्रायः प्राचीन कवियों की उक्तियों का पिष्टपेषण है किन्तु इनकी अधिकांश रचनाएँ मार्मिक और प्रभावशालिनी हैं इनमें कवि

की अनुभूति लक्षित होती है। रत्नाकर जी ने शृंगार, वीर और करुण रस में अधिक कविताएँ की है। अन्य रसो का भी थोड़ा बहुत वर्णन किया है किन्तु किसी रस को इन्होंने छोड़ा नही है। रत्नाकर जी के काव्य मे प्राचीन काव्य के अनेक ग्रन्थो का सामजस्य मिलता है, प्राचीन काव्य-भाषा मे जो दोष आ गया था उसको सुधारने का प्रयत्न भी इन्होने किया है। गोस्वामी तुलसीदास जी की भाँति इन्होंने राम, कृष्ण, शिव, गणेश और सरस्वती आदि देवताओ की वन्दना की है। ये सिद्धान्त की दृष्टि से अद्वैत के समर्थक थे—

एक ही साँचौ स्वरूप अनूप है,
खोंचौ यहै मन एक लकीरैं।
त्यौं रतनाकर सेस कौ भेस,
असेस लसै भ्रम की भरी भीरैं।
ता बिनु और जो देखि परै,
थिति ताकी सुनौ औ गुनौ धरि धीरैं।
लोचन द्वैतता दोष लगैं,
यह एक तैं ह्वैं गईं द्वै तसवीरैं।

पर व्यावहारिक दृष्टि से द्वैत भाव को ही स्वीकार करते थे और एतदर्थ प्रेममार्ग को अधिक उपयुक्त समझते थे—

आए हैं कहाँ तै कहाँ, जाइबो कहाँ है फेरि,
काकी खोज माँहि फिरैं जित तित मारे हैं।
कहै रतनाकर कहा है काज तासौं पुनि,
काज और अकाज के विभेद कत न्यारे हैं।
भेद भावना कौ कहा कारन और काज कछू
कारन और काज के कहाँ लगि पसारे हैं।

ये सब प्रपंच गुनैं ज्ञान-मतवारे बैठि,
हम तौ तिहारे प्रेम पान मतवारे हैं।

रत्नाकर जी का प्रकृति वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट हुआ है। 'गंगावतरण' काव्य मे गंगा के पृथ्वी पर आने का जो वर्णन है वह तो मन को मुग्ध कर देता है। 'उद्धव शतक' रत्नाकर जी का अंतिम काव्य है, इस में उनकी प्रौढ़ काव्य-कुशलता दिखायी पड़ती है। इसका वर्ण्य-विषय वही है जो सूरदास और नंददास के भ्रमर गीत का। रत्नाकर जी ने इस पिष्टपेषित विषय को अनूठे ढग से वर्णन कर अपनी विलक्षण काव्य-प्रतिभा दिखायी है। सूरदास एव नन्ददास के भ्रमरगीतो और उनके 'उद्धव शतक' में शैली के अतिरिक्त कोई विशेष मौलिक अन्तर नही है। थोड़ा-सा अन्तर जो दिखाई पड़ता है, वह यह है कि कथा के आरम्भ करने का ढंग इनका पहले के कवियों से भिन्न है। कृष्ण एव गोपियो में तुल्यानुराग की उद्भावना करके भी रत्नाकर जी ने पूर्ववर्ती कवियों से कुछ भिन्नता दिखायी है। शेष सारी बातें प्रायः एक ही प्रकार की हैं। इसमें उद्धव और गोपियों के युक्तिपूर्ण-कथनो का सुन्दर विधान किया गया है, इसके सभी कवित्त बड़े मनोहर हैं।

उदाहरणार्थ एक कवित्त यहाँ उद्धृत किया जाता है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि योगी से वियोगी किसी भी दशा में कम नहीं हैं इसके लिए वे प्रमाण देती हैं—

वे तौ बस बसन रँगावैं मन रंगत ये,
भसम रमावैं वे ये आपु हीं भसम हैं।
साँस-साँस माहिं बहु बासर बितावत वे,
इन कैं प्रतेक साँस जात ज्यौं जनम हैं।
ह्वै कै जग-भुक्ति सौं विरक्ति मुक्ति चाहत वे,
जानैं ये भुक्ति मुक्ति दोऊ विष सम हैं।

करि कै विचार ऊधौ सूधौ मन माँहि लखौ,
जोगी सौं वियोग-भोग-भोगी कहा कम हैं।

इस प्रकार रत्नाकर 'जी की सम्पूर्ण रचनाओ को देखकर यह सरलता से कहा जा सकता है कि वे व्रजभाषा के सिद्धहस्त महाकवि थे।

भाषा और शैली—भारतेन्दु जी ने व्रजभाषा के पुराने और काव्य-परम्परा से उठे हुए बहुत शब्दों को छाँटकर व्रज की काव्य-भाषा को बहुत चलता हुआ रूप दिया था जिस से वह बोलचाल की व्रज-भाषा के निकट आ गयी थी पर रत्नाकर जी ने अपने प्रगाढ़ अध्ययन के बल पर पुराने शब्दो का फिर से प्रयोग किया। इन्होंने लाक्षणिक पदावली का अधिक प्रयोग कर भाषा को बहुत सशक्त बनाया है। इनकी काव्य-भाषा व्याकरण-सम्मत है। इनकी रचना में कहीं-कहीं पूरबी शब्दो का प्रयोग मिलता है। मुहाविरों की कलाबाजी में इन्होंने खूब दिलचस्पी ली है। इनकी भाषा बहुत चुस्त, कसी हुई और परिमार्जित है। इनकी शैली में मौलिकता का विशेष गुण है, सच पूछिए तो इस में 'रत्नाकरत्व' की पूरी छाप लगी हुई है।

—:o:—

८—जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

—:※:—

उद्धव शतक

१—शब्दार्थ—अचैन—अशान्त; कंदली वन—केले का वन; मताए—मतवाले बने; नहान—स्नान; नीकैं—भली-भाँति।

सन्दर्भ—मथुरा प्रवास के दिनों में एक बार श्रीकृष्ण जी अपने मित्र उद्धव के साथ यमुना-स्नान करने गये। वहाँ उन्हें एक कमल पुष्प बहता हुआ मिला। उसको देखते ही उन्हें राधिका के कमलवत् मुख का स्मरण हो आया। इसके पश्चात् उनकी जो दशा हुई उसका वर्णन रत्नाकर जी कर रहे हैं।

भावार्थ—यमुना में बहते हुए कमल पुष्प में राधिका के समान सुन्दर सुगन्धि पाकर श्रकृष्ण जी को राधिका का ध्यान हो आया फिर तो वे तुरन्त ही कदली वन के हाथी की तरह मतवाले हो गये। तत्पश्चात् वे मित्र उद्धव के गले में अपनी बाँह डाले हुए घर की ओर चले। (विरह की व्यग्रता के कारण) रास्ते में उनके पैर डगमगाते हुए बढ़ रहे थे। उस समय वे बुलाने पर न तो कुछ बोलते थे और न अपने नेत्र ही खोलते थे। उस समय उनका चित्त भी बहुत व्याकुल हो रहा था। रत्नाकर जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण जी यमुना नहाने गये थे पर (कुछ ऐसा संयोग हुआ कि) वे प्रेम की नदी में भली-भाँति डुबकी लगाकर लौटे हैं।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त मे श्रीकृष्ण जी के प्रवास-जन्य विरह का प्रारम्भिक रूप दिखाया गया है। इसमे स्मरण, उपमा और रूपक अलंकार है।

२—**शब्दार्थ**—प्रेमपगे—प्रेम से शराबोर; लालन—दुलार करना, सुधाकर-प्रभा—चन्द्रकान्ति, सुख-रासिनि—आनन्द की राशियाँ।

सन्दर्भ—उद्धव जी के प्रश्न करने पर श्रीकृष्ण जी अपनी बेचैनी का कारण बताते हैं—

भावार्थ—उद्धव जी! नन्द और यशोदा के प्रेमपूर्वक पालन करने व प्यार करने की लालच लगाती हुई, चन्द्रमा की कान्ति से युक्त सुन्दर मृगाक्षी गोपियो के गुणो का गायन करती हुई और जमुना के कछारो मे (गोपियो के साथ) आमोद-प्रमोद व झगड़ा करते तथा वन मे घूमने की अभिलाषा को उत्तेजित करती हुई अत्यन्त आनन्द देने वाली व्रजवासियो की सुधि हमे नित्य बुलाने के लिए आती है।

टिप्पणी—इसमें स्मरण अलङ्कार है।

३—**शब्दार्थ**—अघात—तृप्त होते; उबरि—उबलकर; दिननि के फेर—समय के फेर; हेर-फेर—परिवर्तन; हेरि-फेरि—बार-बार, हेरिबौई—देखने के योग्य; फिरबौ करैं—नाचा करते हैं।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण जी व्रज में की गयी लीलाओं का स्मरण कर उद्धव जी से कहते हैं।

भावार्थ—पहले (प्रकृति के) जिस सौन्दर्य-रस का पान करते हुए (मेरे नेत्रो को) तृप्ति नहीं होती थी वही अब उबलकर आँसुओ के रूप में गिर रहा है, जिन (व्रजवासियों)

को देखकर पहले मेरी छाती शीतल होती थी अब उन्ही की याद आने पर (हृदय में) आँवे की तरह जलन हो रही है, जिन कुंजो में, मैं आठो पहर घूमता रहता था वही अब मेरी आँखो मे हर समय घूमा करते हैं। (मैं क्या कहूँ) समय के फेर से कुछ ऐसा परिवर्तन हो गया है कि बार-बार वही दृश्य सामने आता है (जिसको मैं भुलाना चाहता हूँ।)

टिप्पणी—श्रीकृष्ण जी का विरह इस कवित्त में अत्यन्त उत्कृष्ट हुआ है।

४—शब्दार्थ—कीट—मुकुट ; विरहानल—विरहाग्नि ; विहाय—छोड़कर , ठाकुर—स्वामी।

भावार्थ—श्रीकृष्ण जी उद्धव से कहते हैं कि मोरपखो के सुन्दर मुकुट को सिर से उतार कर फिर (उस पर) मणि-विभूषित मुकुट को धारणकर क्या करेंगे, इसी प्रकार स्नेह युक्त मक्खन के बिना षटरस व्यंजन चबाकर क्या करेंगे, गोपियों और ग्वाल-बालों को विरह की अग्नि में झोंककर देवताओ का स्वामी बनकर क्या करेंगे, हाय! 'गोविन्द' और 'गोपाल' जैसा अपना प्यारा नाम त्यागकर त्रिलोकी का अधिपति कहलाकर ही हम क्या करेंगे?

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त में श्रीकृष्ण जी ने अपने राजसी ठाट-बाट व ऐश्वर्य पर असंतोष व्यक्त किया है। इसमें उनका ब्रज के प्रति अत्यधिक अनुराग झलक रहा है।

५—शब्दार्थ—सील-सनी—(१) शीलता से युक्त (२) शीलयुक्त, सुबात—(१) चर्चा (२) सुन्दर वायु, दुर्दिन—विपत्ति के दिन।

भावार्थ—रत्नाकर जी कहते हैं कि जब श्रीकृष्ण जी ने उद्धव से पहले (बचपन के समय) की शील-सनी और प्रेम भरी बातें करना आरम्भ कर दिया तो उस समय जल्दी-जल्दी खुलने और बन्द होने से उनके (नेत्रों मे) और ही चमक आ गयी। (व्रज से वियुक्त होने के कारण) श्रीकृष्ण जी अब अत्यन्त अधीर और व्याकुल हो गये थे इसलिए उनके अर्द्ध-निमीलित नेत्र अचानक चमक उठे (और आँखो से आँसू गिरने लगे जिस के कारण) व्रज मे सुदिन का आगमन हुआ, वहाँ चारो ओर आनन्द छा गया और देवलोक मे चारो ओर विपत्ति दिखायी देने लगी। जब श्रीकृष्ण जी के नेत्रो से अश्रु-धार प्रवाहित होने लगी तो उद्धव जी का अचल हृदय भीग गया (और वे व्याकुल हो गये)। श्रीकृष्ण जी की अश्रु-धार मे पड़कर उनका सारा धैर्य वह गया।

टिप्पणी—(१) सील-सनी...हरियाने ते—तक के पद श्लिष्ट है। कवि ने इनके सहारे पुरवा हवा द्वारा वृष्टि होने का रूपक दिखलाया है।

(२) दुरदिन दीख्यौ सुरपुर माँहि—व्रज-जीवन की पवित्र-स्मृति आने पर जब श्रीकृष्ण जी अत्यन्त अधीर हो जाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे व्रज मे पुनः लौट आयेंगे और देवताओ का कार्य सिद्ध न होगा। इसलिए रत्नाकर जी ने सुरपुर मे 'दुरदिन' और व्रज मे 'सुदिन, दिखलाया है।

(३) इसमे श्लेष तथा रूपक अलङ्कार है।

६–शब्दार्थ—निवारि—निकालकर ; प्रतीत—विश्वास ; सीख—शिक्षा ; भीख—भिक्षा।

सन्दर्भ—उद्धव की ब्रह्मज्ञान की बातो को सुनकर श्रीकृष्ण जी कहते हैं—

भावार्थ—हे उद्धव ! यदि तुम एक बार गोकुल की गलियों में घूम आओ तो हम तुम्हारे ब्रह्मज्ञान के सिद्धान्त पर विश्वास कर लेंगे और तुम्हारी शिक्षा को मन, हृदय, सिर, कान और आँख से भिक्षा की भाँति आदरपूर्वक ग्रहण कर लेंगे। उस समय हम नेम के निष्फल प्रेम को हृदय से निकाल कर उसके स्थान पर आनन्द के भण्डार ब्रह्मज्ञान को स्थापित कर लेंगे और चन्द्रमुखी गोपियों की पवित्र स्मृति को आँसुओं से धोकर (उसके स्थान पर) ब्रह्म ज्योति जला लेंगे।

७—**शब्दार्थ**—पन—प्रतिज्ञा ; निहार—देखकर ; कातर—दुखी ; आतुर—व्याकुल ; छरकि—खुल गई।

भावार्थ—रत्नाकर जी कहते हैं कि उद्धव जी सुयश प्राप्त करने की इच्छा करके अत्यन्त उमंगित एवं उत्साहित होकर संदेश और उपदेश की प्रतिज्ञा लेकर ब्रज को चले किन्तु श्रीकृष्ण जी को अत्यन्त दुखी देखकर वे इतने व्याकुल हो गये कि उन का मन हाथ में न रहा। फिर तो पता नहीं कब उनकी ज्ञान रूपी गठरी की गाँठि खुल गयी जिससे (यमुना के) कछार में धीरे-धीरे (ज्ञान की) सारी पूँजी गिर गयी। उनकी यह पूँजी कुछ तो तमाल वृक्षों की डाल में खो गयी और कुछ करील-वृक्षों की झाड में उलझ गयी। (भाव यह कि जमुना के कछार में पहुँचकर उद्धव जी ने ज्यों ही तमाल और करील-वृक्षों की सुन्दरता को देखा त्यों ही उनका मन इस प्रकार रम गया कि उन्हें अपने ज्ञान का कुछ भी ध्यान न रहा।)

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त में ज्ञानी उद्धव पर अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रेम-रंग चढ़ाया गया है इसमें वृत्यनुप्रास की बहार देखने ही बनाती है।

भावार्थ—गोपियों की दयनीय दशा देखकर उद्धव का गर्व नष्ट हो गया और ज्ञान गौरव कुण्ठित हो गया। वे अत्यन्त सकुचित हो गये। उनकी आँखों में आँसू भर गया और मुख से वाणी न निकल सकी। उनकी दशा उस समय ऐसी थी मानो वे विदाये से हो, सूने से गये हों, थक से गये हों, हक्के-बक्के से हो गये हों, शंकित से हो गये हों, कहीं अटक से गये हों, भ्रम में पड़ से गये हों, भभरा से गये हों, चपला से गये हों, धीरे-धीरे उनके हृदय में शूल सा चुभ रहा हो, वे (बाजी) हार से गये हों या स्वयं हर से लिये गये हों अथवा वे भूले हुए से कुछ खोज रहे हों।

टिप्पणी—इसमें वृत्यनुप्रास और संकीर्ण-भावोपमा है।

१०—**शब्दार्थ**—समोई—मिली हुई है, पोई—गूँथी गयी, भासत—दिखायी देता है, भ्रम पटल—भ्रम का परदा।

भावार्थ—उद्धव जी गोपियों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि सच्चिदानन्द परमात्मा की वह सत्ता जो पंचभूतो मे व्याप्त है, वह हम मे और तुम मे समान रूप से व्याप्त है। समस्त प्राणियों मे एक ही अनुपात से पंचभूत अवस्थित किये गये हैं। जिस प्रकार कॉच के कई दर्पणों में एक ही रूप अनेक रूपों मे दिखायी देता है उसी प्रकार एक ईश्वर अनेक रूपो मे प्रतिबिम्बित होता है, माया के प्रपच के कारण ही उसमे विभिन्नता दृष्टि-गोचर होती है। इसलिए तुम अपने ज्ञानचक्षुओ से भ्रम के इस परदे को उठाकर देखो कि सभी कृष्ण मे है, और कृष्ण सभी में व्याप्त हैं।

टिप्पणी—इसमें 'एकोऽहं बहुस्याम नेहनानास्ति किंचन' की पुष्टि की गयी है।

११—**शब्दार्थ**—थहरानी—कॉंपने लगीं, थिरानी—स्तम्भित हुई; विथकानी—दुखी हुई, थामि—पकडकर।

भावार्थ—उद्धव की अकथनीय वार्ता को सुन-सुनकर कोई गोपी कॉंप उठी, कोई अपने स्थान पर ही स्तम्भित हो गयी, कोई क्रोधित हो गयी, कोई प्रलाप करने लगी; कोई फूट फूटकर रोने लगी, कोई व्याकुल हो गयी, कोई बहुत दुखी हो गयी, कोई मारे पसीने के डूब गयी, किसी की ऑंखों मे ऑंसू भर गये, कोई मूर्छित होकर चक्कर खाकर भूमि पर गिर पड़ी, कोई स्याम-स्याम कहकर रोने-पीटने लगी और कोई अपने कोमल कलेजे को पकड़े हुए सहमकर सूख सी गयी।

टिप्पणी—इसमे उल्लेख अलङ्कार है।

१२—**शब्दार्थ**—रजन—प्रसन्न करने हैं ; नवनीत—मक्खन , विरद—यश।

भावार्थ—गोपियाँ उद्धव जी से पूछती है कि उद्धव जी! षटरस व्यञ्जन तो सदैव श्रीकृष्ण के चित्त को प्रसन्न करते हैं पर यह तो बताओ कि उन्हे प्रेम के साथ मक्खन भी कही मिलता है? उनके यश का गान तो मथुरा मे सभी गाते होगे पर सच बताओ उन्हे 'लल्ला' कहकर कितने लोग दुलार करते हैं? वे इन्द्र की भाँति रत्नजटित सिंहासन पर बैठ कर ससार में चारों ओर अपना शासन चलाते हैं पर क्या वे यमुना तट के पास किसी वट-वृक्ष के नीचे बैठकर अपनी पसली को उठाकर कभी वशी भी वजाते हैं?

टिप्पणी—वलिहारी! श्रीकृष्ण के विषय में प्रेममूर्ति गोपियों का इस प्रकार पूछना उन्हे ही शोभा देता है।

१३—**शब्दार्थ**—व्रजवारी की—गोपियो की, वारिधिता—समुद्रता।

सन्दर्भ—उद्धव जी जब वार-वार ब्रह्म का निरूपण करते हैं तो गोपियों को उन पर शंका होती है। अपनी शका के निवारणार्थ वे उद्धव जी से पूछती हैं—

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी, आप हम व्रजवालाओं की बुद्धि को पलट देने की प्रतिज्ञा-सी किये हुए दिखायी पड़ रहे हैं, सच बताइए कि आप यहाँ कृष्ण के दूत बनकर आये है या ब्रह्म के दूत बनकर? आप प्रेम की रीति को बिल्कुल नही जानते हैं (कदाचित इसीलिए) अनाड़ी की-सी नीति अपनाकर (हम लोगो के साथ) आप अन्याय कर रहे हैं।

आप जो श्रीकृष्ण और ब्रह्म को एक बता रहे हैं, उसे हम (सिद्धान्त के रूप मे) मान ले रही हैं किन्तु (व्यावहारिक दृष्टि से) एकत्व की भावना अच्छी नहीं लगती। आप चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न करें .पर इस से हम पर कुछ भी प्रभाव न पड़ सकेगा क्योंकि एक बूँद अगर समुद्र की समुद्रता मिटाना चाहे तो समुद्र का कुछ भी बन-बिगड़ न सकेगा प्रत्युत बेचारी बूँद ही अपनी बूँदता को खो देगी। (भाव यह कि गोपियों के हृदय में प्रेम का ऐसा सागर उमड़ रहा है जिस पर उद्धव के ज्ञान-बिन्दु का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता।)

टिप्पणी—इसमें वृत्यनुप्रास अलङ्कार है।

१४-शब्दार्थ—मुकुर—दर्पण ; निपट—बिल्कुल ; निरूपि चुके—निरूपण कर चुके।

सन्दर्भ—उद्धव जी गोपियों से कृष्ण का प्रेम छोड़ देने के लिए बार-बार आग्रह करते हैं। इस पर गोपियाँ कहती हैं—

भावार्थ—उद्धव जी ! आप सुन्दर चिंतामणि को तो धूल में फेंकवा दे रहे हैं और मन रूपी शीशे के दर्पण को यत्न से रखने के लिए कह रहे हैं। (भाव यह कि आप चिंतामणि के सदृश्य कृष्ण-प्रेम को छुड़वाकर काँच के समान मन को यत्न-पूर्वक रक्षित रखने के लिए कह रहे हैं पर इससे क्या लाभ होगा ?) हाय ! हमारी वियोगाग्नि को शान्त करने के लिए आप वायु पीने (प्राणायाम की साधना करने) की राय दे रहे हैं। (क्या वियोगाग्नि वायु से नहीं बढ़ेगी ?) आप ने जिस ब्रह्म को रूप और रसहीन बताया है (आश्चर्य है कि) उसी का ध्यान करने और आनन्द लेने का आप उपदेश दे रहे हैं। इतने बड़े विश्व में जो (ब्रह्म) ढूँढ़ने पर भी नहीं मिल सकता है

उसे आप त्रिकुटी मे आँख मूँदकर देखने के लिए कह रहे हैं।
(भला यह कैसे सम्भव है ?)

टिप्पणी=गोपियो का तर्क इस कवित्त में द्रष्टव्य है। इस में उद्धव के निर्गुण ब्रह्म और योग-साधन का बड़ी ही युक्ति से खण्डन किया गया है।

१५–शब्दार्थ—जोग (१) योग की उपासना, (२) संयोग वा मिलन , दरिबे—नष्ट करने के लिए , बैन-पाहन—बात रूपी पत्थर ।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी ! यदि आप मथुरा से योग (संयोग) सिखाने के अभिप्राय से यहाँ आये हैं तो वियोग की ऐसी बातें न कीजिए। यदि हमारे दुखो को नष्ट करने के लिए आप यहाँ पधारे है तो हमारे दुख को (ऐसी बाते कहकर) और न बढ़ाइए। हाय ! आप भूलकर भी अपने वचन रूपी पत्थर को न चलाइए क्योकि इससे हमारा मन रूपी दर्पण टूक-टूक हो जायगा। हे उद्धव जी ! एक मनमोहन ने हमारे हृदय में बास कर हमे उजाड दिया है इसलिए आप अनेक मनमोहन मेरे हृदय में न बसाइए (नही तो पता नहीं हमारी क्या गति होगी) आप निर्गुण ब्रह्म की उपासना को बातें हमसे न कीजिए।

टिप्पणी—"एक मनमोहन......बसावो ना" की उक्ति बहुत ही मनोहर और चुभती हुई है । 'जोग' मे श्लेष अलंकार है।

१६–शब्दार्थ—पतिबंधहिं—रोक ; वारि चुकीं—निछावर कर चुकीं।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी ! जब हमने कुल की लाज और मर्यादा के प्रतिबंध को तोड़ दिया तो फिर व्रत और संयम-नियम के पींजड़े में कौन पड़ने जाय। जब हमने हठात् सुधि और बुद्धि के भार को (कृष्ण प्रेम की नौका में) लादकर उसे किनारे से दूर कर दिया तो फिर (निर्गुण ब्रह्म के) गुण और गौरव का लङ्गर लगाने कौन जाय ? हमने तो सीधी बात सोच रक्खी है कि अब योग के समुद्र में साँस रोककर कौन डूबने जाय (क्योंकि यह व्यर्थ ही है।) अच्छा, आप ही बताइए जब हमने मोहन-लला पर अपने मन रूपी माणिक्य को निछावर कर दिया तो आपकी मुक्ति रूपी मोती का लोभ कैसे करें ?

टिप्पणी—सच है अपने मन रूपी माणिक्य को कृष्ण पर लुटा देने वाली गोपियाँ मुक्ति रूपी मोती की परवाह क्यों करेंगी।

१७-**शब्दार्थ**—लखात—दिखाई देते हैं; कहा—क्या : उतै—उधर : अनग—कामदेव।

भावार्थ—गोपियाँ उद्धव जी से कहती हैं कि उद्धव जी ! (श्रीकृष्ण से प्रेम कर चुकने पर) हमें तो सभी रंग और रूप के बिना दिखाई पड़ते हैं फिर इस प्रकार के एक निर्गुण का ध्यान और करके किस प्रकार धैर्य धारण करेंगी ? हम सब श्रीकृष्ण की विरहाग्नि में पहले से ही जल रही हैं तो फिर अब ब्रह्म ज्योति को जलाकर हम क्या करेंगी ? उद्धव जी ! आप अपने अव्यक्त और निर्गुण ब्रह्म को उधर ही रक्खें भला इन से मेरे कठिन काम कैसे पूरे हो सकेंगे ? एक अङ्ग-रहित (काम-देव) की आराधना करके हमारी समस्त कामनायें पूर्ण हो गयी फिर अन्य अंग-रहित (निर्गुण ब्रह्म) की आराधना करके हम क्या करेंगी ?

टिप्पणी—'एक ही अनग...अराधि करिहै कहा' मे अनूठा व्यंग है !

१८–शब्दार्थ—कर—हाथ , पद—पैर , वदन—मुख ।

भावार्थ—गोपियाँ उद्धव जी से पूछती हैं कि उद्धव जी ! बताइए, आपका ब्रह्म बिना हाथो के हमारी गाय कैसे दुहेगा ; बिना पैरो के कैसे नाच और थिरक कर हमें प्रसन्न करेगा, बिना मुख के कैसे मक्खन खायेगा, कैसे वशी बजायेगा और कैसे गोप-वालो से गीत गवायेगा तथा अपनी आँखो से देखे और कानो से सुने बिना भोले ब्रजवासियो की विपत्ति का निवारण वह कैसे करेगा । आपका यह अदृश्य और निर्गुण ब्रह्म भला हमारे किस काम आयेगा ?

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त मे गोपियो ने अपना यह आशय व्यक्त किया है कि (सगुण ब्रह्म) श्रीकृष्ण ही सब प्रकार से हमारा कल्याण कर सकते हैं, निर्गुण से हमारा कोई काम पूरा न हो सकेगा ।

१९–शब्दार्थ—ढेरी—राशि , चेरी—दासी ।

भावार्थ—गोपियाँ उद्धव जी से कहती हैं कि उद्धव जी ! हमारे कौन जोग रमाने जाय और कौन समाधि लगाने जाय । हम दुख और सुख की साधना से एकदम निवृत्त हो चुकी हैं फिर जाने क्यो आप यहाँ आकर प्राणायाम साधने की बातें कहते हैं । हमे यमराज का कोई डर नही है क्योंकि हम उनकी कुछ भी जमा नही धराती और न इन्द्र की सम्पत्ति का ही हमे कुछ लोभ है । हम ब्रह्म के बाबा की भी चेरी नहीं हैं । हम आप से सीधे कह दे रही हैं कि हम केवल श्रीकृष्ण जी की अनन्य दासी हैं ।

टिप्पणी—गोपियों का सात्विक अमर्ष इस कवित्त में बड़ी खूबी के साथ दिखाया गया है।

२०—शब्दार्थ—जुहार—प्रणाम करना, आवाहन करना ; सारन—शान्ति करना।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी! हम तो उसी (श्रीकृष्ण) के सुन्दर मुख की किरणों (आभा) को सदैव चाहती हैं इसलिए आप की ब्रह्म-ज्योति हमारे लिए व्यर्थ है; बताइए, जो चन्द्रमा की (शीतल किरणों की) उपासना करते हैं वे सूर्य की प्रचण्ड किरणों का आवाहन कर (व्यर्थ में) क्यों जलें? विधाता ने हमारे लिये जो संयोग जुटाया है, हम उसका उपभोग कर रही हैं। अपने इस दुख को नष्ट करने के लिए योग की साधना करने से क्या लाभ होगा? (हमें इस दु:सह दुख से न डरना चाहिए) क्योंकि जब व्रजचंद्र श्रीकृष्ण के लिए हमने अपने चित्त को चकोर बनाया है तो फिर विरह की चिनगारियों से डर कर क्या होगा?

टिप्पणी—गोपियों ने इस कवित्त में श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अनन्यता प्रदर्शित की है।

२१—शब्दार्थ—सीरौ—शीतल, बातहिं—बात करके, वायु करके।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी! हम अपने मन-मन्दिर में रोमाञ्च रूपी खस की टट्टी लगाये हुई हैं। इसे अश्रु-जल से धोया करती हैं और वार्ता रूपी शीतल वायु चला-कर इसे खूब ठंडा बनाये रखती हैं। हम इस (मन-मन्दिर) में विरहाग्नि की विषम-उच्छ्वासों को नहीं आने देतीं। अब आपके कहने पर ब्रह्म-ज्योति प्रज्वलित कर इस मन-मन्दिर को कैसे

तपावें । हाय ! इस मन-मन्दिर मे वसे हुए नंद के सुकोमल कुमार श्रीकृष्ण के साथ विश्वासघात कर उन्हें कैसे निर्वासित करें ?

टिप्पणी—गोपियाँ किसी भी दशा में उद्धव के कहने पर अपने प्यारे श्रीकृष्ण के साथ विश्वासघात करने को तैयार नहीं हैं । इनकी यह पूत-भावना अत्यन्त सरल, स्वाभाविक और शिक्षाप्रद है ।

२२-शब्दार्थ—गिरि शृगनि—पर्वत की चोटियों ; रसना—जिह्वा ; विहाइ—छोडकर ।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी ! आप अपने ज्ञान रूपी सूर्य को पर्वत की चोटियो पर प्रकाशित कीजिए, यहाँ व्रज में आपकी कुछ भी कला न चलेगी। आप यहाँ पर अपने ज्ञान रूपी सूर्य को चाहे जितना चमत्कृत कीजिए पर इनके ताप से हमारा प्रेम रूपी वृक्ष न सूख सकेगा। इसकी डालियाँ और पत्ते तृण के बराबर भी नष्ट नही होंगे। हमारी जिह्वा सुन्दर चातकी बनी हुई हैं इसलिए प्रियतम श्रीकृष्ण को छोड़कर यह और रट न रटेंगी। आप लोट-पोट कर (नगई कर) व्यर्थ में ही क्यो बातो का बवडर खड़ा कर रहे हैं। आपके इस उपाय से घनश्याम हमारे हृदय से नहीं हटेंगे।

टिप्पणी—इसमें रूपक अलंकार है ।

२३-शब्दार्थ—दरैंगी—मलेंगी ; भार—लपट ।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि हम नियम-संयम और व्रत का अखण्ड आसन लगायेंगी तथा जहाँ तक हमारे लिये सम्भव होगा श्वासो का पान (प्राणायाम की साधना) करेंगी। हम मृगछाला धारण करेंगी और शरीर में इतनी धूल मलेंगी

कि शरीर तक छिल जायेगा। यही नहीं, हम पञ्चाग्नि की ज्वाला में भी तपेंगी जिसे देखकर आपका कलेजा दहल जायगा। आपके कहने पर हम सभी प्रकार की आपत्तियाँ सहेंगी पर इतना आप अवश्य बतला दीजिये कि क्या ऐसा करने पर हमें कन्हैया जी प्राप्त हो जायेंगे।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त में गोपियों ने कहा है कि वह कठोर व्रत और योग-साधना आदि के लिए भी तैयार हैं किन्तु तभी, जब कि उन्हें यह विश्वास हो जाय कि श्रीकृष्ण जी ऐसा करने पर अवश्य मिल जायेंगे।

२४-शब्दार्थ—विधान—नियम ; ललकि—उत्साहित होकर , व्रजबाला—गोपियाँ।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी ! हम योग के जटिल नियमों की साधना कर लेंगी और कमर में मृगछाला भी बाँध लेंगी। हम शरीर में विभूति मल लेंगी तथा घोर ग्रीष्म और शीत को भी बड़े उत्साह के साथ झेल लेंगी। इसके आगे गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी ! आपने कथनीय और अकथनीय सभी बातों को कह डाला है। अब आज्ञा हो तो हम गोपियाँ भी कुछ कहें। कृपया बताइए कि यदि कान्ह हमें न मिले, तो आपके ज्ञान को प्राप्त कर हम क्या फल पायेंगी ?

२५—शब्दार्थ—झमेला—प्रपञ्च , रेल रेला—भरमार।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी ! पहले तो श्रीकृष्ण जी ने हमें बहकाकर प्रेम का पाठ पढ़ाया और हमारे तन-मन को विरहाग्नि का पात्र बनाया। इसके पश्चात् आप उनका स्थान ग्रहण कर श्वास के आरोह और अवरोह का प्रपञ्च प्रकट कर रहे हैं। उद्धव जी ! आप जैसे सुन्दर उपदेशकों की व्रज में

बहुत भरमार है। वे (हमारे प्रथम उपदेशक कृष्ण जी) तो कूबरी का योग (सयोग) पाकर पूर्ण योगी हो गये। बताइए, आप उनके गुरु हैं या शिष्य ?

टिप्पणी—वे तौ भये...चेला है—में गोपियों ने श्रीकृष्ण जी और उद्धव जी दोनों की गुरु-चेला का सम्बन्ध बताकर ख़ूब चुटकी ली है। बलिहारी !!

२६—शब्दार्थ—कनूका—कण ; छिगुनी—उँगली ; पानि—हाथ ; परसि—छूकर।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि यह (प्रेमाचल) द्रोण पर्वत का टूटा हुआ, क़िनका नहीं है जिसे श्रीकृष्ण जी ने उठाकर पृथ्वी पर कुशलता का छत्र छवा दिया है। वह वधू कूबरी का कूबर भी नहीं है। जिसको थोड़ा सा स्पर्श कर कृष्ण ने नष्ट कर दिया है। यह तो कठोर व्रत धारण करने वाली गोपियों का प्रेम-पर्वत है, जिसके भावों के भार से श्रीकृष्ण जी स्वयं संकुचित हो गये हैं। ऐसे प्रेम-पर्वत को बातों से उड़ा देने के लिए सुजान कान्ह ने अजान बनकर न जाने क्यों आपको यहाँ भेजा है।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त में गोपियों ने उद्धव से कहा है कि उनका प्रेम-पर्वत ज्ञान की कोरी बातों से उड़ नहीं सकता है।

२७—शब्दार्थ—अँदेसो—शंका ; वंचक—ठग ; बराए—विमुख।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी ! आप सुगठित और सुन्दर शरीर वाले सलोने सुजान श्रीकृष्ण के दूत होकर यहाँ आये हैं किन्तु आपकी बातों से हमें ऐसी शंका होती है कि आपका संदेश प्रेम का प्रण धारण करने वाले श्रीकृष्ण जी का संदेश नहीं है, यह तो एकदम मनगढ़ंत जान पड़ता है। आप

अपने ज्ञान की गुरुता और गौरव के गुमान में भरकर फूले फिर रहे हैं और ठगी के कार्य से तनिक भी विमुख नहीं हो रहे हैं। हमारी समझ में तो यही आता है कि आप दुष्टा कुबरी के भेजे आये हैं और रसिक शिरोमणि कृष्ण का नाम व्यर्थ में बदनाम कर रहे हैं।

टिप्पणी—कुबरी के प्रति गोपियों की भी डाह यहाँ दर्शनीय है।

२८-शब्दार्थ—छतीसे—धूर्त ; छलिया—छल करने वाले ; वीर बावन—वीर वामन भगवान जिन्होंने बलि को छला था ; साढ़े बाइस होना—अधिक ठहरना , छठे-आठैं परयौ—पीछे पड़ा है ; तीन-पाँच ह्वै जैहे—नष्ट हो जायगी।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी ! तुम उस धूर्त और कपटी के भेजे यहाँ व्रज में आये हो। हमें पूर्ण विश्वास होता है कि तुम वीर वामन भगवान के अंशी हो। तुम जाँच होने या तौले जाने पर वामन से अधिक ही ठहरोगे। इस समय प्रेम और जोग का मुकाबिला है जिस से जोग प्रेम के पीछे पड़ा हुआ है किन्तु इससे क्या होता है क्योंकि एक ही वस्तु हीरा और काँच नहीं हो सकती। तुम बहक कर तीनों गुणों और पाँचो तत्वों की जो तीन-तेरह करने वाली (बिलगावे की) बात कर रहे हो यह आप से आप नष्ट हो जायगी। इसका हम गोपियों पर कुछ भी प्रभाव न पड़ सकेगा।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त में रत्नाकर जी ने गिनती वाले मुहाविरों का प्रयोग बड़े कौशल से किया है। इस प्रकार के मुहाविरों का इतना सफल प्रयोग अन्यत्र दुर्लभ है।

२९-शब्दार्थ—जोग—सामर्थ्य ; बिलग—अलग ; बेगि —शीघ्र ही।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी ! आप हमारे हृदय से श्रीकृष्ण को निकालना चाहते हैं किन्तु आपके योग-मन्त्रो मे इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वे श्रीकृष्ण से हमारा बिलगाव कर सकें। हम पुकार कर कह रही हैं कि इस प्रकार से बिलगाव करने मे अत्यन्त अनीति होगी इसलिए आप शीघ्र ही कृष्ण को लाइए और हमारी छाती से लगा दीजिए फिर सचेत होकर श्रीकृष्ण से बिलगाव करने का उपाय सोचिए क्योंकि प्राणाधार कृष्ण ज्यो-ज्यो हम से दूर होते जाते हैं त्यों-त्यो वे हमारे मन-रूपी दर्पण मे धँसे चले जाते हैं।

टिप्पणी—दूर खड़े हुए व्यक्ति की छाया दर्पण मे उस व्यक्ति की अपेक्षा गहरी गड़ी हुई प्रतीत होती है जो उस के एकदम निकट खड़ा है। इस कवित्त मे इसी दृश्य को साकार रूप दिया गया है।

३०—शब्दार्थ—भाजन—पात्र ; तपन—गर्मी ; तपाक करि—आवेश में आकर।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी ! देखना, कहीं भगवान् के स्वरूप के पात्र, राधिका के नेत्र तप्त न हो जायँ और उनसे ब्रह्मद्रव (गंगाजल) बड़े तपाक से निकलकर समस्त ब्रह्माण्ड मे उपद्रव न मचा दे एवं शंकर सहित कैलाश का गर्व चूर्ण करके उसे पाताल मे न धँसा दे इसलिए इस बात की सतर्कता रखियेगा कि बरसाने मे आपकी यह योग-गाथा फैलने न पावे और राधिका के कानों मे भनक न पड़ने पावे।

टिप्पणी—इसमे रूपक अलंकार के सहारे राधिका का वियोग वर्णित है। इसमे अतिशयोक्ति तो अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची जान पड़ती है।

३१-शब्दार्थ—आतुर न होहु—घबड़ाओ नहीं, पुरंदर—इन्द्र, नातरु—नहीं तो।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी! दीपमालिका का उत्सव अब अत्यन्त निकट है इसलिए आप अधिक आतुर न हों। यदि पहले की भाँति इन्द्र की कृपा दृष्टि (कोप-दृष्टि) ब्रज पर फिर जायगी तो आप जो ब्रह्मज्ञान द्वारा यह कहते हैं कि मनुष्य ब्रह्म हो सकता है, इसकी सत्यता प्रकट हो जायगी। यदि गिरिधारी ने पूर्ववत् ब्रज का उद्धार कर दिया तब तो किसी न किसी प्रकार आपकी बात रह जायगी अन्यथा हमारी विरह व्याधि से तुम्हारा सारा ब्रह्मज्ञान बह जायगा।

टिप्पणी—यहाँ कृष्ण के गोवर्द्धन धारण वाली घटना का उल्लेख किया गया है।

३२-शब्दार्थ—विकसित—खिले हुए, बसंतिकावली—पीतता, पिक—कोयल; बतास—वायु।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव जी! अब विधाता और कामदेव की कला में कुछ भी अन्तर नहीं रह गया है क्योंकि बरसाने में नित्य प्रति वसन्त ऋतु छायी रहती है। (कृष्ण के विरह में) गोपियों का जो शरीर पीला हुआ है वही मानों वन की खिली हुई बसंतिकावली है। गोपियो के झुण्ड के झुण्ड जो विक्षिप्त से हो रहे हैं, वही मानों सुन्दर बौरों से युक्त आम के वृक्षों की वाटिका हैं। गोपियो में परस्पर जो चबाव चलता है। वही मानो कोयल की पुकार है। गोपियाँ उछ्वास द्वारा अपने हृदय की जो ज्वाला निकाल रही हैं यह ऐसो प्रतीत होती है मानों वसन्त की वायु लगने से वृक्षों के पत्ते झड़ रहे हो।

टिप्पणी—इसमे साङ्ग रूपक अलङ्कार है।

३३-शब्दार्थ—हाल—समाचार , बिहाल—व्याकुल ; अवगाहि—लाकर।

भावार्थ—गोपियाँ कहती है कि उद्धव जी! हम सभी व्रजबालाएँ अत्यन्त व्याकुल पड़ी हुई हैं, आप हमारा कुशल-समाचार क्या पूछ रहे हैं। आप यहाँ दो दिन ठहरकर और हमारी दशा अपनी आँखो से देखकर मथुरा वापस जाये। हम सब जिस रोग मे ग्रस्त हुई है वह बहुत कठिन है और कहने योग्य नहीं है, इसलिए हमारे संदेश को आप साधारण न समझियेगा। यदि प्राणनाथ! आप से अवसर मिलने पर हमारी दशा पूछे तो उन से कुछ न कहिएगा प्रत्युत जो दशा आपने यहाँ देखी है, उसी को प्रगट कर दीजिएगा। आप आह भरते हुए कराहिएगा तथा आँखो मे आँसू भरकर कुछ कहने का भाव प्रकट कीजिएगा और फिर हिचकी लेकर चुप रह जाइएगा।

टिप्पणी—"आह कै.. रहि जाइयौ" मे देखिए कितना हृदयस्पर्शी भाव भरा हुआ है।

३४-शब्दार्थ—भौन—घर ; जनि—मत, गाम—गाँव।

भावार्थ—उद्धव की विदाई के समय सभी गोपियाँ हा-हा खाकर कहती हैं कि उद्धव जी! आप व्रज के प्रपञ्चो को देखकर लेशमात्र भी न पिघलियेगा और नन्द-यशोदा, गोप-गोपी तथा गायो की तथा वृषभानु के घर की भी कुछ चर्चा न कीजिएगा। यहाँ की दयनीय दशा सुनकर श्रीकृष्ण के नेत्रो में आँसू आ जायगा और मुख में मलिनता छा जायगी इसलिए व्रज के दुख की आप साँस तक न लीजिएगा। आप केवल हम सब का नाँव-गाँव बताकर उनसे हमारी 'राम-राम' कह दीजियेगा।

टिप्पणी—बलिहारी। प्रेम हो तो ऐसा हो! देखिए, व्रज की दयनीय दशा को प्यारे श्रीकृष्ण अपने कानो से सुनकर दुखी हों, यह गोपियों को सह्य नहीं है। अतएव वे उद्धव को मना करती है कि आप व्रज की दशा उनसे न बताइएगा। केवल हमारा नाम और ग्राम बताकर उनसे राम-राम कह दीजिएगा। रसिक शिरोमणि हम लोगों के अभिप्राय को स्वयम् जान लेंगे।

३५–शब्दार्थ—नवाए—नीचा किये हुए, जतन—यत्न ; नतन—झुके हुए।

भावार्थ—कविवर रत्नाकर जी कहते हैं कि अब उद्धव जी सभी प्रकार के सुखो को प्राप्त करने का सीधा सा उपाय मालूम कर और अपने गुण के गौरव को खोकर एव अपने गर्व रूपी गढ़ की पूरी पराजय लेकर वे अपने वैराग्य की तुमड़ी मे प्रेम-रस भरकर और ज्ञान की गुदड़ी में अनुराग का दिव्य रत्न लेकर दीनता और व्याकुलता क बोझ से बोझिल होते हुए, हृदय में पीड़ा और कसक लिए, आँखो को नीची किये व उन मे आँसू भरे हुए तथा लज्जित होते हुए व्रज से लौटे।

टिप्पणी—गोपियों के प्रेम से पराजित ज्ञानी उद्धव की दशा का इसमें सुन्दर चित्र खींचा गया है।

३६–शब्दार्थ—पग—पैर, नवनीत—मक्खन।

भावार्थ—कविवर रत्नाकर जी कहते हैं कि उद्धव जी जब व्रज से विदा होकर चलने लगे तो प्रेम-मद में मस्त होने के कारण उनके पैर कहीं के कहीं पडते थे और उनके शरीर और नेत्रों में शिथिलता दिखायी देती थी। वे चकित होते हुए इस प्रकार चल रहे थे मानों किसी भूली हुई बात का वे स्मरण कर

रहे हों। इस समय उनके एक हाथ में यशोदा का दिया हुआ मक्खन और दूसरे हाथ में राधिका की भेजी हुई पशी सुशोभित हो रही थी। उदार उद्धव जी आँसुओ के अधिक उमड़ने पर बाँहो से अपने आँसू पोछ लिया करते थे पर किसी भी दशा मे इन वस्तुओ को पृथ्वी पर नही रखते थे प्रत्युत अत्यन्त आदरपूर्वक हाथो मे लिए रहते थे।

टिप्पणी—प्रेमी उद्धव की महान श्रद्धा इस कवित्त में दर्शनीय है।

३७-शब्दार्थ—रावरे—आपके ; हुते—थे ; हिरानी—खो गयी ; बिलानी—विलीन हो गयी।

भावार्थ—उद्धव श्रीकृष्ण जी से कहते हैं कि ज्ञान, गुण और गौरव का गहरा उद्गार लेकर हम आपके द्वारा व्रज मे योग की शिक्षा देने के लिए भेजे गये थे पर न जाने किस दारुण दशा मे पड़कर हमारी सारी चतुराई नष्ट हो गयी। पता नही वह गोपियो क उच्छ्वासो मे पड़कर उड़ गयी या उनकी आँसुओ मे विलीन हो गयी अथवा दुख के दरेरो मे पड़कर चूर-चूर हो गयी या विरहाग्नि की ज्वाला मे पड़कर राख हो गयी।

टिप्पणी—इसमे सन्देह अलङ्कार है।

३८-शब्दार्थ—अमोल—अमूल्य ; तनक—थोड़ा सा ; पौरि—द्वार।

भावार्थ—उद्धव श्रीकृष्ण जी से कहते हैं कि योग का सूक्ष्म और अमूल्य सदेश लेकर मैं आपके द्वारा व्रजभूमि मे भेजा गया था किन्तु वहाँ प्रेम-धन के समक्ष इसका कुछ भी मूल्य न ठहरा। वृषभानु के द्वार पर पहुँचते ही मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी वहाँ से लौटकर मैं स्थान-स्थान पर पुकार

लगाता रहा किन्तु सारा प्रयत्न व्यर्थ रहा। मैं वहाँ पर अपनी वस्तु का मूल्य आँकता ही रह गया पर कुछ भी निश्चित न कर सका। इसके फेर मे पडकर मैं बहुत परेशान हो गया हूँ और निराश होकर वापस आ गया हूँ। अब आप ही इस सूक्ष्म और अमूल्य योग का निरीक्षण कीजिए। व्रज में हमारा सारा गर्व ज्ञान सहित गाँठ से गिर गया उसको खोजते हुए अंग-प्रत्यंग में हम व्रज की धूल लपेट लाये हैं।

टिप्पणी—ज्ञान रूपी रत्न को खो चुकने पर उद्धव के पास बचा ही क्या था, उस समय उनके लिए यह सर्वथा उचित था कि वे प्रेम की धूरि अपने अंग में लपेट लाते।

३६—शब्दार्थ—कुटीर—कुटिया ; स्रौन—कान ; लेखि-समझकर।

भावार्थ—उद्धव श्रीकृष्ण जी से कहते हैं कि यदि मेरे हृदय में आपको सचेत करने की उमंग न होती तो व्रज-प्रदेश को छोड़कर मैं इधर कदापि पैर न रखता। मैं व्रज मे यमुना के सुन्दर तट पर कहीं कुटिया छाकर रहता और यमुना की उस रेती से (जिस पर आपने गोपियो के साथ केलि किया था) कदापि न हटता। मैं (आपकी और गोपियों की) गूढ प्रेमगाथा को छोड़कर अपने श्रवण और जिह्वा में अन्य रस न भरता। मेरे व्रज मे रहते हुए यदि गोपियों और ग्वाल-बालों के आँसू निकलकर प्रलय के आने की सूचना देते तो भी मैं डरकर व्रज से न हटता।

टिप्पणी—इस कवित्त में उद्धव का व्रजभूमि-प्रेम दिखाया गया है।

—:०::०::०:—

९—सत्यनारायण

सत्यनारायण के काव्य की पृष्ठभूमि—द्विवेदी काल मे खड़ी बोली की कर्कश ध्वनि के बीच बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की भाँति ब्रजकोकिल पंडित सत्यनारायण कविरत्न की मधुर कूक सुनायी देती रही। ये ब्रजभूमि, ब्रजभाषा और ब्रजेश के अनन्य भक्त थे। इनका स्वभाव अत्यन्त कोमल था। स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने इनके विषय में लिखा है—"सत्यनारायण स्वभाविक सादगी के पुतले थे, गुदड़ी मे छिपे लाल थे। उनकी भोली-भाली सूरत, ग्रामीण वेषभूषा, बोलचाल म ठेठ ब्रजभाषा देख-सुनकर अनुमान तक न हो सकता था कि इस चोले मे इतने अलौकिक गुण छिपे हैं।" सत्यनारायण जी छात्रावस्था से ही कविता करने लगे थे। इनके कविता-पाठ का ढग अत्यन्त मधुर और आकर्षक था, लोग सुनकर मुग्ध हो जाते थे। इनका सम्पूर्ण जीवन दुखमय रहा। जन्म होते ही पिता स्वर्गस्थ हुए, माता को गृह-विहीन होकर भटकना पड़ा फिर कुछ दिन के पश्चात् वे भी स्वर्ग सिधारी, श्वास की बीमारी के कारण स्वास्थ्य भी प्रायः धोखा देता रहा, अन्त मे गार्हस्थ्य-जीवन तो इतना अशान्तमय रहा कि इन्हे अल्पावस्था में ही इस लोक को छोड़ना पड़ा! इनके काव्य मे इनके दुखी जीवन की अमिट छाप लगी हुई है इसे पढ़कर पाठक स्तब्ध हो जाते हैं।

वर्ण्य-विषय—पंडित सत्यनारायण जी ने सर्वप्रथम मैकाले के खण्ड-काव्य 'होरेशस' का पद्यबद्ध अनुवाद किया।

इसके पश्चात् भवभूति के 'उत्तर रामचरित' और 'मालती-माधव' का अनुवाद किया। इन दोनों ग्रन्थों में श्लोकों के स्थान पर जो सवैये रक्खे गये हैं वे अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। इनकी उत्कृष्ट रचनाओं का संग्रह 'हृदय-तरंग' इनके जीवन काल में ही छप रहा था किन्तु दो फार्म छपने के पश्चात् मित्रों की कृपा से सारी पाण्डुलिपि गुम हो गयी, जीवन के अन्तिम क्षण तक ये अपनी गुम हुई रचनाओं के लिए तड़पते रहे! स्वर्गस्थ होने के पश्चात् पंडित बनारसीदास जी चतुर्वेदी के प्रयत्न से इनकी बची-खुची कविताओं का संग्रह 'हृदय-तरङ्ग' के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा आगरा ने प्रकाशित किया।

समीक्षा—पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न' के काव्य में हृदय-तत्व की प्रधानता है। उनका 'हृदय तरंग' तो करुण रस का सागर ही है। इसमें 'प्रकृति-दर्पण', 'प्रेम-कली' और 'भ्रमर-दूत' की रचनाएँ अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। इन्होंने अष्टछाप के कृष्ण-भक्त कवियों के ढङ्ग पर बहुत से पद लिखे हैं, इनमें कृष्ण-भक्ति के साथ-साथ स्वदेश-प्रेम की व्यंजना भी पायी जाती है। इन्होंने भारतेन्दु जी की भाँति चलती ब्रजभाषा में मधुर सवैयों की भी रचना की है। ब्रज के अतीत का गौरव इन्हें सदा अपनी ओर खींचता रहा और ब्रज की वर्तमान दशा के प्रति अवसाद और खिन्नता की भावना भरता रहा। देश की दुरवस्था का राजनीतिक कारण जानते हुए भी वे उसे अदृष्ट का प्रकोप समझते रहे और परिस्थिति को सँभालने के लिये करुणानिधि-केशव को पुकार करते रहे। इनकी 'भारत-विलाप' कविता बड़ी मर्मस्पर्शिनी और हृदयद्रावक है। 'प्रकृति-दर्पण' में इन्होंने प्रकृति का मनोहर वर्णन किया है।

ये शीघ्र ही सुन्दर कविता बना सकते थे। अपने इस

अलौकिक गुण के कारण मित्रों के पत्रों का उत्तर भी कविता में दिया करते थे। उदाहरणार्थ स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्मा को भेजा हुआ इनका एक पत्र उद्धृत किया जाता है इसमें इन्होंने अपने स्वभाव को भी व्यक्त किया है—

आई तव पाती।
नहिं बिसरायो अजहुँ मोहि, यह जानि सिरानी छाती॥
बड़े भाग हैं जो इतने में, सोचि कछू सुधि लीनी।
दरस पिपासाकुल को, आधो जीवन आशा दीनी॥
जो मोसों हँसि मिले, होत मैं तासु निरंतर चेरो।
बस गुन ही गुन निरखत तिह मधि, सरल प्रकृति को प्रेरो॥
यह स्वभाव को रोग जानिये, मेरो बस कछु नाहीं।
नित नव विकल रहत याही सों, सहृदय बिछुरन माँहीं॥
सदा दारु योषित सम बेबस आज्ञा मुदित प्रमानै।
कोरो उजर ग्राम को वासी, कहा "तकल्लुफ" जानै॥

ये बड़े ही उत्साही व्यक्ति थे। आगरे में जब किसी प्रतिष्ठित नेता का आगमन होता या लोक-हित सम्बन्धी कार्यों का कोई आयोजन होता तो ये उसमें अपनी कविता सुनाकर लोगों को आनन्द दिया करते थे। इनकी इस प्रकार की रचनाएँ बहुत बड़ी संख्या में हैं। इनकी सब से प्रसिद्ध रचना 'भ्रमर-दूत' है। खेद है कि इसे अपूर्ण छोड़कर ये लोकान्तरित हो गये! इसकी रचना नन्ददास के 'भँवरगीत' के ढङ्ग पर हुई है। इसमें श्रीकृष्ण के द्वारिका प्रवासी होने पर उनके पास भ्रमरदूत द्वारा माता यशोदा के संदेश भेजने का वर्णन है। सत्यनारायण जी ने इस रचना में प्रकृति-वर्णन, वात्सल्य प्रेम, वर्तमान नारी समाज की अधोगति, नारी शिक्षा का महत्व, जननी और जन्म-भूमि का प्रेम, देश की दुर्दशा, समाज की दुर्व्यवस्था,

जातीय व्यापार की क्षीणता और प्रवासियों की दयनीय परिस्थिति आदि अनेक सामयिक विषयों का कवि ने आभास दिया है। यशोदा का विलाप पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वयं भारतमाता अपनी वर्तमान दयनीय दशा से व्याकुल और खिन्न होकर विलाप कर रही हैं। माता यशोदा के विलाप के एक-एक शब्द से स्वदेश प्रेम और कृष्ण भक्ति चुई पड़ रही है। वास्तव में सत्यनारायण जी की यही एक प्रौढ़ रचना उन्हें उच्चकोटि के कवियों की श्रेणी में विठा देने के लिए पर्याप्त है। प्रसाद और माधुर्य गुण से समन्वित ऐसी स्वाभाविक एव प्रभावशाली रचना जिस में सामयिकता का सामंजस्य किया गया हो, व्रजभाषा साहित्य में मिलना दुर्लभ है।

पंडित सत्यनारायण जी ने वर्तमान परिस्थितियों का सामञ्जस्य करते हुए अपने 'भ्रमरदूत' में लिखा है—

पहले को सो अब न तिहारो यह वृन्दावन।
याके चारों ओर भये बहु विधि परिवर्तन॥
बने खेत चौरस नये, काटि घने वन पुंज।
देखन को बस रहि गये, निधुवन सेवा कुंज॥
कहाँ चरिहैं गऊ॥

पहली सी नहिं जमुना हू में अब गहराई।
जल को थल, अरु थल को जल अब परत लखाई॥
कालीदह को ठौर जहँ, चमकत उज्ज्वल रेत।
काछी माली करत तहँ, अपने-अपने खेत॥
घिरे भाऊनि सों॥

इस पर आक्षेप किया जा सकता है कि क्या श्रीकृष्ण के द्वारिका-प्रवास करने और यशोदा के सदेश भेजने तक में इतना परिवर्तन हो सकता है कि कालीदह के स्थान पर उज्ज्वल रेत

चमकने लगा और वहाँ काछी माली खेत करने लगे। यह आक्षेप अकाट्य है किन्तु यदि कवि की दृष्टि को ध्यान में रखकर देखा जाय तो इसकी सार्थकता प्रमाणित हो जाती है। पढ़ते समय यह खटकने की अपेक्षा आनन्द देता है और ब्रजभूमि का नया मानचित्र नेत्रों के सामने उपस्थित कर देता है।

भाषा और शैली—भारतेन्दु जी की भांति इन्होंने जीती-जागती ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। भाषा को शब्दालङ्कारों से अलंकृत किया गया है। नन्ददास जी की भाँति कोमल कान्त पदावली का भी व्यवहार हुआ है। भाषा में प्रवाह की कमी कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। ब्रज के ठेठ शब्दों के कुछ प्रयोग ऐसे मिलते हैं जो परम्परागत काव्य-भाषा में नहीं पाये जाते। मुहाविरों और लोकोक्तियों का व्यवहार सर्वत्र मिलता है।

—:०:०::०::०:०:—

६—सत्यनारायण

—:o:—

१—शब्दार्थ—घनश्याम—१. कृष्ण मेघ, २. श्रीकृष्ण।

भावार्थ—हे सरल स्वभाव वाले सज्जन घनश्याम! आप अब आनन्द की वृष्टि कर दें जिससे ब्रजभाषा रूपी लता हरी-भरी होकर लहराने लगे।

२—शब्दार्थ—मनभावन—मनोहर : जलधर—बादल : परसत—स्पर्श करती हैं बिलसत—भ्रमण करते हैं :

भावार्थ—यद्यपि भारत की सुन्दर पवित्र भूमि लोक-प्रसिद्ध है पर इसमें मनोहर ब्रजमण्डल आनन्द से परिपूर्ण कमण्डल की भाँति सुशोभित है। इस परम पुण्य-स्थली में विधाता ने प्रकृति की छटा बिखेर दी है जिसकी सुन्दरता से देवता, मुनि और मनुष्य सभी परिचित हैं और जिसके प्रभाव के वशीभूत होकर पूर्ण-काम सुन्दर घनश्याम श्रीकृष्ण जी स्वयं नित्य नव मेघ की शोभा धारण करते हैं, जहाँ पर जाकर सहृदयों की मति आनन्द का अनुभव करती है और श्रीकृष्ण के चरण-कमल की धूलि का स्पर्श करके अत्यन्त पवित्र हो जाती है, जहाँ पर नित्य-प्रति मुनियों के मन रूपी भ्रमर आनन्दित होकर पराग पीने के हेतु युगलकिशोर के चरण-कमल का ध्यान करते हुए घूमते रहते हैं उस ब्रजभूमि में पवित्र और सरल स्वभाव वाले, सुन्दर गुणों के आगार, अत्यन्त प्रेमी और भोले-भाले गोपगण निवास करते हैं।

३-**शब्दार्थ**—सरवसु—सर्वस्व ; अघ-ओक-निकंदन—
पाप समूह को नष्ट करने वाले।

भावार्थ—जिस व्रजभाषा का आश्रय पाकर तुलसी का
यश-सौरभ कलि का दोष दूर करने वाला, सुन्दर, मधुर, कोमल,
सरस, सुगम, पवित्र और भक्तो का सर्वस्व हुआ। इस व्रजभाषा
रूपी सरिता के किनारों पर केशव, मतिराम, बिहारी, देव
और हरिश्चन्द्र जैसे आम के वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं ; इसके
किनारे पाप समूह को नष्ट करने वाले अष्टछाप रूपी कदम्ब के
सुन्दर वृक्ष खड़े हुए हैं जो पुष्पित, प्रेमाकुलित, सुखद, सुगन्धित,
और जग-वंदित हैं। समस्त प्रकार के भय को दूर करने वाली
आर्यो मे जागृति उत्पन्न करने वाली और उन्हे विजय देने
वाली तथा मनुष्यों के मन को अपने वश में करने वाली भूषण
रूपी कोकिल की वाणी शोभायमान है। इसमे मन को प्रसन्न
करने वाले, सौन्दर्य और सुगन्धि के भण्डार, अनेको रंग के
अगणित कमल पद्माकर के रूप मे खिले हुए हैं इन कमलो के
पराग से चौंक कर अत्यन्त उत्सुक होकर रसिक रसखान जैसे
बहुतेरे भ्रमर गुंजार करते हुए घूम रहे है। (व्रजभाषा) के अक्षर-
अक्षर मे श्रीकृष्ण की प्रतिमा दिखायी पड़ती है जिसकी
अक्षर आभा अद्भुत एवं अलौकिक दिखायी पड़ती है।

४-**शब्दार्थ**—सृजत—रचना करते है, अविकार—
विकार रहित।

भावार्थ—हे प्रभो! आपके सामर्थ्य को कौन जान
सकता है। आप नित्य नये रूप धारण करने वाली समस्त
सृष्टि के आधार चित्रकार हैं। वेद और पुराण कहते हैं कि

आप इस जगज्जाल को मकरी के जाले के समान बनाते हैं, फैलाते हैं तथा फिर कौतुक ही में जगज्जाल की माया को समेट लेते हैं। हे वासुदेव! आप सम्पूर्ण विश्व मे व्याप्त हैं और सम्पूर्ण विश्व आप में व्याप्त है। आपके शरीर में सभी रंगों का समावेश है इसीलिए आप घनश्याम कहलाते हैं। आप परम पुरुष हैं और प्रकृति नटी के सङ्ग मिलकर अपार लीला की सृष्टि करते हैं। आप समस्त ससार मे व्याप्त होने के कारण विष्णु कहलाते हैं। आश्चर्य है कि इतना होते हुए भी आप अविकारी कहे जाते हैं। हे विश्व रूप भगवान्! अविद्या जनित ज्ञान के वशीभूत होकर हम आपके जितने समीप होने का प्रयत्न करते है आप क्षितिज की भाँति तरसाते हुए हमसे उतनी दूर होते जाते हैं।

टिप्पणी—इस पद में भगवान् से विनय की गयी है।

५—शब्दार्थ—जाँचत—याचना करता है; महाभारत—विकट संग्राम।

भावार्थ—हे माधव! आपके पास कभी कुछ भी पूँजी नहीं रही है। दीन दुखी (आपके) दानी होने के धोखे में आकर आपसे याचना करते हैं किन्तु सच्ची बात तो यह है कि वे आपके स्वभाव से तनिक भी परिचित नहीं हैं, वे आपका सुयश सुनकर आपके पास आने का लोभ करते हैं। संसार आपको मोहन (मोह करने वाला) बताता है पर आपको किसी के प्रति कुछ भी मोह नहीं आता है। हे करुणा के सागर! आप में करुणा की एक बूँद भी नहीं है। आप एक से छीनकर दूसरे को दे देते हैं इसी कारण आप संसार में दानी के नाम से प्रसिद्ध हो रहे हैं। ऐसा हेर-फेर आप नित्य नये ढग से करते रहते हैं।

(आपकी हेरा-फेरी के कतिपय प्रमाण ये हैं।) आपने गोपियों के रंग-बिरंगे चीर चुरा लिये थे उसी को आपने बड़ी उदारता प्रकट करते हुए द्रौपदी को दिया। समुद्र मथन के समय आपको अमृत का जो कलश मिला था, धीरे-धीरे मुस्कराते हुए आपने उसे देवताओं को पिला दिया। कंस के मदमस्त हाथी कुवलया पीड़ का प्राण खेल ही खेल में आपने हरण कर लिया था उसी प्राण को आपने गजेन्द्र का बड़ी दया दिखाते-हुए दिया। बालि और रावण को मारकर आपने जो राजपाट पाया उसे अत्यन्त एहसान जताते हुए आपने सुग्रीव और विभीषण को सौंप-दिया। पौंडरीक नरेश का सर्वस्व नष्ट करके आपने जो माल-असबाब पाया था उसी को अत्यन्त मोह प्रदर्शित करते हुए आपने मित्र सुदमा को दे दिया। हेरी-फेरी के इसी गुण के कारण वेद आपको 'नेति-नेति' कहता है। शेषनाग, महादेव, इन्द्र और गणेश आदि आपकी सामर्थ्य नहीं जान पाते। आप माया के अगाध सागर में भारत की नाव डुबा रहे हैं और यहाँ महाभारत-सग्राम की सृष्टि कर भाई-भाई को आपस में लड़ा दे रहे हैं। इस कारण आप अब संसार में दिवालिये के नाम से प्रसिद्ध हो रहे हैं। आपने बड़े-बड़े मठों को काला किया है। व्यर्थ में अब आप अपनी पोल न खुलवाइए।

टिप्पणी—इस पद में सत्यनारायण जी ने निन्दा के व्याज से भगवान् की स्तुति की है।

९—शब्दार्थ—अछत—रहते हुए; विपदा—विपत्ति; आतुर—शीघ्र।

भावार्थ—सत्यनारायण कविरत्न कहते हैं कि हे माधव! अब और न तरसाइए। आप जैसी (कृपा) पहले से (दीनों

४८) करते आ रहे हैं वही दया फिर दिखलाइए। मान लीजिए कि हम दुष्ट, कुकर्मी, कपटी कुटिल और गँवार हैं इसलिए आप हमारा उद्धार नहीं करते तो बताइए आप स्वयं कैसे अशरण-शरण और दीनो के उद्धारकर्ता है। आपके रहते हुए देश की दशा इस प्रकार से छिन्न भिन्न हो किन्तु उस पर भी भारतवर्ष में अवतार धारण करने के नाते तुम्हें तनिक भी लज्जा न आवे। हे त्रिलोकीनाथ! हम सब आर्त्त-जन आपको पुकार रहे हैं लेकिन आप अनसुनी कर रहे हैं और निष्ठुरता धारण कर कान में उँगली डालकर (मौन साधकर) चुप बैठे हुए हैं। मेरी अब भी आपसे यही प्रार्थना है कि आप अपने विरद की ओर देखिए और दीन दुखी व्यक्तियों की आपत्ति को यथाशीघ्र दूर कीजिए।

टिप्पणी—इस पद में प्रभु से प्रार्थना की गयी है।

७-**शब्दार्थ**—ठीकुरी—पट्टी : पाषान हृदय—पत्थर के समान कठोर हृदय।

भावार्थ—सत्यनारायण कविरत्न कहते हैं कि हे मोहन! आप कब तक चुप्पी लगाये रहेंगे और अपनी आँखों पर कब तक और पट्टी बाँधे रहेंगे। तुम्हारी आँखों के सामने भारत के लोग क्षण-क्षण दुर्बल और अधीर हो रहे हैं ऐसी दशा में भी यदि आपका हृदय पत्थर जैसा कठोर बना रहा और जरा सा भी नहीं पसीजा तो क्या हुआ। हम लोग पुकारते-पुकारते थक गये पर (आपके मौन रहने से) हमने जान लिया कि वस्तुतः अब आप में रस नहीं रह गया है। यद्यपि हमने अपने नेत्रों से आँसू न पनारे बहाये हैं पर फिर भी आपका कपट नहीं छूटा है। हे प्रभो! अब अनहोनी होने वाली है क्योंकि विपत्ति

रूपी ग्राह ने विश्व रूपी गजेन्द्र को ग्रस लिया है। हे श्याम! आश्चर्य है कि ऐसे समय मे तुम्हे आँखमिचौनी सूझ रही है। हे प्रभो! आपने अपने लोकप्रसिद्ध सद्‌गुणो को कहाँ भुला दिया है यदि आपका ऐसा ही स्वभाव रहा तो फिर आप 'करुणासिन्धु' नाम से कैसे प्रसिद्ध हुए।

टिप्पणी—इसमें भारत-दुर्दशा अङ्कित की गयी है।

८-शब्दार्थ—दई—दैव ; निर्दयी—निष्ठुर।

भावार्थ—सत्यनारायण कविरत्न कहते हैं कि हे करुणा-घन प्रभो! हम अब और न सताइए और हमारी दशा देखकर दो आँसू तो गिराइए। हाय! हम ने ससार के समस्त प्राणियो से अधिक ऐसा कौन-सा पाप किया है जिसके कारण दैव निर्दयी बनकर हमे दुख दे रहा है। हे प्रभो! यदि आपको हम अपनी सच्ची दशा बताते हैं तो सारा समाज चौंक उठता है। बस इतने से ही जान लीजिए कि अपनी जाँघ उघारने से अपनी ही लज्जा जाती है। हमने माना कि (सर्वतोभावेन) आप अच्छे हैं, हम बुरे हैं और हमारा ही सारा अपराध है पर आपसे प्रार्थना है कि आप जो कुछ भी करना चाहते हैं, आज करें और अगाध पुण्य प्राप्त करें। आप जातीय प्रेम की होली जलाकर उसकी राख न उड़ावें! मै आपसे दोनो हाथ जोड़कर यही माँगता हूँ कि आप लोगो मे और भेद-भावना न भरे।

टिप्पणी—भारत-दुर्दशा का इससे भी अधिक उत्कृष्ट पद क्या होगा।

९-शब्दार्थ—पसीजै—द्रवित होवे।

भावार्थ—सत्यनारायण कविरत्न कहते हैं कि हे प्रभो! हमारे तन और मन में अनेको प्रकार की जो वेदनायें व्याप्त हो रही हैं वह अब नही सही जाती। हे प्रभो! हम इस यातना को कब तक सहें, सहने की भी एक अवधि होती है, आप कुछ बतायें तो सही। हे दीनबन्धु! हमारी यह दीनदशा देखकर आपका हृदय क्यो नही द्रवित होता? हे प्रभो! गजेन्द्र का दुख दूर करने के समय आपने तनिक भी विलम्ब नही किया पर हे करुणानिधि! बताइए, अपने भक्तो पर करुणा करने में आपको क्यो आलस्य हो रहा है? यदि आपके पद-चिह्नो के अनुगामी भक्त भी कर्मयातना भोगें तो बताइए फिर आप किस बात के स्वामी हैं? क्या आपने अपनी 'विरद-बानि' त्याग तो नही दिया जिसके कारण हम जैसे अनाथो की आपने कुछ भी सुधि नही ली। वेद कहते हैं और सभी पुराण गाते हैं कि आप सभी प्रकार के भय और ताप को दूर करने वाले हैं, शरण में आये भक्तों की तनिक पीड़ा भी आपके हृदय को तीर के समान वेधती है फिर हम जैसे शरणापन्न दुखी व्यक्ति को आपने न जाने क्यो भुला दिया है। (आपके कार्यों से जान पड़ता है कि) आपने अपना "शरणागत वत्सल" नाम व्यर्थ ही धारण कर रक्खा है।

टिप्पणी—इस पद मे सत्यनारायण जी ने अपने दुखी जीवन का करुण चित्र खीचा है।

१०—**शब्दार्थ**—घनस्याम—कृष्ण मेघ, घनस्याम—श्रीकृष्ण; स्वेत पटल—श्वेत पर्दा या श्वेत वस्त्र (श्वेत रग के बादलो से तात्पर्य है); सुरभी—गाय; तड़ितहिं—विद्युत को

सन्दर्भ—आकाश में घिरे हुए कृष्ण-मेघ को देखकर सत्यनारायण जी कहते हैं—

भावार्थ—हे कृष्ण-मेघ ! बताओ घनश्याम श्रीकृष्ण जी कहाँ हैं ? इस समय आकाश में धूल मण्डरा रही है पर बताओ कि प्रभु की वह चरण-धूलि कहाँ है जिसे हम आठो पहर सिर पर धारण किये रहें। हे मेघ ! आपने श्वेत वस्त्रो को धारण तो किया है पर बताओ (श्वेत रंग की) सुख देने वाली सुन्दर गायो को आपने कहाँ छोड़ दिया है ? मोरो के स्वर इस समय चारों ओर बड़ी तीव्रता के साथ सुनाई दे रहे हैं पर बताओ कि मोर का मुकुट धारण करने वाले श्रीकृष्ण जी कहाँ हैं ? तुम बार-बार गर्जना कर रहे हो पर बताओ सभी प्रकार के कोमल स्वरो को उत्पन्न करने वाली मुरली कहाँ है ? तुम क्षण-क्षण मे बिजली चमकाते हो पर पीताम्बर का नाम तक नही बताते।

टिप्पणी—मेघ मे भगवान कृष्ण के समान श्यामता आदि देखकर उससे श्रीकृष्ण का पता पूछा गया है। काव्य-दृष्टि से यह पद बहुत ही भावपूर्ण है।

भ्रमरदूत

११—**शब्दार्थ**—श्रीराधावर—श्रीकृष्ण ; मनभावन—प्यारे।

भावार्थ—जो रसिकों में श्रेष्ठ, मनोहर और विशुद्ध प्रेम के निकुञ्ज हैं तथा जो सब को प्रसन्न करने वाले, सबके हृदय को सुखी बनाने वाले, नित्य, आनन्द के भण्डार, रँगीले और साँवरे हैं एवं जिसे व्रज प्यारा है और व्रज जिसे प्यार करता है ऐसे श्रीकृष्ण जी अपने भक्तों की समस्त आपत्तियो को नष्ट कर देते है।

१२—**शब्दार्थ**—जन-मन रंजन—मनुष्य के मन को प्रसन्न करने वाले।

भावार्थ—कंस को मारकर पृथ्वी का बोझ हलका करने वाले, दुष्टों को मारकर उनका उद्धार करने वाले, विशुद्ध विज्ञान को प्रसारित करने वाले, वैदिक धर्म का उद्धार करने वाले, भक्तों के मन को प्रसन्न करने वाले, सुन्दर, गुणों के आगर, सब के चित्त को विमोहित करने वाले, संसार के भय को नष्ट करनेवाले नागर नन्दकिशोर मोहन जब द्वारिका गये।

१३–शब्दार्थ—पाती—चिट्ठी , निसरतु—बहता था।

भावार्थ—द्वारिका चले जाने के पश्चात् जब माता यशोदा को श्रीकृष्ण जी के कुशल-क्षेम की चिट्ठी न मिली तो वे कृष्ण के विरह में व्याकुल होने और बिलखने लगीं तथा मारे स्नेह के उन्हें रोमाञ्च होने लगा। प्यारे भगवान् के दर्शन बिना वे क्षण-क्षण पर अधीर होती जा रही थीं। वे दिन-रात आँसू गिराती और श्रीकृष्ण के विषय में सोचती रहती थीं। वे बहुत ही बेचैन थीं और उनके हृदय में शान्ति न थी।

१४–शब्दार्थ—लोल—सुन्दर ; अमल—शुद्ध ; दादुर—मेंढक ; रसाल—मीठी।

भावार्थ—जब पवित्र सावन मास आया तो नव मेघ-घटा घिर आयी तब मुनियों के मन को मोहित करने वाली, सुन्दर रसमयी छटा छा गयी। उस समय नदी, पोखर और ताल चारों ओर जल भरे सुन्दर प्रतीत हो रहे थे और इस विशुद्ध जल में सुन्दर मेंढक दिखायी पड़ते थे जिनकी मधुर वाणी से छटा चुई पड़ रही थी।

१५–शब्दार्थ—द्रुमन—वृक्षों से ; केकी—मोर , निरखि—देखकर।

भावार्थ—व्रज में कहीं पर सुन्दर लता वृक्षों से लिपट-कर सुशोभित हो रही थीं और (कही पर) धुले हुए पत्तो की अनुपम सुन्दरता प्रकट हो रही थी। आकाश में वादल की घटा देखकर पपीहे का घूम-घूमकर पी-पी पुकारना, कोयल का मधुर वाणी मे कू कू करना और मोर का कुञ्जो मे कुहककर किलोल करना वहुत सुन्दर लग रहा था।

१६–शब्दार्थ—जनम्यौ पैदा हुआ है ; छिति—पृथ्वी।

भावार्थ—आकाश में इन्द्रधनुष और पृथ्वी मे इन्द्रवधूटियों की सुन्दर शोभा देखकर संसार में ऐसा कौन है जिसका मन मोहित न हो। पावस की पवित्र फुहारें चारो ओर शोभा पा रही थी। इन समय पृथ्वी पर ऐसी मनमोहनी शोभा विखरकर सुशोभित हो रही थी जिसका कुछ ओर छोर ही न था।

टिप्पणी—१४, १५, १६ सख्यक पदों का प्रकृति-वर्णन वहुत ही उत्कृष्ट हुआ है। इसमे प्रकृति के वास्तविक स्वरूप का निदर्शन है।

१७–शब्दार्थ—लखि परियत—दिखायी पड़ता है।

भावार्थ—कुञ्जो मे कही पर सुख वढ़ाने वाला, सरल और मनोहर प्रतीत होने वाला तथा (सबके) हृदय को प्रसन्न करने वाला पवित्र वालिका-समूह दिखायी पडता था। सबको अत्यन्त प्यारी लगने वाली ये गोपिकायें हिंडोरों पर चढ़कर झूलती थीं और कोकिल के कंठ को लज्जित करती हुई सुन्दर मल्हार राग गाकर भ्रातृ-प्रेम को बढ़ा रही थी।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में कवि ने बालिकाओं द्वारा मल्हार गवाकर भ्रातृ-प्रेम की वृद्धि किया है। इससे उसके सरल और पवित्र चरित्र का पता लगता है।

१८-शब्दार्थ—भौरा—लट्टू की भाँति नचाया जाने वाला एक प्रकार का खिलौना।

भावार्थ—इस समय बच्चे हर्षित होकर अपने वक्षस्थल को खोले हुए चारों ओर से चले आ रहे थे और मन्द-मन्द मुस्कराते हुए आनन्दमयी बातें आपस में कर रहे थे। इस समय कोई बच्चा अपनी 'धौरी' और 'धूमरि' गायों को पुकारता हुआ वृक्ष की डाल हिला रहा था और कोई भौंरा व चकई नचाता हुआ सुन्दर अलाप कर रहा था। इस प्रकार सभी बालक विविध प्रकार की क्रीडा कर रहे थे।

टिप्पणी—इसमें बाल-प्रकृति का चित्रण हुआ है।

१६-शब्दार्थ—लाल—पुत्र, श्रीकृष्ण।

भावार्थ—प्रकृति सौन्दर्य की इस राशि को देखकर माता यशोदा को पुत्र श्रीकृष्ण की सुधि आ गयी। वे प्यारे कृष्ण के बिना बहुत व्याकुल हो रही थीं और उनके शरीर में चक्कर आ रहा था। वे बेसुध होकर, माथा पकड़कर अत्यधिक सोच करने लगीं और कृष्ण का नाम ले-लेकर आँसू बहाने लगीं। उनकी दशा देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों विरह की धार आँसुओं के बहाने निकल रही हो।

टिप्पणी—इसमें यशोदा का वात्सल्य प्रेम दर्शनीय है।

२०-शब्दार्थ—चहुँधा—चारों ओर।

भावार्थ—श्रीकृष्ण के विरह की नयी वेलि यशोदा के हृदय मे हरी हो गयी। सोचने और अश्रु गिराने के कारण इस वेलि मे कोपले निकलने लगीं। इसके पश्चात् प्रेम रस से सिंचित होकर यह लता शरीर रूपी वृक्ष में लिपट गयी फिर तो कनखे फोड़कर फैलती हुई शरीर रूपी वृक्ष में चारो ओर फैल गयी। इस प्रकार यशोदा जी के व्यथा की कथा अवर्णनीय हो गयी।

टिप्पणी—इस छन्द में विरह-वेलि का सांगोपाग रूपक दिया गया है।

२१-शब्दार्थ—मोद—प्रसन्नता।

भावार्थ—यशोदा जी खिन्न मन से कहती हैं कि मैं प्यारे कृष्ण को कहाँ ढूँढने जाऊँ? कब मैं ललककर अपने प्यारे लालन को वक्षस्थल से लगाऊँ? मैं कब अपनी छाती ठडी करूँ, मैं कब पुत्र के दर्शन पाऊँ और कब मन ही मन प्रसन्न होऊँ? मैं दौड़कर किसके हाथ श्याम का सदेश भेजूँ।

२२-शब्दार्थ—गमायौ—खोया।

भावार्थ—यशोदा जी कहती हैं कि मैने एक अक्षर तक नही सीखा है और स्वप्न मे भी मुझे कुछ ज्ञान नही मिला है। मेरा सारा जीवन दूध-दही खाने में नष्ट हुआ है। मेरे माता-पिता ने मुझे शिक्षा न देकर शत्रुवत् कार्य किया है। मेरी सारी आयु तो अब बीत गयी फिर अब कुछ भी कहने से क्या होगा। हाय! मेरे मन की मन ही में रह गयी।

२३-शब्दार्थ—विद्या-पगी—विद्या मे प्रवीण।

भावार्थ—हमने अपने गुरु गर्ग ऋषि द्वारा सती अनु-

सुधा की पुण्य-कथा सुनी है और परम पुनीता सती-सीता की प्राचीन सुन्दर कथा को सुनी है। स्त्री-रत्न मैत्रेयी जी ब्रह्म-विद्या को विशद रूप से जानने वाली थीं, शास्त्रों में पूर्ण निपुण गार्गी तथा सुचतुरा मंदालसा सभी नारियाँ पढ़ी थीं।

२४—**शब्दार्थ**—अभिमत—चाहा हुआ, वांछित।

भावार्थ—इन नारियों ने ही संसार में जन्म लेने का फल पा लिया है और हर प्रकार के वांछित विचारों को स्थिर रूप से अपना लिया है। संसार की स्त्रियों के सामने इन्होंने अपना अनुपम और उज्ज्वल उदाहरण रक्खा है। विद्या का बल मिलने के कारण उनके पुण्यस्वरूप का पवित्र यश दशों दिशाओं में छा गया है।

२५—**शब्दार्थ**—निरादरत—निरादर करते हैं; अनारी—अशिक्षित, पातक—पाप; अजमाइ कें—परीक्षा करके।

भावार्थ—जो अज्ञानी नारी-शिक्षा का निरादर करते हैं वे स्वदेश की अवनति के प्रचण्ड पाप के अधिकारी होते हैं। मेरा हाल देखकर सब लोग समझ लें और परीक्षा करके देखें कि नारी विद्या-बल पाकर किस प्रकार अबला से सबला हो जाती है।

टिप्पणी—२३, २४ और २५ वें छन्द में नारी शिक्षा पर बहुत जोर दिया गया है।

२६—**शब्दार्थ**—पूत—पुत्र; बिया—अब।

भावार्थ—यशोदा कहती हैं कि मैं किस को दूत बनाकर पुत्र श्रीकृष्ण के पास भेजूँ जो बातों में फुसलाकर उन्हें हमारे

पास ले आवे। श्रीकृष्ण सबका साथ छोड़कर मथुरा से सात समुद्र पार (बहुत दूर) द्वारका में चले गये हैं, भला वहाँ कौन जायगा।

२७—**शब्दार्थ**—रमनीय—सुन्दर।

भावार्थ—ऐ वज्रमारे अक्रूर तेरा नाश हो। तू बातो में बहकाकर हमारे प्राणप्यारे श्रीकृष्ण को ले गया। वह सुन्दर स्वरूप कोई क्यो नही लाकर दिखाता। हाय! श्याम और बलराम—दोनो सुन्दर मूतियाँ कहाँ हैं, मैं उनके लिये व्याकुल हो रही हूँ।

टिप्पणी—माता यशोदा की खीझ और मन की व्यथा इस छन्द में देखते ही बनती है।

२८—**शब्दार्थ**—तन-सुरति—शरीर की सुधि।

भावार्थ—यशोदा जी उदास और निराश होकर अपने तन की सुधि-बुधि भूल गयी थी। वे वात्सल्य प्रेम में भरी हुई पुत्र-दर्शन के लिए लालायित थीं। जब श्याम ने देखा कि उनकी माँ दुखित होकर विलाप कर रही हैं तो वे भ्रमर का परम मनोहर रूप धारण करके भागते-भागते माता के पास आ पहुँचे।

२९—**शब्दार्थ**—तिहिं दिसि—उसकी ओर।

भावार्थ—महारानी यशोदा भ्रमर को ठिठकते और (अपने पास) रुकते हुए देखकर अपने मन में सोचने लगी कि यह भ्रमर मेरे दुख से अत्यन्त दुखी हो रहा है। यह सोच-कर वे आँखो में आँसू भरकर चकित चित्त से उसकी ओर

ताकने लगी और प्रभु के वियोग से अत्यन्त आर्त, कातर और भ्रमित हो वे उस भ्रमर से गद्‌गद वाणी मे कहने लगी।

३०—शब्दार्थ—विपिन विहारी—वन मे भ्रमण करने वाले।

भावार्थ—ऐ भ्रमर! सुन। तेरा शरीर मेघ के समान श्याम है और श्रीकृष्ण का शरीर भी मेघ के समान श्याम है। इधर तेरी मधुर गुंजार है और उधर उनकी मधुर मुरली की ध्वनि है। इधर तेरी कमर मे पीली रेखा है और उधर उनका सुन्दर पीताम्बर है। तुम दोनों कुञ्ज-विहारी हो, एक ही भाँति शृंगार करने वाले और रसिक हो।

टिप्पणी—भ्रमर और श्रीकृष्ण की समता इस पद में बहुत सुन्दर ढंग से की गयी है।

३१—शब्दार्थ—ढिग—पास, षटपद—भ्रमर।

भावार्थ—माता यशोदा कहती हैं कि ऐ भ्रमर! मैं इसी कारण से तुझे अपने प्यारे कन्हैया के पास भेज रही हूँ। मैं अभी अपनी जो व्यथा सुनाऊँगी उसे तू उस (श्रीकृष्ण) से कह देना। तुम स्वयं कृपालु बनकर दौड़ते हुए द्वारिका जाना और यह संदेश देकर अपना काम बनाकर शीघ्र ही वहाँ से लौट आना।

३२—शब्दार्थ—बिसारी—भुना दिया।

सन्दर्भ—श्रीकृष्ण से कहा जाने वाला संदेश माता यशोदा अपने भ्रमर-दूत से कहती हैं—

भावार्थ—सुना जाता है कि माता और जन्मभूमि सम

को स्वर्ग से भी प्यारी होती है, हे साँवरे कृष्ण ! तुमने सब की सुधि भुला दी है और सब का मोह त्याग दिया है। तुम्हारी बुद्धि कैसी पलटी हुई है जो इस प्रकार का बर्ताव कर रहे हो अथवा तुमने कोई विष-भरी नवीन नीति का अनुसरण किया है जिसका प्रभाव तुम्हारे ऊपर इस प्रकार पड़ा है।

३३-**शब्दार्थ**—पोंछन सैं—पोंछने से, चारु—सुन्दर; वाकी—उसकी ओर; कितहुँ सों—कही से।

भावार्थ—हे भ्रमर ! जब श्रीकृष्ण मुँह में लगे मक्खन को (चोरी प्रकट न होने देने के लिए) हाथ से पोछ देते थे तब जिस मक्खन की चिकनाहट बहुत सुन्दर दिखायी पड़ती थी उसको तथा मधुवन के श्यामल तमाल वृक्षों को, जो कि पहले हृदय को प्रफुल्लित कर देते थे। देखने से हमारी चित्तवृत्ति उसी (कन्हैया) की ओर खिच जाती है और ऐसा प्रतीत होता है मानों कन्हैया कही से भागकर अपने सखाओ से बातें करता हुआ घर की ओर आ रहा है।

टिप्पणी—इस मे स्मरण अलङ्कार है।

३४-**शब्दार्थ**—मनहरन—मनोहर।

भावार्थ—यमुना किनारे कदम्ब वृक्षों के वन वही हैं, अनेको रग के मनोहर लता-मण्डप भी वही हैं और परम आनन्द देने वाली कुन्द को निकुजें भी वही हैं पर श्रीकृष्ण के विना यह समस्त प्राकृतिक सौन्दर्य विष के समान घातक है। मेरा चित्त तो श्रीकृष्ण के पास ही धरा हुआ है।

३५-**शब्दार्थ**—बौरे—पगले।

भावार्थ—हाय ! एक श्रीकृष्ण विना पलाश उदास है,

अशोक भारी शोक में ग्रस्त है, आम का वृक्ष विक्षिप्त है और माधवी लता दुखी हो रही है। ये सब अपना प्रफुल्लित होना छोड़कर कृष्ण विरह से व्यथित हो. आकुल हो रहे हैं। इस प्रकार जड़ भी चैतन्य जीवों की भाँति श्रीकृष्ण विरह में दीन और उदास दिखाई पड़ रहे हैं।

टिप्पणी—यहाँ कवि सारी प्रकृति को श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल बता रहा है।

३६—शब्दार्थ—मुराय रहीं—सूख रहीं।

भावार्थ—हे कृष्ण! तुम सघन वंशीवट की छाया में नित्य नवीन तृण डालकर जिन गौओं को खिलाते थे और अपने कर-कमलों से जिन्हें सहलाते थे, वे यहाँ पर तुम्हारी अत्यन्त सुधि करती हैं, उनका सारा शरीर सूख रहा है। वे गायें आँखों से आँसू गिराती हैं, मारे व्याकुलता के पेट भर तृण नहीं चरती हैं और मुँह उठाये घूमती हैं।

टिप्पणी—"उठाये मुँह फिरैं" में कवि ने गौओं की प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण प्रकट किया है।

३७—शब्दार्थ—हीय—हृदय में।

भावार्थ—ये अनबोलनी दीन गौएँ बड़े ही दुख से अपना जीवन बिता रही हैं और तुम्हारे दर्शन की लालसा से चकित-चित्त हो वे इधर-उधर देखा करती हैं। फिर तुम ऐसी गौओं को एक संग ही क्यों छोड़ रहे हो? हे भ्रमर! तुम श्रीकृष्ण से कहना कि प्यारे कृष्ण संसार में गौओं को पालने वाले के नाम से प्रसिद्ध होकर उनकी ममता इस प्रकार त्यागते हुए क्या तुम्हारे हृदय में लज्जा नहीं आती?

३८—शब्दार्थ—घनस्याम—श्रीकृष्ण घनस्याम—श्याम मेघ।

भावार्थ—नीले आकाश को देखकर उसमे श्रीकृष्ण के, नील-कमलवत सुन्दर शरीर का भान होता है और मनमोहिनी विजली को देखकर कृष्ण के पीताम्बर का भ्रम होता है। इस प्रकार श्याम वर्ण के मेघो मे श्रीकृष्ण का भ्रम करके ब्रज के वहुत से मोर आनन्द मे भरे कुहक रहे हैं।

टिप्पणी—मोर की प्रसन्नता का कारण कृष्ण-मेघ होता है पर यहाँ कवि ने श्रीकृष्ण को ही मोर की प्रसन्नता का कारण माना हैं। इस में प्रतीप अलङ्कार है।

३९—शब्दार्थ—अजहुँ—अब भी, काढ़त—निकालते हुए।

भावार्थ—मिश्री मिला हुआ यहाँ जैसा ताजा और अत्युत्तम मक्खन शहर मे कहाँ मिल सकता है? अब भी जब मैं नित्य सवेरे के समय मक्खन काढती हूँ तो हृदय मे यही लालसा वनी रहती है कि नित्य मक्खन खानेकी आदत रखने वाले माखन-चोर कही मक्खन न मिलने के कारण भूखे न रह जाते हों।

टिप्पणी—मातृ-हृदय की कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति है।

४०—शब्दार्थ—विधि—प्रकार; दारुण—कठिन।

भावार्थ—उसके विना ग्वालों को उनकी भलाई की बात कहकर कौन सुनावे और समता और वन्धुत्व की बातें कौन सिखावे। यद्यपि ये हर प्रकार के कठिन अत्याचार सहन करते

है पर कोई अगुवा न होने के कारण ये एकदम मूर्ख बनकर मुख से कुछ भी नहीं कहते हैं।

टिप्पणी—इस छन्द में आजकल के किसान-बन्धुओं की दारुण दशा का चित्र खींचा गया है।

४१-शब्दार्थ—भीरु—डरपोक।

भावार्थ—भय से त्रस्त होने के कारण इनका हृदय इतना भीरु और सकुचित हो गया है कि इनको अपनी जाति की उन्नति में कुछ भी विश्वास नहीं रह गया है। इनमें अब न तो पहले की सी सुन्दर (सामाजिक) रीतियाँ हैं और न पहले का-सा पारस्परिक प्रेम है। ये अपनी ढपली और अपना राग जोर से अलाप रहे हैं अर्थात् कोई किसी की नहीं सुनता है।

टिप्पणी—इसमें 'अपनी ..राग' का प्रयोग बड़ा सुन्दर हुआ है।

४२-शब्दार्थ—मरजाद—मर्यादा।

भावार्थ—अब अपने देश की वेष-भूषा और भावना की रक्षा होने की कोई आशा नहीं रह गयी है। जो व्रजभाषा अभी तक बच रही थी वह भी नष्ट हुई जा रही है। आस्तिकता की बुद्धि नष्ट होती रही है। सारी मर्यादा बिगड़ती जा रही है। सभी के हृदय में अनोखे ढंग के भिन्न-भिन्न प्रकार के आनन्द लेने की लालसा हो रही है।

टिप्पणी—देश-दुर्दशा का क्या ही सजीव चित्र है।

४३-शब्दार्थ—छोहरी—छोकरी, लड़की ; गरबाय—गर्वीली।

भावार्थ—नवीन और सुन्दर लता झुकी होने से शोभा पाती है और नवोढ़ा स्त्री शीलवती होने से सोभा पाती है। इनकी कोमलता और विनीतता की सभी प्रशसा करते हैं किन्तु अब की गोपी मस्ती मे भर कर इतराकर चलती हैं और किसीकी कुछ भी परवाह नही करती है। आजकल जहाँ देखिए वहाँ अल्पवयस्का युवतियाँ इस प्रकार गर्व मे फूली फिरती हैं।

टिप्पणी—आजकल की कन्याओं की दुर्दशा इस पद मे दिखाई गयी है।

४४-शब्दार्थ—सपनो भयो—स्वप्न हो गया।

भावार्थ—प्यारे कन्हैया! तुमने अपने कर-कमलो पर गोवर्द्धन-धारण करके इन्द्र को लज्जित किया था, वह अब तुम्हारी अनुपस्थिति मे अपना बदला चुकाना चाहता है। अब बादल नियमपूर्वक वृष्टि नही करते है और पानी स्वप्न हो गया है जिसके कारण समस्त गोकुल निवासी दिन-दिन व्याकुल हो रहे हैं!

टिप्पणी—आजकल की अनावृष्टि का क्या ही करुणा-पूर्ण चित्र है!

-शब्दार्थ—मौन साधी—चुप्पी लगायी।

भावार्थ—ससार मे गोरी मेमो को गोरे पुत्र अच्छे लगते हैं पर मुझ जैसी काली कलूटी को तुम जैसे काले रंग के पुत्र ही भाते हैं तुम मेरी आँखो के तारे हो। उन मेमों के लिए तो सारा संसार सहायक है पर मुझ दुखिया का कौन

सहारा है ! बताओ, जो तुम मौन साध रहे हो इससे कौन-सा स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हो।

४६–**शब्दार्थ**—तिहारो–तुम्हारा।

भावार्थ—तुम्हारा वृन्दावन अब पहले की भाँति नहीं रह गया है, इसके चारों ओर अनेक प्रकार के परिवर्तन हो चुके हैं। घने जङ्गलों को काटकर वहाँ नये चौरस खेत बनाये गये हैं। निधुवन और सेवाकुञ्ज देखने मात्र के लिये रह गये हैं अब गायें कहाँ चरगी ?

टिप्पणी—ब्रज की वर्तमान दशा का सही चित्र इसमें अंकित है।

४७–**शब्दार्थ**—लखाई—दिखाई पड़ता है।

भावार्थ—जमुना मे भी पहले की सी गहराई नहीं रह गयी है। जहाँ पहले जल था वहाँ अब स्थल है, और जहाँ पहले स्थल था वहाँ जल दिखायी पड रहा है। जहाँ पहले कालीदह था वहां अब उज्ज्वल रेत चमक रहा है और जगह-जगह झाऊ उगे हुए हैं, इन सब के बीच मे काछियों और मालियों ने अपना-अपना खेत बना लिया है।

४८–**शब्दार्थ**—दिनन के फेर सों—समय पलटने से।

भावार्थ—यहाँ नित्य ही अकाल पड़ रहा और चारों ओर काल का चक्र चल रहा है। यहाँ कहीं भी जीवन का आनन्द नहीं दिखाई पड़ रहा है। चारों ओर यथेच्छाचार और मनमानी का बोलबाला हो रहा है तथा समय पलटने से आर्य-समाज दिन-दिन क्षीण और नष्टभ्रष्ट हो रहा है।

४९–शब्दार्थ—खासी विपदा—घोर विपत्ति।

भावार्थ—जो मातृभूमि की ममता त्याग कर प्रवासी हो जाते हैं उन्हें विदेशी लोग खूब तंग करके विपत्ति-ग्रस्त बना देते हैं। घर की ओर न लौटने पर हृदय की कठोरता सिद्ध होती है और लौटने पर गौरव नष्ट होता है। सब की गति साँप छछूँदर की सी हो रही है और सभी मन ही मन व्याकुल हो रहे हैं।

टिप्पणी—इस छन्द मे प्रवासी भारतीयो की दुर्दशा दिखलायी गयी है।

५०–शब्दार्थ—दीप सिखा—दीपक की लौ।

भावार्थ—दीपक की लौ के समान जो जातीय-ज्योति टिमटिमा रही है वह विदेशी वायु का झोका लगने के कारण अबला के समान बुझना चाहती है। किसी के हृदय में लेशमात्र भी प्रेम शेष नहीं है। हाय! अब घर की दशा किससे कही जाय? अब देश मे ही परदेश हुआ समझिये।

५१–शब्दार्थ—अधरान की—ओठो की।

भावार्थ—(श्रीकृष्ण के) अधरों पर रक्खी हुई वह मुरली, उनकी वह बाँकी चितवन, सघन कुञ्ज की वह छटा और जमुना की उस हिलोर की अनुपम शोभा का क्या कहना!

५२–शब्दार्थ—सगुन—सगुण।

भावार्थ—पीताम्बर पहने हुए, सुन्दर माला लिए हुए और मन्द-मन्द मुस्कराते हुए घनश्याम का सगुण रूप मेरे मन में बसे।

५३—शब्दार्थ—उछाह—उत्साह; चाह—इच्छा।

भावार्थ—हे प्यारे श्रीकृष्ण! तुम आओ, बैठो और मुस्कराओ जिससे हमारे हृदय में उमंग उत्पन्न हो। हम पागल प्रेमियों के लिए इससे अधिक और क्या चाहिए?

टिप्पणी—पागल प्रेमियों की यह मौज खूब रही!

५४—शब्दार्थ—असार—सारहीन।

भावार्थ—हमने कर्म, धर्म और संयम का पूर्ण रहस्य जान लिया है पर इस असार संसार में एक प्रेम ही सब का सर्वस्व जान पड़ा है।

५५—शब्दार्थ—स्यामा-स्याम—राधाकृष्ण।

भावार्थ—ऐ मन! तू अपने चित्त में उत्पन्न हुई चिन्ता और संसार के नेम का भार त्यागकर प्रेम से राधा-कृष्ण की शरण ग्रहण कर।

५६—शब्दार्थ—नमौं—नमस्कार करता हूं।

भावार्थ—भगवान विष्णु के अवतार श्री राधापति माधव, श्री सीतापति रामचन्द्र और मत्स्य आदि को मैं नमस्कार करता हूँ। ये सभी देवता हमारे सांसारिक दुखों को दूर करें।

५७—शब्दार्थ—सुखधाम—सुख के भण्डार।

भावार्थ—समस्त विश्व मे व्याप्त हल और मूसल धारण करने वाले, रेवती पति, श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता, सुखधाम बलराम जी की मै वन्दना करता हूँ।

५८—शब्दार्थ—भववाधा—सांसारिक दुःख।

भावार्थ—ससार की घोर विपत्तियो को दूर करने वाले हे राधाकृष्ण! आप दुख-दारिद्रय को नष्ट कर मेरे हृदय में मंगल-भावना का विकास करें।

५९—शब्दार्थ—निज पदन की—अपने चरणो की।

भावार्थ—हे वृषभानु की पुत्री, भगवान श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति, और उनकी प्यारी राधिका जी! आप अपने चरणो की परम पवित्र भक्ति मुझे प्रदान करें।

६०—शब्दार्थ—स्रवन—कान।

भावार्थ—कानों मे मकराकृत कुण्डल और शरीर मे पीताम्वर धारण किये हुए गोपीपति श्रीकृष्ण जी आप श्री राधिका सहित मेरे हृदय में वास करें।

६१—शब्दार्थ—पियूप—अमृत।

भावार्थ—'मुनिगण अमृत को छोड़कर अब मेरे चरणो का रस क्यों पीवेंगे।' ऐसा जानकर वालक श्रीकृष्ण अपने पैर के अँगूठे को स्वयं अघाकार पीते हैं।

टिप्पणी—प्रायः शिशु अपने पैर के अँगूठे चूसा करते हैं ; यहाँ बालक श्रीकृष्ण की यह मनोहर क्रिया सहेतु बतायी गयी है ;

'६२-**शब्दार्थ**—लखात—दिखाई देता है।

भावार्थ—ससार में चन्द्रमा और कमल का वैर अनुचित कहा गया है। इसीलिए श्रीकृष्ण भगवान ने कमल को अपने चरणों में और चन्द्रमा को मुख में प्रतिष्ठित किया है,

टिप्पणी—इसमें प्रतीप अलकार है।

❀समाप्त❀

लेखक के दो शब्द

'व्रजमाधुरीसार की टीका' का द्वितीय संस्करण बिलकुल तैयार हो जाने के बाद प्रकाशक द्वारा मुझे सूचना मिली कि 'व्रजमाधुरीसार' के पाठ्य-विषयों में चार कवियों का अध्ययन और बढ़ा दिया गया, अतः आप तुरंत इन कवियों के कविताओं की टीका लिखकर भेज दीजिये ताकि पुस्तक के अंत में जोड़कर पाठ्य-विषय की पूर्ति कर दी जावे, नहीं तो इस अधूरी टीका से विद्यार्थियों की हानि होगी। अस्वस्थ होते हुए भी मैं प्रकाशक के आग्रह और विद्यार्थियों की आवश्यकता को टाल न सका। फलस्वरूप 'टीका' आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

—सदानन्द मिश्र

विषय-सूची

सूचना

पाठ्यक्रम में तीन वर्षों के लिये उपर्युक्त ४ कवियों का अध्ययन और बढ़ाया गया है। ब्रजमाधुरीसार की टीका के इस नये संस्करण में इन चार कवियों की टीका जोड़ दी गई है किन्तु जो विद्यार्थी ब्रजमाधुरीसार की टीका का पिछला संस्करण खरीद चुके हैं उनकी सुविधा के लिये इन चार कवियों की टीका, अलग पुस्तकाकार छपा ली गई है उसका मूल्य केवल १) रक्खा गया है। जिन पाठकों के पास टीका का पिछला संस्करण हो वे यदि चाहें तो इन चार कवियों की टीका अलग से मँगाकर पुस्तक की पूर्ति कर सकते हैं।

—प्रकाशक

१०—हित हरिवंश

ब्रजभाषा के प्राचीन साहित्य मे श्री हितहरिवंश जी का अपना गौरवपूर्ण स्थान है। अष्टछाप के भक्त कवियो ने जिस प्रकार भगवान श्री कृष्ण की प्रेमलीला का गायन अत्यन्त मधुर वाणी मे किया है, उसी प्रकार आपने भी अपनी प्रेमवाणी से आनन्द की सरिता बहा दी जिसमें प्रेम से अवगाहन करके ससार के त्रयताप से सतप्त अनेक प्राणी शान्ति पा सके। आप राधावल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं, इसके पूर्व आप माध्व सम्प्रदायके अनुयायी थे। कहा जाता है कि आपको स्वय श्री राधिका जी ने स्वप्न मे मंत्र दिया था तभी से आपने अपना एक अलग राधावल्लभीय सम्प्रदाय चलाया। वृन्दावन से आपको बहुत प्रेम था, यही पर संवत् १५८२ मे आपने श्री राधावल्लभ जी की मूर्ति स्थापित की थी, यहाँ पर आप विरक्त भाव से रहा करते थे। भगवती श्री राधिका जी के प्रति आप में अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी, उन्ही की उपासना मे आप सदैव तल्लीन रहा करते थे। यहाँ पर आपने भक्ति-भाव समन्वित जो रचना की है, वह ब्रजभाषा की शृगार है।

समीक्षा—आपने श्रीराधा-कृष्ण के विशुद्ध शृंगार का वर्णन किया है। आप के रास वर्णन में प्रकृति-पुरुष का दिव्य सयोग सघटित हुआ है। आपकी रचनाएँ परिमाण की दृष्टि से बहुत नही है। आपके पदों का संकलन 'हित चौरासी' नाम से सकलित किया गया है, इसमे कुल चौरासी पद हैं। इसके अतिरिक्त धर्म-सिद्धान्त का निरूपण करने वाले कुछ फुट-

कल पद भी आपके प्राप्त होते हैं। १७० श्लोकों का 'राधा-सुधा-निधि' काव्य भी आपका रचा कहा जाता है पर कोई-कोई इसे किसी अन्य की रचना मानते हैं। जो हो, आप संस्कृत और ब्रजभाषा के मर्मज्ञ विद्वान थे। आपके पदों में स्थान-स्थान पर सरसता का स्रोत परिलक्षित होता है। संगीत और माधुर्यगुण का सजगता से निरूपण करने के कारण आप श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार माने जाते हैं। वर्णन-प्रचुरता आपके पदों में पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। अपने पदों में आपने वृन्दावन के लीला विहारी श्रीकृष्ण व राधिका के यौवन रूप का ही वर्णन किया है। विनय के भी कुछ पद मिलते हैं। वास्तव में आप के द्वारा ब्रज-भाषा के काव्य-श्री की अच्छी वृद्धि हुई है। सेवक जी और ध्रुवदास आदि आपके कई शिष्य ब्रजभाषा के उत्तम कोटि के कवि हुए जिन्होंने अपनी रचनाओं से ब्रजभाषा काव्य के भंडार को बढ़ाया।

भाषा और शैली—इनकी भाषा प्रसाद और माधुर्य गुण से युक्त है। इनकी भक्ति-भाव से भरी हुई पदावली में संगी-तात्मकता अधिक पायी जाती है। उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलकारों का भी यथास्थल इन्होंने सुन्दर प्रयोग किया है। मुहाविरों का प्रयोग इनकी भाषा में बिलकुल नहीं पाया जाता है और शब्दों को तोड़-मरोड़कर कृत्रिम बनाने का प्रयास भी इनमें नहीं दिखाई देता है।

१०—हित हरिवंश

—:०::०::०:—

सिद्धांती पद

१—**शब्दार्थ**—प्रपंच = माया। बच = बचकर। काल व्याल = काल रूपी सर्प। स्याम-स्यामा = श्री कृष्ण और राधा। सिर नायो = सिर झुकाया।

भावार्थ—श्री हित हरिवंश जी कहते हैं कि माया से बच कर रहना चाहिए क्योंकि यहाँ विश्व मे सब काल रूपी सर्प का भोजन है। हृदय में यह समझ कर मैंने श्री कृष्ण और राधिका के चरण-कमलो से सिर झुकाया।

२—**शब्दार्थ**—घट = देह। पिय = प्रियतम। बिछुरंत = बिछुड़ते ही। सरअंतर = सरोवर का बीच। काल निसि = काल रूपी रात्रि। घन = बादल। गज्ज = गर्जन। तुव = तुम्हारे। बदन = मुख। भोर = प्रातः। किहि भाय = किस भाव से। बाद = व्यर्थ का वाद-विवाद। बकई = बोलता है।

भावार्थ—अपने प्रियतम से निकुंज में बिछुड़ते ही चकई के प्राण उसके देह के अंदर कैसे रहे। एक तो सरोवर का बीच और काल रात्रि है तथा दूसरे बादल की तीव्र गर्जना और तड़-पन है। घोर गर्जन और तड़पन लिए हुए ऐ मेघ! तेरे मुख पर लज्जा नहीं आती, नेत्रों को जल-विहीन करके तू प्रातः काल किस भाव से दिखाई पड़ता है। श्री हित हरिवंश जी कहते हैं कि यद्यपि यह संदेह है कि चकई के प्राण उसकी देह में अवस्थित हैं

पर पता नहीं सारस कौन ऐसा विचार करके व्यर्थ में बकता है।

टिप्पणी—ऐसा प्रवाद है कि सन्ध्या होते ही चकवा-चकई का वियोग हो जाता है, दोनों को इसी वियोग में सारी रात काटनी पड़ती है। उपर्युक्त पद्य में वियोगिनी चकई की अत्यंत दारुण दशा दिखलाई गयी है। मेघों की गरज, तड़पन और सरोवर का अन्तर सभी उसकी वियोग की दशा को इस पद में गंभीर बना रहे हैं।

३—शब्दार्थ—सरषप=राई जैसी चीज। कंचन हल=सोने का हल। वारि=जल। मनुज-देह=मानव-शरीर।

भावार्थ—ऐ प्राणी! तेरा शरीर सुन्दर रेखा खचित पात्र है, विमल चन्दन का ईंधन लगाकर और इस पात्र को तू अमृत से परिपूर्ण कर इसमें राई जैसी अत्यन्त तुच्छ वस्तु को बलपूर्वक राँधना चाहता है। अद्भुत घर पर तू कष्ट पूर्वक सोने का हल चलाकर ऐ मन्द! तू विष बोना चाहता है और जल सींचकर उसे बढ़ाना चाहता है। श्री हित हरिवंशजी कहते हैं कि तू मानव देह को प्राप्त किये हुये है इसलिये गुरु के चरणों में मन लगा और जहाँ तक तुझसे हो सके तू सभी प्रपंचों को त्याग कर गोविन्द श्रीकृष्ण का नाम भज।

टिप्पणी—इसमें विरक्ति भावना भरी गयी है और रूपक द्वारा धार्मिक सिद्धांत के प्रतिपादन की चेष्टा की गई है।

४—शब्दार्थ—कुत्सित=बुरे। परतिय=दूसरे की स्त्री। पुंज=समूह। व्रजपति=श्रीकृष्ण

भावार्थ—इसलिये भैया! तुझे मेरी शपथ है। तू भगवान श्रीकृष्ण के गुणों का संचय कर। तू मेरी शिक्षा सुन, अनेक प्रकार के कुत्सित व्यर्थ के विमार्गों से, दूसरे के धन से और दूसरे की स्त्री से अपने को बचाकर रख। तू अपने हाथ में काँच

के टुकड़े लेकर गुण की पुंज श्रीकृष्ण रूपी मणि को छोड़ दे रहा है। इस जगत के बीच तुझे कलियुग के कपटी, कुटिल और अधम व्यक्ति मिलेंगे। तुझे मेरी शपथ है तू भगवान श्रीकृष्ण के गुणों का संचय कर; इससे तुझे इस लोक तथा परलोक दोनों में सुख की प्राप्ति होगी।

टिप्पणी—इस पद में संसार के समस्त विकारों की ओर से मन हटाकर उसे भगवान के सद्गुणों की ओर लगाया गया है।

५–शब्दार्थ—मानुष = मनुष्य। तन = शरीर। व्रजनाथ = श्रीकृष्ण। दर्वी = कलछी। पचीसा = पाँसा।

भावार्थ—मनुष्य का शरीर प्राप्त करके तुम श्रीकृष्ण का भजन करो। ऐ मूर्ख ! तू कलछी लेकर भी क्यों अपने हाथ को जला रहा है। हित हरिवंश जी कहते हैं कि तू मोह के विषय रस और प्रपंच आदि में क्यों उलझा पड़ा हुआ है। बिना स्वर्ण के यह लोहे का पचीसा क्यों कर चलने लगे (भाव यह है कि लोहे का पचीसा—पाँसा—कदापि नहीं चल सकता।)

टिप्पणी—इसमें मानव देह को सार्थक बनाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण के भजन की बात कही गयी है।

६–शब्दार्थ—रङ्ग राची = रङ्ग में लिप्त हुई। माची = मच गयी, फैल गयी। धारणा = निश्चयात्मक भावना। साँची = सत्य। हौं = मैं। नाहिन = नहीं है।

भावार्थ—कोई गोपी कहती है कि मैं तो अब श्रीकृष्ण के रङ्ग में रँग गयी हूँ। अब तो दशों दिशाओं में यह बात फैल गयी है कि कोई मेरी इस प्रेम-क्रीड़ा के पीछे न पड़े। यदि धारणा सच्ची नहीं है तो कोई अनन्त कन्त करे (बहुदेवोपासना करे) पर उससे क्या ? मेरा यह प्राण भले ही उनके सिर के ऊपर

निछावर हो जाय, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं, मैं तो खुलकर नाच रही हूँ। मेरे जागते वा सोते समय श्रीकृष्ण की प्रेम-मणि मेरे ऊपर उस प्रकार रहा करती है जैसे पचीसा या पच्ची के ऊपर सुवर्ण। मैं अब किस के डर से डरूँ अर्थात् मैं किसी के डराने से अब नहीं डर सकती। मैं कच्ची बुद्धि की नहीं हूँ।

टिप्पणी—इसमें भगवान् श्री कृष्ण के प्रति अनन्य और दृढ़ अनुराग व्यक्त किया गया है।

७-शब्दार्थ—प्राणनाथ = प्राणों के स्वामी। अवतार-कदंब = अवतारों का समूह। अनतु = अन्यत्र। सचु = सुख।

भावार्थ—कोई भले ही किसी देवता पर अपने चित्त की आस्था जमाये रहे। पर मेरे प्राणों की मालिक श्री राधिका जी हैं, मैं उनके प्रति शपथ खाकर कहता हूँ कि जो अपने हृदय में दृढ़ व्रत धारण करके भगवान के अन्य अवतारों की वन्दना करते हैं वे भी जल-विहार के लीला-रस का पान करके उमंगित होकर लोक-मर्यादा का त्याग कर देते हैं। जो भगवान श्रीकृष्ण जैसे अमूल्य रत्न को खोकर घर-घर फिरते हैं, वे व्यर्थ में इस प्रकार किस हेतु की सिद्धि के लिये जीते हैं। श्री हित हरिवंश जी कहते हैं कि बिना श्री कृष्ण के प्रेम-रस का पान किये अन्यत्र सुख नहीं प्राप्त हो सकता।

टिप्पणी—इस पद में श्री कृष्ण के प्रेम-रस का पान करने के लिये कहा गया है।

८—शब्दार्थ—नन्दनन्दन = नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण। अनुदिन = नित्य। राती = लगी रहे।

भावार्थ—नन्द के पुत्र श्री राधिका जी के प्यारे पति, श्याम सुन्दर श्री कृष्ण जी की आरती कीजिए। यह आरती ऐसी हो

जिसमे भक्ति का दीपक हो, प्रेम की बत्ती हो; और आरती करने वाले की साधु-संगति मे नित्य अनुरक्ति हो। ऐसी आरती व्रज युवतियों के मन मे भली प्रतीत होती है। श्री हित हरिवंश जी भगवान् श्याम की (आरती) लीला का गायन करते हैं।

टिप्पणी—यह पद आरती के समय का है।

९–शब्दार्थ—तनहिं=शरीर को । मनहिं=मन को । भेव=भिगो दो। कल्पतरु=देववृक्ष, कहा जाता है कि इस के नीचे बैठकर जो कामना करे वह तत्काल सफल होती है।

भावार्थ–श्री हित हरिवंश जी कहते हैं कि यदि तुम सुख चाहते हो तो श्रीकृष्ण रूपी कल्पवृक्ष का सेवन करो। तुम अपने शरीर को सत्संग में लगाओ और मन को श्री कृष्ण के प्रेम रस मे भिगो दो।

१०–शब्दार्थ–निकसि=निकलकर। परस्पर=आपस में। अंस=कंध। राधावल्लभ=श्रीकृष्ण।

भावार्थ–कुंज से निकलकर खड़े हुए और बाहुओं को परस्पर कंधे पर रक्खे हुए वेष में भगवान श्रीकृष्ण के मुख कमलो की ओर श्री हित हरिवंश जी देखते हैं।

११–शब्दार्थ–निहकाम=निष्काम।

भावार्थ–सब से हित कीजिए, मन को निष्काम रखिए, वृन्दावन में विश्राम कीजिए और भगवान् श्रीकृष्ण की सुमूर्ति का हृदय मे ध्यान कीजिए और उनका नाम मुख से उच्चारण कीजिए।

१२–शब्दार्थ–रसना=जिह्वा । अन=अन्य । फुटौ=फूट जाय। बैन=वाणी।

भावार्थ—राधा-कृष्ण के सिवा यदि मैं दूसरे का नाम लूँ तो जिह्वा कट कर गिर पड़े, उनकी मूर्ति को छोड़कर यदि दूसरी ओर देखूँ तो मेरी आँखें फूट जायँ। श्रीराधिका के यश की वाणी को छोड़कर यदि कानों से दूसरी बातों को सुनूँ तो हे प्रभो! मेरे कान बहरे हो जायँ।

टिप्पणी—इस दोहे में जिह्वा, नेत्र और कान आदि इन्द्रियों को भगवत्-कार्य के लिए अर्पित किया गया है।

१३—**शब्दार्थ**—सुभग=सुन्दर। वेनु=वंशी। स्याम-घन=मेघ की भाँति साँवले श्रीकृष्णजी। मुरज=एक प्रकार का बाजा। वृषभानु-नन्दिनी=श्रीराधिकाजी। नवल=सुन्दर। व्रजराज=श्रीकृष्ण। रिझायौ=प्रसन्न किया। नभनायक=देवता।

भावार्थ—आज वृन्दावन में अच्छा रास रचा गया है। यमुना के अत्यन्त सुन्दर और पवित्र तट पर श्रीकृष्ण ने वन्शी को बजाया। वहाँ पर व्रज बालाओं के सुन्दर कंकन, किंकिनि और नूपुर की ध्वनियों को सुनकर पक्षी और मृगों को बहुत आनन्द हुआ। युवति-वृन्द के बीच में स्थित होकर श्रीकृष्ण ने सारंग राग से चारों दिशाओं को गुँजायमान कर दिया। ताल, मृदङ्ग, उपङ्ग, मुरज और डफ आदि बाद्यों ने मिल कर आनन्द के समुद्र को और भी अधिक बढ़ा दिया। इस समय श्री राधिका जी ने अनेक प्रकार की मुद्राओं में अपने सुन्दर अंग-अंग की शोभा को दिखाया। अपने अभिनय (नृत्यकला की भाव-भंगी) की निपुणता से, नेत्रों की लटकन से और भृकुटि-संचालन से उन्होंने आनन्द को भी नाच नचा दिया। नृत्य की गति के शब्द तत्थेई, तायेई के साथ ही सुन्दर गति से नृत्य करके राधिका जी ने अपने प्रियतम कन्हैया को प्रसन्न कर लिया। इस समय देवराज इन्द्र ने

दुन्दुभी बजाया और अन्य देवता गण प्रसन्न होकर इस समय पुष्प-वृष्टि करने लगे। श्री हितहरिवंशजी कहते हैं कि रसिक श्रीकृष्ण ने संसार में अपना यश-वितान तान दिया।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में रासलीला का अनूठा चित्र अंकित हुआ है।

१४—शब्दार्थ—भावै=अच्छा लगता है। ठौर=स्थान। भये चाहे=होना चाहते हैं।

भावार्थ—हमारे प्यारे जो-जो कृत्य करते हैं, वही-वही मुझे अच्छा लगता है और जो-जो रुचिकर लगता है प्यारा कन्हैया वही-वही किया करता है। मुझे तो प्यारे के नेत्रों में अपना अच्छा ठौर मिलता है और प्यारे कन्हैया भी मेरे नेत्रों के तारे होना चाहते हैं। मेरे शरीर, मन और प्राणों से भी प्रियतम कन्हैया अधिक प्रिय हैं और प्रियतम मुझ जैसे करोड़ों प्राणों से (करोड़ो प्राणप्यारे भक्तो से) हार गये हैं। श्री हितहरिवंशजी कहते हैं कि हंस-हंसिनी के समान श्यामल-गौर वर्ण वाले श्री कृष्ण और राधा का प्रेम अटूट है। ये इतने अभिन्न हैं जैसे जल और उसकी तरंग। इनके प्रेम में भला कौन कैसे अलगाव उत्पन्न कर सकता है।

टिप्पणी—इस पद में राधाकृष्ण की एकरूपता और भक्त की तल्लीनता का मनोरम वर्णन किया गया है।

१५—शब्दार्थ—तापै=उस पर। तै=तू ने। बन फूल= जंगल के फूल।

भावार्थ—ऐ छबीली राधा! तू मेरी बात सुन। तू ने अगाध आनन्द सिन्धु सच्चिदानन्द भगवान श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लिया है। ब्रह्मा और शिवजी ने जिन भगवान श्री कृष्ण को

वंदना की है उन्हीं से तूने वन के पुष्पों को विनाया है। तेरी सुन्दरता का वर्णन नहीं हो सकता। श्री हितहरिवंश तेरा कुछ यश गाते हैं।

१६—**शब्दार्थ**—विमल=शुभ्र। राजत=शोभा पाते हैं। कचन-बेलि=सोने की लता। सुर-जोपा=देवांगना। दिवि=आकाश।

भावार्थ—शरद ऋतु की विमल रात्रि है, आकाश में चन्द्रमा शोभायमान है। इस समय श्रीकृष्ण की मुरली मधुर-मधुर ध्वनि कर रही है। श्रीकृष्ण जी तमाल के श्यामल वृक्ष की भाँति शोभा पा रहे हैं और व्रजबालायें सुन्दर लताओं की तरह शोभा पा रही हैं। ये बहुत से भूषण धारण किये हैं और अनेकों रंग की साड़ी पहने हुए हैं। इन नारियों के अंग से सुगन्धि फैल रही है। देवांगनाएँ प्रसन्न होकर पुष्प-वृष्टि कर रही हैं और आकाश में दुंदुभी का सुन्दर घोष सुनाई पड़ रहा है। श्री हितहरिवंश कहते हैं कि सकल सुखों के धाम राधा-रमण श्रीकृष्णजी और श्री राधिकाजी अपने मन में मगन हैं

टिप्पणी—इसमें शरत् कालीन रास की ओर संकेत है।

१७—**शब्दार्थ**—नीकी बनी=अच्छा शृंगार किये हुए। नागरी=स्त्री। जूथ=समूह। अंसु=कंध। रहसि=एकान्त में।

भावार्थ—आज राधिका नागरी ने अच्छा शृंगार किया है। व्रज युवतियों के समूह में ये रूप, चतुरता, शील, शृंगार और गुण सब में सभी से बढ़कर हैं। उनके दाहिने हाथ में कमल है और वे अपना बाँया हाथ कंधे पर रक्खे हुए हैं। वे व्रज युवतियों में मिलकर मधुर स्वर से अत्यन्त सरस राग गा रही हैं। वे समस्त विद्याओं में पारंगत हैं। श्री हित हरिवंश जी कहते हैं कि नव कुंज के बीच एकांत में वे कन्हैया से मिलकर बड़भागिनी बन रही हैं।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में श्री राधिका के सौन्दर्य, गुण आदि का उल्लेख किया गया है।

१८-शब्दार्थ—थोर=कम। राजति=शोभा पाती हैं। मंजरी रसाल=आम का बौर। विथकित=चकित। अलि=भ्रमर। मधु=पराग। माधवी=वासती लता। सरोज=कमल। पिक=कोयल। कीर=तोता। पुलिन=तट।

भावार्थ—वसत ऋतु है, इस समय वृन्दावन मे अत्यन्त आनन्द है। कुशल किशोर श्रीकृष्णजी और नव नागरी श्री राधिकाजी अत्यन्त शोभा को प्राप्त हैं। युगल रूप के आस-पास चमेली की लता और आम की मजरी है। गुलाल और माधवी के मधु के लोभ मे भ्रमर चकित हो रहे हैं। यहाँ पर चम्पा और वकुल का समूह है और अनेक प्रकार के कमल है। केतकी आदि पुष्पों से यहाँ की पृथ्वी मदवाली है, कामदेव प्रसन्न है और सुन्दर, शीतल, मन्द और सुगंधित वायु वह रही है। आम बौरे हुए हैं। कोयल और तोते शब्द कर रहे हैं। यमुना के पवित्र तट पर सुन्दर बना निकुज है। इस सुख पुज एकांत मे सुन्दर किसलयो की शैया रची गयी है। मंजीर, मुरज, डफ, मुरली, मृदंग, उपंग, बीणा और सुन्दर मुँहचंग बाजे बज रहे हैं। ब्रजबालाओं के मुख पर कस्तूरी, चन्दन, कुकुम और अबीर आदि है। अगर की सत से उनका चीर अत्यन्त सुगन्धित है। श्रीकृष्ण सुन्दर सरस धमार राग गाते हैं। मारे आनन्द के पत्नी और मृग आदि पुलकित हो रहे हैं यहाँ तक कि यमुना का प्रवाह भी बन्द हो गया है। हित हरिवंश जी कहते हैं कि हंस-हंसिनी (नर-नारी) समाज सभी मिलकर ऐसे ही युग-युग राज्य करें। (युग- युग मे प्रेम-प्रवाह प्रवाहित करें)

टिप्पणी—वृन्दावन में रास के समय का यह अपूर्व चित्र है।

१६-शब्दार्थ—स्यामा = श्री राधिका जी। नखसिख = पैर से लेकर सिर तक। कबरी = चोटी। गूथित = गुही हुई। कच = केश। अरध विधु = अर्धचन्द्र। सीमत = केश रचना। कोदण्ड = धनुष। सर = बाण। ताटंक = कान का आभूषण। गंड = गाल का ऊपरी भाग।

भावार्थ—व्रज की नव बालाओं के समूह में मुकुट-मणि के सदृश्य श्री राधिकाजी ने आज शृंगार किया है। चरण के नख से लेकर सिर की चोटी तक उनके प्रत्येक अंग के माधुर्य से आज श्रीकृष्ण मोहित हो उठे हैं। पीत कमल जैसे मुखवाली श्री राधिकाजी के गुहे हुए केश कबरी (चोटी) रूप में इस प्रकार शोभा पाते हैं मानो केश में लगी हुई अर्धचन्द्र की चन्द्रिकाओं को सर्प ग्रस रहा हो। प्रियतम के केश-रचना करते समय श्री राधिका के सिर से (सात्विक भाव के कारण) रस की पनारी बहती है। श्री राधिका की भौंह काम का धनुष है, नेत्र बाण हैं और उनमें लगी कज्जल की पतली रेखा ही उस बाण की अनी (नोक) है। उनके मस्तक में तिलक लगा हुआ है, गडस्थल पर कर्ण का आभूषण शोभा पा रहा है। नासिका कमल-कणिका के समान है। दाँत कुन्द की कलियों के समान हैं, सरस अधर पल्लव वत् हैं और प्रियतम के मन को शांति देने वाले हैं। श्री हित हरिवंशजी कहते हैं कि श्री राधिका आज बहुत प्रशंसित हैं। उनकी अत्यन्त विशद और घनी कीर्ति विश्व के पापों का नाश करने वाली है, यह गायन करने और सुनने में कानों को सुखकर लगती है।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में श्री राधिकाजी की वेणी की सुन्दरता का वर्णन अत्यन्त मनोरम है।

२०-शब्दार्थ—निवारै = रोके। पावस = वर्षा ऋतु।

नादहिं मन दिये = बाजे की ओर मन लगाये। नाइक = नायक। नवल मोहन = श्रीकृष्ण। अपनपौ = आपा।

भावार्थ—प्रेम किसी की मर्यादा के विषय मे विचार नही करता। बिथके हुए मन को मार्ग-कुमार्ग का अनुसरण करते हुए कौन रोके। (भाव यह है कि मन को प्रेम के भले-बुरे मार्ग पर चलने में कोई रोक नहीं सकता।) वह तो हठात् प्रिय की ओर ऐसे चला जाता है जैसे वर्षा ऋतु की नदी जल से उमड़ कर समुद्र के सम्मुख चली जाती है अथवा जैसे नाद की ओर ध्यान लगाए मृग को बहेलिया प्रकट होकर मारता है या जैसे पतिंगा अपने शरीर को दीपक की लौ मे जला देता है। श्री हितहरिवंश जी कहते हैं कि निपुण नायक श्रीकृष्ण के बिना कौन आपा खोकर किसी से अनुराग कर सकता है। (भाव यह है कि श्रीकृष्ण ऐसे योग्य नायक हैं कि उनसे सभी अपनत्व खोकर प्रेम करते हैं।)

टिप्पणी—इस पद मे प्रेम मार्ग का वर्णन किया गया है।

२१—शब्दार्थ—रसना = जिह्वा। बदनारविंद = मुख-कमल।

भावार्थ—भाई! सुन्दरता की सीमा श्रीकृष्ण को देखो। ब्रज की नव बालाओ के समूह मे श्रीराधिका नागरी उनकी ओर देखकर अपनी गर्दन नीची कर लेती हैं अर्थात् लज्जित होती है। यदि कोई करोड़ो कल्प तक जीवित रहे और उसको करोड़ों जिह्वाएँ प्राप्त हों तो भी राधिका के मुख-कमल की शोभा वर्णित नहीं की जा सकती। देवलोक, भुवलोक और रसातल की बात सुनकर कवि समूह का मन डरता है कि उनके अंग-अंग के सहज माधुर्य की उपमा किससे दी जाय। श्री हितहरिवंश जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण जी यद्यपि प्रताप, रूप, गुण, अवस्था, बल आदि

में श्रेष्ठ हैं पर ये आनंदसिन्धु श्रीकृष्ण श्रीराधिका के भ्रू-विलास वश में पशु के समान परवश होकर दिन भर विथके से (छके हुए) डोलते हैं।

२२-शब्दार्थ—प्रणऊँ=प्रणाम करता हूँ। मननि=मन में। सौरभ=सुगन्धि। परिरंजित=चिह्नित। उकति=उक्ति, कथन।

भावार्थ—पहले मैं अपनी बुद्धि के अनुसार अत्यन्त रमणीय श्रीवृन्दावन धाम की वन्दना करता हूँ जो श्री राधिकाजी की कृपा विना सब के मन में अगम्य है। शरद और वसतादि ऋतुओं में यह यमुना के जल द्वारा सिंचित होता है। यहाँ अनेक प्रकार के पुष्पों की सुगन्धि पाकर भ्रमर समूह मस्त रहते हैं। आम के अरुण पल्लवों के बीच में बैठे हुए सुन्दर कोयल और तोते मधुर शब्द करते हैं। सखियों का समूह आनन्द विभोर होकर नृत्य कर रहा है। शीतल, मन्द और सुगन्धि युक्त सुहावनी वायु वह रही है। लाल, नीले और स्वेत वर्ण के पुष्प-वध जहाँ तहाँ खिल रहे हैं। रसिक और किशोर वय के श्रीकृष्णजी यहाँ रास खेलते हैं। जब वे दोनों (श्याम-श्यामा) तड़के उनींदे हुए उठते हैं तो उनकी बाहुओं में (कर्ण के आभूषणों आदि के) चिह्न बने रहते हैं। इस समय रबाव, मुरज, डफ और मधुर मृदग सुन्दर ताल के साथ बजता है, इन बाजों के मध्य में मुहचग और बाँसुरी की ध्वनि अत्यन्त सरस वाणी की गति सूचित करती है। दोनों गौरी राग की अलाप लेकर चाचरि गाते हैं। भृकुटि रूपी धनुष पर वे चितवन रूपी बाण चढ़ाकर सबके मन मृग को बलपूर्वक वेध देते हैं। दोनों हाथ की तालियों को बजाते हैं, इधर-उधर घूमकर वे विचित्र लटकनि लेते हैं। वे 'हो हो' ध्वनि के साथ होरी बोलते हैं और अत्यन्त आनन्द से पिचकारी मारते हैं। श्री राधिकाजी- रसिकवर श्रीकृष्ण पर गुलाल छोड़ती हैं। प्रियतम

श्रीकृष्णजी पिचकारी से ताक ताक कर रंग छिड़कते हैं और उनके मुख को कुंकुम पूर्ण कर देते है। कभी-कभी चन्दन वृक्ष के बने हुए सुन्दर हिंडोले पर चढ़कर दोनो झूलते हैं और विविध प्रकार से कलोल करके प्रसन्न होते हैं। युगल सरकार की हित-चिन्तक चेरियो के हृदय में आनन्द नही समाता। वे अपने नेत्रों से इस शोभा को देखकर तृण तोरती हैं और बलिहार होती हैं।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में रास, होली और हिंडोला आदि का विशद वर्णन है।

२३ शब्दार्थ—त्रिभंगी = तीन जगह से टेढ़ी। किरीट = मुकुट। स्रवन = कान। मंडित = सुशोभित। चंगी = स्वस्थ। सरसीरुह = कमल। वेनु = वन्शी। मनसिज ताप = कामदेव की तपन। जमुना-पुलिन = जमुना तट। रस सागर = आनन्द सिन्धु श्री कृष्ण। बन माहीं = बन में।

भावार्थ—श्रीकृष्णजी कामदेव के समान और त्रिभंगी हैं। उन्होंने मुनियो के मन को अपनी भक्ति में रँग दिया है। गम्भीर-गुणों को धारण वाले श्री कृष्णजी मन को मोहित करने वाले हैं, और मेघ की भाँति प्रकट रूप से परम आनन्द के वितरण करने वाले हैं। उनके सिर पर मुकुट है, कानो में मणि जटित कुण्डल है, उनका वक्षस्थल वनमाला से विभूषित है। शरीर मे पीताम्बर पड़ा हुआ है। स्वस्थ, कमर में धातु-अनुरंजित सुन्दर किंकिणी सुशोभित है। उनके नख मे सूर्यकांत मणि सी चमक है, उनके चरण कमलवत् हैं। वे त्रिभंगी मोहन, मदन रूप हैं। श्री कृष्ण जी वंशी बजाते है, उसके स्वरों द्वारा वे व्रजबालाओं को बुलाते हैं, वंशी का शब्द सुनकर व्रजबालाएं अपने घर, पति और भाई आदि को छोड़कर श्रीकृष्ण के पास आती हैं। मदन

गोपाल श्रीकृष्णजी उन्हें अपना दर्शन देकर उनकी काम-तपन को दूर करते हैं। उनका मुख आनन्दित है, वे तिरछी चितवन किये रहते हैं और अत्यन्त सरस और मधुर ध्वनि में गाते हैं। श्री कृष्णजी अपने मधुमय श्यामल अधरों पर वंशी रखकर बजाते हैं। वन में विमल कल्पतरु की छाया में रास रचा गया। यमुना के तीर पर शुभ्र कल्पवृक्ष है, शरत् की सुकोमल रात्रि है, सुन्दर चन्द्रमा उदित है। शीतल, मंद और सुगन्धसनी वायु बह रही है, यहाँ नन्दलाल श्री कृष्ण रास-क्रीड़ा करते हैं। मृदंग की मनोहर ध्वनि, किंकिणी के शब्दों में अद्भुत ताल के साथ मिलता है। यमुना के तट पर वन में आनन्द सिन्धु श्रीकृष्णजी ने रास रचा है।

टिप्पणी—इसमें भी रास-लीला का एक रमणीय चित्र अंकित किया गया है।

नागरीदास

ब्रज में इस नाम के कई भक्त कवि हो गये हैं पर सब से अधिक ख्याति कृष्णगढ़ नरेश महाराज सावतसिंह जी (उपनाम नागरीदास) ने प्राप्त की है। ये ब्रज में आकर वल्लभ कुल में दीक्षित हुए थे। साधु जीवन व्यतीत करने के पूर्व ये राज-कार्य मे व्यस्त रहा करते थे, पर इसमे इनका मन बिल्कुल न लगता था। धीरे-धीरे इनकी विरक्ति बढ़ती गयी और सब सुखों की सार हरि-भक्ति के सुख को पाने की लालसा मन में बढ़ती गयी; फिर क्या था, जग की बेगार ढोने का सा नृप-कार्य छोड़कर ये वृन्दावन आये। जब तक ये वृन्दावन नही आये थे तब तक के दिन किस प्रकार व्यर्थ मे ही बीते थे। इस पर पश्चाताप करते हुए इन्होने लिखा है—

किते दिन बिन वृन्दावन खोये।
यो ही वृथा गये ते अब लौं, राजस-रंग समोये ॥
छाँड़ि पुलिन फूलनि की सेज्या, सूल सरनि सिर सोये।
भीजे रसिक अनन्य न दरसे, बिमुखनि के मुख जोये ॥
इक रस ह्याँ के सुख तजि कै, ह्वा कबौ हँसे कबौं रोये।
कियो न अपनो काज, पराय भार सीस पर ढोये ॥
पायो नहिं आनन्द-लेस मैं, सबै देस टकटोये।
'नागरिदास' बसे कुंजन मैं, जब सब विधि सुख भोये ॥

वृन्दावन मे आने पर जब वहाँ के संतों ने इनका कृष्णगढ़ के राजा का व्यावहारिक नाम सुना तो वे उदास होकर दूर ही खड़े रहे पर जब उन्हें नागरीदास सा प्यारा नाम ज्ञात हुआ तो

सभी इनसे प्रेमपूर्वक मिले और प्रेम से इनकी कविताएँ सुनी।

वर्ण्य-विषय और समीक्षा—इनके बनाये ७५ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, इनमें दो ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। शेष का संग्रह 'नागर समुच्चय' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इनका मुख्य वर्ण्य-विषय श्री राधा-कृष्ण की भक्ति है। इनका प्रेमावेग इनकी कविताओं की पंक्ति-पंक्ति में छलक रहा है। 'मनोरथ मंजरी' में आपने अपना जो प्रेमाभिलाष व्यक्त किया है वह बहुत ही मर्म स्पर्शी है—

कब दुखदाई होयगो, मोको बिरह अपार।
रोय-रोय उठि दौरिहौं, कहि-कहि किन 'सुकुवाँर'॥
ता दिन ही तें छुटिहैं, खान पान अरु सैन।
छीन देह, जीरन बसन, फिरिहौं हिये न चैन॥
नैन द्रवै जलधार बह, छिन-छिन लेत उसाँस।
रैन अँधेरी डोलिहौं, गावत जुगल उपास॥
चरन छिदत काँटेन तें, स्रवत रुधिर, सुधि नाहिं।
पूँछत हौ फिरिहौं भटू, खग, मृग, तरु बन माहिं॥
हेरत टेरत डोलिहौं, कहि-कहि स्याम सुजान।
फिरत-गिरत बन सघन में, यौं ही छुटिहैं प्रान॥

कहीं-कहीं पर इनकी रचना में भावों की अत्यन्त रमणीय व्यंजना हुई है। 'इश्क चमन' आदि में आपने फारसी ढंग की आशिकी कविता की है, इसमें प्रेम के प्रतीक भी आपने फारसी काव्य से ही ग्रहण किये हैं। 'शृङ्गार सागर' में श्री कृष्ण की मुरली पर विचित्र भाव-भंगी लिए जो रससिक्त दोहे लिखे गये हैं, वे अत्यन्त अनूठे हैं। ब्रज की प्रकृति का और भगवान श्रीकृष्ण के बाल विनोद, बन विनोद, रस-रास एवं नखशिख

का वर्णन आपने उत्तमता से किया है। विनय और वैराग्य सम्बन्धी पद भी प्रचुर मात्रा में आपने लिखे हैं।

भाषा और शैली—अपनी कविता मे आपने कई प्रकार के छन्दों जैसे रोला, कवित्त, सवैया, दोहा, और अड़िल्ल आदि—का व्यवहार किया है। आपके पदो की भाषा अत्यन्त सरस और चलती हुई है। अनुप्रास के लालित्य की ओर भी आपने पर्याप्त ध्यान दिया है। आपने फारसी और उर्दू के शब्दो का बेधड़क प्रयोग अपनी कविता में किया है। शब्दों के काट-छाँट करने की रुचि आप में नहीं थी।

नागरीदास

१—शब्दार्थ—आन = अन्य। विधान = ब्रह्मा। मगन = डूबे हुए।

भावार्थ—भगवान श्रीकृष्ण की लीला-रस की मदिरा का कर्ण द्वारा पान करने के पश्चात् हमें अन्य प्रकार के ज्ञान-गजक की आवश्यकता नहीं रही। हमारी दृष्टि में अब ब्रह्मा, कुबेर, इन्द्र आदि सभी देवता दीन दिखायी पड़ते हैं, जो भगवद्भक्ति रूपी मदिरा को छककर पीते हैं वे ऐंठ नहीं प्रत्युत नम्रता ग्रहण करते हैं। भावनाओं के भोग में जो रात्रि-दिन डूबे रहते हैं, जिस के नेत्र भगवद्भक्ति में छके रहते हैं। नागरीदास जी कहते हैं कि वे ही प्रेम-मतवाले वास्तव में मतवाले कहे जा सकते हैं पर अन्य मदोन्मत्त व्यक्ति सच्चे मदमस्त या मतवाले नहीं हैं।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त में भक्ति-रसामृत को पीने वाले भक्त की प्रेमदशा का उल्लेख किया गया है।

२—शब्दार्थ—अति सीत में = बहुत ठंडक में। पग-आँगुरी = पैर की अँगुली।

भावार्थ—श्री नागरीदास जी कहते हैं कि वेद पुराण आदि सब कुछ पढ़ना व्यर्थ ही हुआ यदि उससे बुद्धि लँगड़ी हो गई अर्थात विभ्रम में पड़ गई। प्रेम से हाथ में काँगुरी लेकर अत्यन्त शीत में गंगा और गोमती में नहाते फिरे, गल्यका नदी में नहाकर गोदावरी में नहाया और अन्न का त्याग कर

केवल साग (फलाहार) खाने का व्रत लिया तथा अन्य पवित्र नदियों में भी स्नान किया पर मैं इन सब का महत्व उस समय तक नही मानता जब तक कि प्रेम की नदी मे पैर की उँगली नहीं डुबाई (भाव यह है कि जब तक हृदय प्रेम की सरिता में नहीं डूबा, उसमें प्रेम का संचार नही हुआ तब तक गंगा, गोमती आदि नदियों में स्नान करने का कुछ विशेष महत्व नही है।)

टिप्पणी—इस सवैये में भक्त के तीर्थ-स्नान का तब तक कोई महत्व नही माना गया जब तक कि वह भगवत् प्रेम की सरिता में पूर्ण रूपेण अवगाहन न कर ले।

३—शब्दार्थ—नाना मत = अनेक प्रकार के मत। मूढ = मूर्ख। बिवादनि = विवादो, शास्त्रार्थ के विवादग्रस्त विषयों। बारता = बात, शिक्षा।

भावार्थ—रे मनुष्य ! तू पुराणो के अनेक प्रकार के शुष्क मतों की बात क्यों सुनता है, ऐ मूर्ख ! तेरी उसमे क्या गति होगी ? उस में तो तेरी गम्भीर बुद्धि भी पगु बन जायगी। तू वेद के विवादों में कुछ पार न पा सकेगा, गगा के स्नान और दान आदि द्वारा पुण्य सचय की अपनी समस्त आशा तू त्याग दे। अन्य प्रकार की सिद्धियों की साधना करने से भी कुछ फल प्राप्त नहीं होगा। तू मेरी कही हुई इस सुन्दर वार्ता को स्वीकार करले—तू व्रज में तड़के जाकर अपने कोरे मन को वृन्दावन रूपी रंग के बर्तन के बीच रखकर राधा-कृष्ण की भक्ति रूपी रंग में उसको डुबा ले।

टिप्पणी—इस कवित्त में मनुष्य को अपना मन वृन्दावन में प्रसरित श्रीराधा-कृष्ण की भक्ति में लगाने के लिये कहा गया है। चार शास्त्र के वाद-विवादों और गगा-स्नानादि की व्यर्थता

सिद्ध की गयी है।

४—शब्दार्थ—छिनभग = क्षण में नष्ट हो जाने वाला। यातें = इसलिए। वृथा = व्यर्थ। गमाइए = खोइए।

भावार्थ—काल मनुष्य के शिर पर मँडराता है और उसके साथ साथ घूमता है। वायु में फैली हुई धुएँ की लहर के समान यह शरीर क्षण भर में नष्ट हो जाने वाला है। इसलिए अपनी दुर्लभ श्वास व्यर्थ में न खोइए और ब्रजनागर श्री कृष्ण का रात्रि-दिन गुणानुवाद कीजिए।

५—शब्दार्थ—चली जाति है = बीती जा रही। जगत-जंजाल = संसार के प्रपञ्च। घरियाल = घंटा।

भावार्थ—आयु सांसारिक प्रपंचों में पड़कर बीती जा रही है। घंटे की प्रत्येक घड़ी पुकार करके यही सूचित करती है कि समय को खोकर कोई काम न सिद्ध होगा प्रत्युत अंत में पछताना ही पड़ेगा इसलिए ब्रजनागर श्री कृष्ण का रात्रि-दिन गुणानुवाद कीजिए।

६-शब्दार्थ—महादुःख मूल = अत्यन्त दुख का कारण। भूल है = भूला हुआ है।

भावार्थ—पुत्र, पिता, पति और स्त्री आदि का मोह करना ही महान दुख का कारण है। ऐ मनुष्य! तू संसार को मृग-तृष्णा के समान देखकर भी क्यों इसमें भूला हुआ है? स्वप्न में राजा होने का कल्पित सुख पाकर मन में लालच न करना चाहिए इसलिए यही अच्छा है कि ब्रजनागर श्रीकृष्ण के गुणों का निशि दिन गायन कीजिए।

७-शब्दार्थ—निवारनो = रोकना चाहिए। विचारनो = विचार करना चाहिए।

भावार्थ—दूसरे से कभी झगड़ा-लड़ाई की कल्पना न करनी चाहिए, और काम के क्लेश का निवारण करना चाहिए। दूसरे की निन्दा करने, दूसरे से द्रोह करने की बात कभी न सोचना चाहिए। संसार के जञ्जाल रूपी पाठशाला मे अपने चित्त को न पढ़ाना चाहिए अर्थात् चित्त को सांसारिक उलझनो न फँसाना चाहिए। व्रजनागर श्रीकृष्ण के गुणो का गायन निशि दिन कीजिए।

८—शब्दार्थ—अन्तर = हृदय। सनमान = आदर।

भावार्थ—जिनके अन्तस्तल मे कुटिलता और कठोरता भरी हुई है उनके घर में साधु जन प्रतिष्ठापूर्वक नही रह सकते अतः ऐसे दुर्जनों की संगति मे भूलकर भी न जाइए और रात्रि दिन व्रजनागर श्री कृष्ण जी के गुणो का गायन कीजिए।

९—शब्दार्थ—दुखकूप = दुख का कुआँ। ढिग = पास।

भावार्थ—यह ससार दुख का कुआँ है, इसमें पड़कर किसी को चैन नही मिल सकता। यहाँ भगवान के भक्तों का सत्संग ही सदा सुखकर है, अतः इन्हीं साधु जनो के पास बैठ कर आनन्द से समय व्यतीत कीजिए और रात्रि दिन व्रज नागर श्रीकृष्ण के गुणो का गायन कीजिए।

१०—शब्दार्थ—दृगनि = नेत्रो। अनुराग = प्रेम।

भावार्थ—जिनके अंग-अंग श्रीकृष्ण भक्ति से परिपूर्ण हैं, जिनके नेत्रो में परम प्रेम का रङ्ग जगमगा रहा है उन संतों की सेवा करके भक्ति के दश प्रकारो को प्राप्त कीजिए और व्रज-नागर श्रीकृष्ण का गुणानुवाद रात्रि-दिन कीजिए।

टिप्पणी—श्री नागरीदास जी ने प्रस्तुत छन्द में भक्ति के दस प्रकारों का उल्लेख किया है पर श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन आदि भक्ति के नौ प्रकार ही विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

११—शब्दार्थ—द्रुम=वृक्ष। भुव=पृथ्वी।

भावार्थ—श्री कृष्ण की प्यारी भूमि ब्रज का वृन्दावन है, यहाँ वृक्ष फल और फूलों के भार से झूल रहे हैं। यहाँ की भूमि में दम्पति श्री राधाकृष्ण के चरण चिह्न अंकित हैं, अतः यहीं पर अपने को लुटाइए और ब्रजनागर श्याम का गुण रात्रि-दिन गाइए।

१२—शब्दार्थ—रमत=घूमते हैं। साँवरो=साँवले श्याम।

भावार्थ—नन्दीश्वर, बरसाना और गोकुल गाँव तथा वंशीवट के पास संकेत स्थल में श्याम रमण करते हैं। इसलिए इन स्थानों पर तथा गोवर्धन में और जमुना में स्थित राधाकुण्ड के समीप घूमिए। रात दिन ब्रजनागर श्रीकृष्ण के गुणों को गाइए।

१३—शब्दार्थ—पद-रज=चरण धूलि।

भावार्थ—यहाँ नन्द-यशोदा और वृषभानु की कीर्ति छायी हुई है। संसार में इनसे बड़ा अन्य कोई नहीं है। गो, गोपी और गोप आदि की चरण-धूलि को हृदय में लगाइए तथा उनका ध्यान कीजिए और ब्रजनागर श्रीकृष्ण का रात्रि दिन गुणानुवाद कीजिए।

१४—शब्दार्थ—छवि-मन=ओन्ह्नी। वदन=मुख। दिय

तारिकैं = उद्धार कर दिया।

भावार्थ—हारकर दामोदरलाल श्री कृष्णजी माता यशोदा द्वारा उलूखल-बन्धन मे पड़े। आपने अपने मुख के अन्दर सम्पूर्ण विश्व को यशोदाजी को दिखाया और यमलार्जुन वृक्षो का उद्धार कर दिया। आप की अनेक लीलाएँ है, इनका पार कहाँ मिल सकता है। व्रजनागर श्री कृष्ण का गुण रात्रि-दिन गाना चाहिए।

१५—**शब्दार्थ**—प्रलयकरन = प्रलयकारी।

भावार्थ—गोवर्धन मे किये जाने वाले महोत्सव (इन्द्र-पूजा) को मिटा कर जिसने इन्द्र को अत्यन्त क्रोधित कर दिया जिसके कारण इन्द्र की आज्ञा से प्रलयकारी मेघो ने व्रज में खूब जल-वृष्टि की। ऐसे समय में डूबते हुए व्रज की—जिसने गोवर्धन पर्वत को उंगली पर उठाकर—रक्षा की उस श्रीकृष्ण की शरण में जाइए। व्रज-नागर श्रीकृष्ण के गुणो का गायन रात्रि दिन करना चाहिए।

१६—**शब्दार्थ**—रसनि = जिह्वा में।

भावार्थ—श्री राधिका के प्रेम के कारण श्री कृष्णजी व्रज को क्षण भर के लिए भी नहीं छोड़ते। मन को प्रिय लगने वाले नागर श्रीकृष्णजी यहाँ नित्य विहार करते हैं। व्रज मे राधा-कृष्ण के मिश्रित यश से अपनी जिह्वा को रसवती कीजिए। व्रजनागर श्री कृष्ण का गुण रात्रि-दिन गाइए।

१७—**शब्दार्थ**—अघावनो = अघाना, तृप्ति मानना। पगावनो = पगाना चाहिए, पूर्ण करना चाहिए।

भावार्थ—व्रज की रसीली लीला का श्रवण करते हुए

कभी तृप्ति न माननी चाहिए। ब्रज के भक्तों की सत्संगति में प्राणों को लगाना चाहिए। श्री नागरीदास जी कहते हैं कि इस ब्रज में वास करके भगवत् कृपा का फल प्राप्त कीजिए और रात्रि दिन ब्रज नागर श्रीकृष्ण का गुणानुवाद कीजिए।

१८-शब्दार्थ—कलगान=सुन्दर गायन। सरद रजनी= शारदीय रात्रि। हासि=हँसी। एती=इतनी। स्रवन=श्रवण, कान।

भावार्थ—हम ब्रज की जीव हैं, ब्रज के बीच बसने में ही हमें सुख है। राधिका के प्यारे श्रीकृष्ण के लिए हमारा प्राण, शरीर, मन और नेत्र आदि सर्वस्व निछावर हैं। यदि हमें कहीं मुक्ति मिले तो वह भी स्वीकार नहीं होगी क्योंकि मुक्ति में ऐसा आनन्द कहाँ है, वहाँ कन्हैया की मृदुल मुस्कान कहाँ दिखायी देगी? वहाँ चन्द्रमा के प्रकाश से जगमगाती शरद की ऐसी रात्रि कहाँ मिलेगी; कहाँ ऐसी रास मण्डली मिलेगी जहाँ पर ब्रज-बालाओं के नूपुरों और वीणा की मधुर ध्वनि सुनाई दे? जमुना की लहरों का स्पर्श करती हुई कदम्ब वृक्षों की ऐसी पंक्ति कहाँ मिलेगी? कहाँ फागुन में ऐसा रंग विहार होगा जहाँ केशर-गुलाब आदि की कीच मिलेगी? छेड़खानी करने वाले श्याम के ऐसे मित्र कहाँ मिलेंगे और उनकी हँसी कहाँ दिखनाई पडेगी? ब्रज का सा गोरस, छाछ, टेंटी, छाक और रोटी आदि कहाँ मिलेगी? कहाँ श्रवण, कीर्तन आदि भक्ति के दश प्रकार जग-मगाते हुए दृष्टि गोचर होंगे? कहाँ हमारा अंग प्रेम से पुलकित गद्गद् और रोमांच युक्त मिलेगा? वृन्दावन धाम के बीच जहाँ उपर्युक्त इतनी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, ऐसे सुन्दर ब्रज से मैं अब क्योंकर विमुख होऊँ। श्री नागरीदासजी कहते हैं कि मैं मुक्ति आदि के अपार सुखों को नहीं चाहता। मेरी केवल यही इच्छा

है कि ब्रज में रहकर अपने कानो से ब्रज-वनिताओं की मीठी गालियाँ सुनूँ।

टिप्पणी—इस पद मे वृन्दावन धाम में प्राप्त होने वाले आनन्द का वर्णन किया गया है।

१९ शब्दार्थ—मुरलीवारो = वशी वाले जाम = याम, पहर।

भावार्थ—हमारा कन्हैया मुरली वाला है। विना वंशी, वनमाला, मोर मुकुट की चन्द्रिका के वह केवल नाम से नहीं पहचाने जाते। वे गोपों के वेश मे वृन्दावन में भ्रमण करते हैं और ब्रज के निवासियो की अभिलाषाओ को पूर्ण करते हैं इसी कारण प्रति दिन, प्रात पहर, प्रतिक्षण उनके प्रति चित्त में अनुराग बढ़ता जाता है। वे नंदीश्वर, गोवर्धन, गोकुल और बरसाना मे विश्राम किया करते है। नागरीदास जी कहते हैं कि उनसे द्वारिका-मथुरा आदि से क्या काम है (भाव यह है कि उन्हे द्वारिका, मथुरा आदि के राजसी ठाट-बाट से क्या काम है)

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में नागरीदास जी ने श्रीकृष्ण के ब्रजवासी रूप के प्रति अपनी अनन्यता प्रकट की है।

२० शब्दार्थ—थहराय = काँपता है। ठौर = स्थान।

भावार्थ—मुझसे उन श्रीकृष्ण की कथा कैसे कही जाय? कोई मुझसे उनकी कुछ कथा जानेगा, यह बात कहते हुए मेरा हृदय थहराने लगता है। हृदय में अब और प्रेम की अकथ कथा स्मरण नही आ रही है। वेद, स्मृति और उपनिषद आदि अध्यात्म सम्बन्धी ग्रन्थ का तो यहाँ प्रेम मार्ग में कुछ स्थान नहीं। उनकी प्रेम कथा के कहने की क्रिया मन में ही होती

है इसे नेत्र रूपी श्रोता ही सुनते हैं (भाव यह है कि नेत्र भगवान का जो मूर्ति देख सकते हैं उसके रूप का वर्णन नहीं कर सकते)। श्रीनागरीदास जी कहते हैं कि उसी प्रेम कथा को लोग अब पूछते हैं पर वह वाणी से कहते नहीं बनता।

टिप्पणी—इस पद की अंतिम पंक्तियों में गोस्वामीजी की 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' वाली चौपाई का सा भाव व्यक्त किया गया है। इससे प्रेम की अपार तल्लीनता का बोध होता है।

२१ शब्दार्थ—हय = घोड़ा। निसान = दुंदुभी। करमीड़ैं = हाथ मींजते हैं। विक्रम = वीरता। माखी = मक्खी। सचाल = चलती हुई। कपाल = कपार। असुहातो = अशोभनीय।

भावार्थ—मृत्यु होने के पश्चात् मृत राजा के वे पुत्र, नाती, घोड़ा और हाथी आदि कहाँ छूट जाते हैं। वे तो निशान बजाकर अकेले उस यमपुरी को चले जाते हैं जहाँ उनका न तो कोई सगा है और न साथी। दास-दासी राजा का मुख देखते ही रह जाते हैं और सब लोग हाथ मींजकर रह जाते हैं (उस समय किसी से कुछ करते नहीं बनता है) काल के पकड़ने पर उसने सब कुछ छोड़ दिया। उसके सारे भोग पदार्थ यहीं धरे रह गये। पहले जहाँ वन्दी जन राजा की वीरता की विरदावली का गायन करते थे, वहाँ अब सब भूलकर लोग 'राम नाम सत्त है' की एक ही रट लगाते हैं। जीवित अवस्था में जिसके शरीर पर एक मक्खी नहीं बैठने पाती थी और चारों ओर चवँर चलते रहते थे उसी राजा के कपाल को मित्र गण हाथ में लट्ठा लेकर चिता में कूटते हैं। सुगंधि (इत्र) से भीगा हुआ शरीर जलाकर लोग उसे राख का ढेर बना देते हैं (चिता फूँककर जब वे घर लौट आते हैं तो मृत की याद भूल जाते हैं। हे प्रभो!

तुम्हारी यह माया धन्य है। श्री नागरीदास जी कहते हैं कि इस अशोभनीय गति को कभी नहीं भूलना चाहिए और काल रूपी सर्प के दशन-कष्ट से बचने के लिए जन्म भर संग में रहने वाले भगवान का भजन करना चाहिए।

टिप्पणी—इस पद में विरक्ति की भावना का उल्लेख किया गया है।

२२ शब्दार्थ—तन=शरीर। लवलेस=लेशमात्र। छीजै =घटता है।

भावार्थ—यदि मेरे दो शरीर होते तो मैं किसी से कुछ नहीं कहता और मुझसे भी कोई कुछ नहीं कहता। मेरा एक शरीर भगवान से विरोध करने वालों के संग में देश-विदेश में रहता जहाँ पर भक्ति का लेश भी नहीं है और जहाँ जगत के अनेक प्रकार के सुख-दुख झेलने पड़ते हैं। मैं अपने दूसरे शरीर को सत्संग के रङ्ग में रङ्ग कर उस अत्यन्त सुखमय बनाता, इस शरीर द्वारा मैं ब्रज में निवास करता जहाँ पर ब्रज-जीवन के सजीवनमूल श्रीकृष्ण जी रहते हैं। दो शरीर के बिना दो कार्य नहीं सध सकता और आयु तो क्षण-क्षण में नष्ट हो रही है। श्री नागरीदास जी कहते हैं कि अब एक शरीर से क्या किया जा सकता है।

२३ शब्दार्थ—बालापन=बाल्यावस्था। स्याम कच=काले बाल। स्वेत=सफेद।

भावार्थ—दर्पण में लोग अपना चेहरा तो देखते हैं पर यह नहीं विचार करते कि वृद्धता और मृत्यु पास आती जा रही है। पहले बाल्यावस्था आती है इसके पश्चात् युवावस्था, जिसके काले केश वृद्धावस्था में जाकर सफेद हो जाते हैं। चेहरे के यद्यपि तीन

रूप बदले पर फिर भी अज्ञान बना ही रहा, वह नहीं छूट सका। लोगों को निकट आती हुई मृत्यु दिखायी नहीं देती, उनके अंतर्चक्षु मानों फूटे से रहते हैं। देह वृद्धता को पाकर यद्यपि दुःख की राशि बन गयी है पर फिर भी वे कृष्ण-भक्ति का आनन्द नहीं उठाते। श्री नागरीदास जी कहते हैं कि ऐसे लोग निश्चय ही जीते हुए भी नरक के निवासी बनते हैं।

२४ शब्दार्थ—जुगत=सम्भव। पापान नाव=पत्थर की नाव।

भावार्थ—भगवान असम्भव को भी सम्भव बना देंगे। वे पर्वत के ऊपर काँच की गाड़ी सफाई से निकाल ले जायेंगे (इसमें कहीं भी धक्का आदि नहीं लगने पावेगा) वे गहरे जल में पत्थर की नाव बीच हमें चढ़ाकर अच्छी भाँति तरेंगे। अग्नि के बीच मोम के घोड़े पर चढ़कर भी हम उनकी कृपा से नहीं पिघल सकेंगे। इससे भी बड़ी असमंजस की बात क्यों न घटित हो जाय पर भगवान दृढ़ता से हमारा हाथ पकड़ कर सहायता करेंगे। श्री नागरीदास जी कहते हैं कि सब कुछ भगवत्-कृपा के आधीन है, इसलिए हम किसी का डर नहीं मानेंगे।

टिप्पणी—इसमें भगवान की कृपा से असम्भव को भी सम्भव बताया गया है। 'पापान नाव' आदि का उदाहरण सहज ही मिलता है जैसे समुद्र के गम्भीर जल में सेतु बँधवा कर श्री रामचन्द्र जी ने अपनी वानरी सेना लंका पार उतारी थी। बिहारीलाल जी ने भी अपने एक दोहे में इस ओर संकेत किया है—यह बिरिया नहिं और की, तू करिया वह सोधि।

पाहन नाव चढाय जिन, कीन्हें पार पयोधि॥

२५ शब्दार्थ—फल=लाभ। विमुखन=भगवान से विमुख

रहने वाले। आनन्द-निधि = आनन्द की भंडार। स्यामा-स्याम = राधा-कृष्ण।

भावार्थ—मैंने दोनों प्रकार का लाभ पा लिया। मैंने जो पाप किया था उसके कारण हरि-विमुखो (यवनो) के संग मे देश-देश भटकता फिरा। अपनी तुच्छ कामना की पूर्ति के लिए मै कुसंग मे रहा और उनकी झूठी लालचो में लुभाया रहा। पर अब जाने कौन सा पुण्य उदय हुआ है कि मैं अब वृन्दावन और बरसाने में सुखपूर्वक रह रहा हूँ। आनन्द की भडार, ब्रज के अनन्य भक्तो की मडली ने मुझे हृदय से लगाकर अपना लिया। पहले जो मेरे सुनने के लिए भी दुर्लभ था, वह सब रास-विलास उन्होने प्रत्यक्ष दिखलाया। श्री नागरीदास जी कहते है कि मेरा मन-चाहा-मनोरथ श्री राधा-कृष्ण की कृपा से पूर्ण हो गया।

टिप्पणी—इसमे भक्त कवि के जीवन-चरित्र पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

२६ **शब्दार्थ**—माया-व्याधि = माया का असह्य दुख।

भावार्थ—हे प्रभो! मेरी गति तो तुम्ही से सुधर सकेगी। अनेकों जन्म में हमने अपना जन्म व्यर्थ में बरबाद कर दिया, यह मनुष्य जीवन भी हमसे बिगड़ जायगा (अच्छी तरह से सॅभाला न जायगा) मैं तो प्रेम की रीति से पूर्णतया अभिज्ञ तो हूँ नही कि उसे पूर्ण कर सकूँ फिर माया की यह व्याधि कैसे दूर होगी? श्री नागरीदास जी कहते है कि यदि आपके कृपा-कटाक्ष मेरी ओर हो गए तो हे प्रभो! मेरा जीवन सुधर जायगा।

टिप्पणी—इसमे भक्तकवि प्रभु की कृपा-कटाक्ष का अभिलाषी है। वह हरि द्वारा अपने मनोरथ पूर्ण होने की आशा

लगाये हुए है।

२७ शब्दार्थ—कुंजविहारिनि = राधिका । कुञ्जबिहारी = श्रीकृष्ण । ठाँ = स्थान ।

भावार्थ—हमारी सभी बातें भगवान की कृपा से सुधर गईं। कुंजों में विहार करने वाले हे राधा-कृष्ण आप मुझ पर कृपा करें। जिस स्थान पर आपने अपने दिव्य स्वरूप का नित्य प्रकाश प्रकाशित किया है उसी स्थान वृन्दावन में आपने मुझे शरण दी है। यहाँ आप नित्य केलि करके अखंडित आनन्द की सृष्टि रचते हैं, यह स्थान रसिकों के संग से इतना सुखप्रद हो गया है कि यह अब विश्व के सभी स्थानों से विचित्र ही लगता है, यहाँ आपस का कलह और क्लेश कभी नहीं व्यापता। श्री नागरीदासजी कहते हैं कि मेरा जन्म यहाँ सफल हो गया है, श्री राधा-कृष्ण की वलिहारी है, वलिहारी है!

२८ शब्दार्थ—ठग = धूर्त, छलिया । रज = रजोगुण। रज = धूलि। सयानप = चतुराई। ह्याँ = यहाँ।

भावार्थ—व्रज के सभी लोग अत्यन्त ठग हैं, ये स्वय ठग हैं और भक्तो के हृदय को ठगने वाले श्रीकृष्ण जी के उपासक हैं, इससे अधिक हम क्या कहें। इनकी बातें धतूरे के बीज जैसी हैं जिसका तनिक आस्वादन करा देने से लोग पागल हो जाते हैं और अपने घर और धन आदि को भुला देते हैं। लोग अपना राजसी अहंकार त्यागकर यहाँ की धूलि में लोटते हैं उनके अंग यहाँ पर दीन की भाँति दिखाई देते हैं (भाव यह है कि वे साधु जीवन व्यतीत करते हैं) जग के अन्य सुखदाई रंग यहाँ आने पर उड़ जाते हैं और श्रीकृष्ण जी की भक्ति का श्याम रंग उन पर चढ़ता है। यहाँ की भूमि ठगिनी है (अपने मनोहर रूप में लुभाने वाली है) वृन्द और देश के लोग ठग

हैं इसी कारण यहाँ सुजान श्याम ठग गये हैं, इनके समान अब और कौन ऐसी चतुराई रख सकता है। यहाँ आ ने पर तुरत गले में प्रेम का फंदा पड़ जाता है। इसलिए श्री नागरीदास जी कहते हैं कि यहाँ कोई भूलकर भी आने का कष्ट न उठावे।

टिप्पणी—इसमे व्रज भूमि, व्रजवासी (गोप-गोपियों) और व्रजेश की ठगी पर अच्छा व्यग किया गया है।

२९—शब्दार्थ—जंगी=युद्ध मे जाने वाला। मति=बुद्धि।

भावार्थ—भक्ति किये बिना लोगो का जीवन अत्यंत निष्क्रिय और पुरुपार्थ रहित हो जाता है। लोग आपस मे लड़ने भिड़ने की बाते इतनी सोचते है जैसे युद्ध का लड़ाका घोड़ा। उनकी बुद्धि लोलुपता के कारण ऐसी भ्रमित होती रहती है जैसे लट्टू का अपने स्थान पर घूमना। श्री नागरीदास जी कहते हैं कि ऐसे लोग संसार मे इस प्रकार उछलते रहते है जैसे नट का वटा जिसे वह उछाला करता है।

टिप्पणी—भक्तिहीन लोगो की निष्क्रियता इस पद मे दिखाई गयी है।

३०—शब्दार्थ—वृन्दाविपिन=वृन्दावन। सहचरी=सहेली।

भावार्थ—वृन्दावन रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्ण की राजधानी है। इस वृन्दावन के राजा रसिया श्रीकृष्ण हैं और रसिक-विहारिणी राधिकाजी उनकी पट्टमहिषी हैं। पास में रहने वाली सहेलियाँ, ललिता आदि हैं जो युगल सरकार के सौन्दर्य रूपी मद्य का पान करके मस्त बनी रहती हैं। वृन्दा

देव उनकी रसिक टहलिनी है। यहाँ पर निकुंजों की अत्यंत सुन्दर शोभनीय रचना हुई है। यहाँ रसिका यमुना जी रसिक वृक्ष और लतायें हैं और यहाँ की सुखदात्री भूमि भी सुरसिका है। श्री नागरी दास जी कहते हैं कि चैतन्य रसिक श्रीकृष्णजी यहाँ सदैव रहते है और प्रेमी जन रसिक वर श्रीकृष्ण जी का गुणगान किया करते हैं।

टिप्पणी—इसमे 'रसिक' शब्द की कई वार आवृत्ति हुई है जिसके कारण इस पद की मधुरता में वृद्धि हुई है।

३१—शब्दार्थ—राजस-रंग = राजसी भाव। पुलिन = तट।

भावार्थ—वृन्दावन के विना मैंने कितने ही दिन नष्ट कर दिये। राजसी भाव में डूबकर मैंने अब तक के दिन व्यर्थ में ही नष्ट कर दिए। यमुना तट के निकट वास करना पुष्पो की शैया पर सोने के समान सुखकर है पर मैंने इसको छोड़कर पहले शूलो और वाणों को सरहाने रखकर सोया है। वहाँ राजसी भाव में होने पर हमें प्रेम भाव में निमग्न, अनन्यप्रेमी जन नहीं दिखलाई पड़े वहाँ तो हमें हरि से विमुख रहने वालों का मुख ताकना पड़ा है। यहाँ सदा एक सी रहने वाली एकरसता को छोड़कर हम वहाँ कभी हँसे और कभी रोये (भाव-यह कि वहाँ पर राजसी वेष में हमें सुख-दुख का वरावर अनुभव होता रहा) वहाँ मैंने अपना कुछ भी हित-कार्य नहीं किया, सदैव दूसरे का कार्यभार ही सिर पर ढोता रहा। मैंने सब देशो को छान डाला पर कहीं आनन्द और सुख का लेश भी न दिखायी पड़ा। श्री नागरीदास जी कहते हैं कि जब से हमने वृन्दावन के निकुञ्जों शरण ली है। तब से सब प्रकार के आनन्द का उपभोग किया।

टिप्पणी—इसमें नागरीदास जी ने अपनी ब्रज के पहले

की स्थिति का चित्र खींचा है।

३२–शब्दार्थ—ब्रजवासी = ब्रज मे रहने वाले। जे जन = जो लोग। वैकुंठ निवासी = वैकुंठ मे वास करनेवाले। अविनासी = जिसका विनाश कभी नही हो अर्थात् परमेश्वर।

भावार्थ—ब्रजवासी जो सुख सदैव पाते हैं उसे वैकुंठ में रहने वाले देवगण स्वप्न मे भी नही पाते। विश्व जिसे अविनाशी परमेश्वर कहके पुकारता है, वह यहाँ घर-घर का खिलौना बन रहा है। श्री नागरीदासजी कहते हैं कि वृन्दावन मे विश्व से न्यारी वस्तु हाथ लग गई है सभी यहाँ सुखराशि श्रीकृष्ण जी का परमानन्द-लाभ लूटते हैं।

३३–शब्दार्थ—वैनु = वंशी। गोभा = फबन। गुंज पुंज = गुंजमाल। सोहैं = शोभा देती है।

भावार्थ—ब्रजवासियों के द्वारा ही श्रीकृष्ण इतना सुशोभित होते हैं। वे अधर पर वंशी रख कर जो त्रिभंगी छवि धारण करते हैं वह ब्रज के लिए फवती है। ब्रज के वन की मनोहर विचित्र धातुएँ और गुञ्जमाल उन पर अधिक शोभा देता है। ब्रज के मयूरों के सुन्दर पंख उनके शिर पर रहते हैं। जिसे देखकर ब्रज की युवतियाँ मोहित हो जाती हैं उनकी अलक पर पड़ी हुई ब्रज की रज अत्यन्त शोभा देती है। उनके वक्षस्थल पर ब्रज के वृक्षो के फल की माला पड़ी रहती है। ब्रज की गायों के पीछे वे मस्त हाथी की चाल से चलते हैं। चारो ओर ब्रज के गोप लोग रहते हैं बीच मे ब्रजचन्द श्रीकृष्णजी सुशोभित होते हैं। श्री नागरीदासजी कहते हैं कि परमेश्वर की शोभा भी ब्रज के प्राकृतिक सौन्दर्य के ही कारण इतनी बढ़ सकी।

३४–शब्दार्थ—विपिन विहारी = वन में विहार करनेवाले। मदन-मोहन = कामदेव को मोहित करने वाले। सोहत = शोभा

पाते हैं। ब्रज कौ ठाकुर=ब्रज का स्वामी।

भावार्थ—ब्रज के समान अन्य कोई धाम नहीं है। इस ब्रज में परमेश्वर के भी कई सुन्दर नाम सुधरे। यद्यपि गर्ग ऋषि ने कृष्ण नाम रक्खा था पर सभी ब्रजवासी उन्हें कान्ह-कान्ह' कहकर पुकारने लगे। सभी बालक्रीड़ा के रस में मग्न हो गये और आनन्द-सिन्धु में कलोल करने लगे। श्रीकृष्णजी के ब्रज में बहुत से नाम हैं जैसे यशोदानन्दन, (यशोदा के पुत्र) दामोदर, मक्खन-प्रिय, दधिचोर (दही चुरानेवाले), चोर-चोर चित-चोर (चित को चुरानेवाले), छैला, चातुर, नवलकिशोर, राधिका के मुख-चंद्र के चकोर, साँवरो, गोकुलचंद (गोकुल के चन्द्रमा) दधिदानी (दही का दान माँगनेवाले), श्रीवृन्दावन-चंद, चतुर-चित, प्रेम व रूप के अभिमानी, राधारमण, राधा-वल्लभ, राधाकान्त वल्लभसुत, गोपियों के प्यारे, गिरिवर को धारण करने वाले, परम सुन्दर, रासबिहारी, रसिकबिहारी, कुञ्जबिहारी, श्याम, विपिनविहारी, बाँकेबिहारी, सुन्दर अटल बिहारी, कुंजबिहारी, लालबिहारी, बनवारी, रसकन्द (आनन्द-कन्द), गोपीनाथ, मदनमोहन, वंशीधर, गोविन्द, ब्रजलोचन, ब्रजरमन, मनोहर, ब्रजस्वरूप (ब्रज के सुखरूप), ब्रजनाथ, ब्रजजीवन, ब्रजवल्लभ, ब्रजकिशोर, शुभगाथ (अर्थात् जिनकी कथा पवित्र है), ब्रजभूषन, ब्रजमोहन, सोहन, ब्रजनायक, ब्रजचन्द, ब्रजनागर, ब्रजछैल, छबीले, ब्रजवर, नन्दनन्द (नन्द के पुत्र), ब्रज-आनन्द, ब्रजदूल्ह और अत्यन्त सुन्दर प्रकाशमान हैं। ब्रजगोपाल ब्रज की गायों के पीछे अत्यन्त शोभा पाते हैं। लोगों को चाहिए कि ब्रज सम्बन्धी श्रीकृष्ण का नाम लेते हुए वे ब्रज की लीला का गायन करें। श्री नागरीदासजी कहते हैं कि इसमें सुन्दर नाम दिये हुए ब्रज के स्वामी श्रीकृष्ण को प्यारे हैं।

टिप्पणी—इस पद मे ब्रज से सम्बन्ध रखने श्रीकृष्ण के सभी नामो का उल्लेख है, इनकी यह विशेषता है कि ये नाम भिन्न-भिन्न कथाओ की भी याद दिलाते हैं।

मनोरथ मञ्जरी

३५ **शब्दार्थ**—ठौर=स्थान। रूँध=ढक। तीन-ताप= दैहिक, दैविक और भौतिक ताप।

भावार्थ—श्री नागरीदास जी कहते हैं कि त्रय ताप से तप्त व्यक्ति क हृदय को शीतल करने वाली, (वृन्दावन के) सघन वृक्षो की घॅघली छाया मेरे नेत्रो के ठौर को कब ढक लेगी (भाव यह है कि कब मैं वृन्दाबन के सघन निकुंजो को देखूँगा)

३६ **शब्दार्थ**—धूरि=धूलि। कछु मुख हू मे पाय=कुछ मुख में भी डालकर।

भावार्थ—वृन्दावन की भूमि में कब मेरे चरण जाकर पड़ेंगे जहाँ मैं धूलि में लोटकर, कुछ उसे शिर पर प्रेम से धारण कर और कुछ मुँह में डालकर कृतकृत्य हो जाऊँगा।

३७ **शब्दार्थ**—पिक=कोयल। केकी=मयूर। पसार= फैलाकर।

भावार्थ—पिक, मोर और कोकिल-कुहुक से तथा अपार वन्दरों से भरे हुए वृक्षों को देखकर मैं कब उन वृक्षों के पास जाकर उनसे भुजा फैलाकर भेटूँगा।

३८ **शब्दार्थ**—रसीली=आनन्दवर्द्धक। लखि लखि= देख-देख कर।

भावार्थ—मैं कब वृन्दावन की रसीली निकुञ्जों में प्रवे

करूँगा; कब वहाँ की लहलहाती लताओं को देखकर मेरा हृदय प्रेमानन्द से परिपूर्ण हो जायगा।

३९ शब्दार्थ—परिकर = गोष्ठी। सुघरजन = सुन्दर व्यक्ति।

भावार्थ—प्रिय मंडली के सुन्दर जनों को, जो कि विरही और प्रेम-स्वरूप हैं, देखकर प्रेमपूर्वक मैं कब हृदय से लिपटा लूँगा।

४० शब्दार्थ—फाट = फाड़कर, अलगकर।

भावार्थ—वे मुझ में कुछ विशेष प्रेम देखकर ही तब औरों से अलगकर मुझे यमुना तट पर मानसी शृंगार करने के लिए ले जायेंगे।

४१ शब्दार्थ—निसि = रात्रि। सुभग पुलिन = सुन्दर तट। मौन बदन = शान्त मुख।

भावार्थ—मैं कब अकेले यमुना के सुन्दर तट पर चाँदनी रात में जाऊँगा और वहाँ की सुछवि देखकर शान्त होकर मन ही मन (प्रेम का) उत्साह लाऊँगा।

४२ शब्दार्थ—आसव = मदिरा। दंपति = श्रीराधा-कृष्ण। लाल = प्यारे।

भावार्थ—युगल सरकार श्रीराधा-कृष्ण के सौन्दर्य रूपी मदिरा से छककर जिनके प्राण छके पड़े हैं ऐसे सन्तों की कृपा मुझ पर है और दम्पति श्री राधा-कृष्ण का प्यार है।

४३ शब्दार्थ—कपोल = गाल। राजति = शोभा देती है।

भावार्थ—श्रीकृष्ण के कान के कुण्डल की झलक कपोल पर पड़कर अनेक प्रकार से शोभा देती है। मैं उनके चन्द्र-मुख की कांति कब अपने नेत्रों से देखूँगा।

४४ शब्दार्थ—दसनि = दाँतो । किरननि-निकर = किरणों का समूह ।

भावार्थ—उनके दाँतों की दमक और मन्द-मुस्कान की कोई उपमा ही नहीं मिलती। हास्य करते समय उनके मुँह से किरणो के समूह सा निकलता हुआ प्रकाश मैं कब इन नेत्रों से देखूँगा ।

४५, ४६ शब्दार्थ—दुखदायी=दुख देने वाला । दौरिहौ दौड़ूँगा । सैन =शयन, सोना ।

भावार्थ—मुझ को अपार विरह कब दुखदायी होगा जब कि मैं 'सुकुमार कहाँ हैं' कहकर रो-रो कर उनसे भेंट करने के लिए दौड़ पड़ूँगा । इसी दिन से मेरा खाना, पीना और सोना आदि सब कुछ छूट जायगा । इस समय मेरा शरीर क्षीण हो जायगा, मैं फटे-पुराने कपड़े पहने रहूँगा और बेचैन होकर घूमता फिरूँगा ।

टिप्पणी—इसमें विरहासक्ति का भाव द्रष्टव्य है ।

४७ शब्दार्थ—द्रवै = द्रवित होगा । उसाँस = उच्छ्वास । रैन = रात्रि । उपास = उपास्य ।

भावार्थ—इस समय मेरे नेत्रों से आँसुओ की धारा बहेगी मैं क्षण-क्षण मे उच्छ्वासें भरूँगा और अँधियारी रात्रि मे उपास्य देव युगल सरकार की कीर्ति गाता फिरूँगा ।

४८ शब्दार्थ—स्रवत=गिरता रहेगा । रुधिर = खून ।

भावार्थ—मैं गोपियो, पक्षियो, मृगो, वृक्षो और वन के बीच अपने प्यारे को ढूँढ़ता फिरूँगा। उस समय मेरा पैर काँटो से छिदता रहेगा, उससे रक्त बहेगा और उस समय कोई सुधि न रहेगी ।

४६ शब्दार्थ—हेरत=खोजते हुए। टेरत=पुकारते हुए।

भावार्थ—मैं सुजान श्याम का नाम लेकर उन्हें पुकारता और खोजता फिरूँगा। सघन वन में अटक कर गिरते-पड़ते हुए मेरे प्राण अकस्मात् ही छूटेंगे।

५० शब्दार्थ—मनोरथ=मन की अभिलाषा। लाल=प्यारे। रसिक रसाल=श्रीकृष्णजी।

भावार्थ—मैं सतसगति से दूर नहीं हूँ, इसे रसिकवर श्रीकृष्णजी जानते होंगे। हे मेरे लाल! बताओ मेरा मनोरथ कब पूर्ण होगा।

५१ शब्दार्थ—नवल=सुन्दर।

भावार्थ—श्री नागरीदासजी कहते हैं कि मेरे एक परम मित्र ने मुझे काव्य-रचना की आज्ञा दी वह मेरे मन को हितकर लगी। इसके फलस्वरूप मैंने यह सुन्दर 'मनोरथ मंजरी' रच दी।

५२ शब्दार्थ—बाँचै=पढ़े। रीझि=प्रसन्न होकर। प्रश्न=सवाल।

भावार्थ—इस 'मनोरथ मंजरी' को जो पढ़ेगा, जो इसकी शिक्षाओं को सुनेगा और प्रसन्न होकर फिर प्रश्न करेगा उसे सत्संग करना चाहिए। उसके पास नमस्कार रूप में हमारी 'जय श्रीकृष्ण' पहुँचे।

५३ शब्दार्थ—उदधि=समुद्र। स्याम=साँवले। अभिराम सुन्दर। चक्कत=चकित, अचम्भित। हेरैं=देखैं। गहि गहि=पकड़-पकड़ कर। कनक=सोना। भ्राजैं=सुशोभित होती हैं।

भावार्थ-नन्द के पुत्र सदा एक रस में स्थित, एवं बाललीला मे मस्त होकर आनन्द-सागर गोकुल में कलोल करते हैं। गौरवर्ण के बलभद्रजी और श्याम-वर्ण के कन्हैया जी दोनों सुन्दर भाई सुन्दर-सुन्दर बालको को लिए घूमते हैं। रत्नजटित आभूषणो एव मुख और शरीर की कांति का उजियारा पाकर वे घर-घर जाकर दूध और दही की चोरी करते है। उसे खाते है, मुँह में लपटाते है। भूमि पर गिरा देते हैं फिर किसी को आता देखकर हँसते हुए भागते हैं और चकित होकर अपने घर को खोजते है। कभी बछियो की पूँछ पकड़-पकड़कर घूमते है। कमर में कसी सोने की किंकिणी मधुर ध्वनि उत्पन्न करती है। गोप और गोपियो के मन व नेत्रों मे ये खिलौना से बने रहते हैं। ये मुडकर अपने मुख-कमलो से मधुर मुस्कान सुशोभित करते हैं। इनके मुख मे दही के छींटे शोभित हो रहे हैं, सारा अंग धूल-धूसरित है। पैरो से ऐसा चलते हैं कि कामदेव की गति भी लज्जित हो जाती है। कंठ मे बघनख पहने हुए है, पैर मे पैजनी की मधुर झनकार है, श्री नागरीदासजी कहते हैं कि इस प्रकार बलराम और कृष्ण मेरे हृदय रूपी आँगन मे खेल करते है।

टिप्पणी—इसमे बाल्यावस्था का वर्णन किया गया है।

शृङ्गार-सागर

५४ **शब्दार्थ**—छिमाकर = माफकर। मुरलिया = वंशी। तिहारे = तेरे। पाय = पैर।

भावार्थ—गोपियाँ मुरली की ध्वनि सुनकर कहती हैं कि ऐ मुरली! तू हमें क्षमाकर, (चुप रह)। तेरे शब्द सुनकर अन्य सभी लोग सुखी होते हैं पर हम गोपियों को इससे बहुत कष्ट होता है।

टिप्पणी—वंशी श्रीकृष्णजी के अधर-रस का पान करती थी, इसी कारण गोपियाँ उसे अपनी सौत मानती थीं। यहाँ उसके स्वर को सुनकर उनका महादुःखी होना अत्यंत स्वाभाविक है।

५५ **शब्दार्थ**—सुहाग = सौभाग्य। मत गाज = मत गरज।

भावार्थ—अपने सौभाग्य रूप प्रियतम के राज में तू ने क्या-क्या नहीं किया और भविष्य में तू क्या-क्या न करेगी इसलिए बावरी बाँसुरी! तू श्रीकृष्ण के मुख से लगकर इतनी मत गरज।

५६ **शब्दार्थ**—तो कारन = तेरे कारण। घैर = फंदा, बदनामी। तोसों = तुझसे।

भावार्थ—ऐ मुरली! हमने तेरे कारण ही घर का सुख त्याग दिया और संसार की बदनामी सही। तू बता, मुझसे तुझसे किस जन्म की शत्रुता है।

५७ **शब्दार्थ**—अभिमानी = गर्विणी। सुहागिनी = सौभाग्यवती।

भावार्थ—ऐ गर्विणी मुरली! तुझे अपनाकर श्रीकृष्ण ने सौभाग्यवती किया पर तू ने चमड़े के सिक्के (झूठे सिक्के) असली के भाव में खूब चला दिए।

५८ **शब्दार्थ**—हाँसी = हँसी। घरबसी = हृदय रूपी घर में बसी।

भावार्थ—ऐ मुरली! तू अपना मुख मूँद रह, व्यर्थ में तू क्यों उपद्रव करती है। हँसी तो तेरे हृदय रूपी घर में बसी हुई है अर्थात् तेरा हँसने (मधुर स्वर करने) का स्वभाव बन गया है

ार इससे अन्य लोगो का घर बरबाद हो रहा है। वे अपने घर और कुटुम्ब को छोड़ने के लिए विवश हो जाते हैं।

५६ **शब्दार्थ**—हरि=श्रीकृष्ण। मौन=चुप। लौन=नमक।

भावार्थ—श्रीकृष्ण का चित्त चुराकर भी तुझ से चुप नही रहा जाता अर्थात् तू सदैव बजती ही रहती है। ऐ वंशी तू मत बज, इस प्रकार बजकर तू कटे पर नमक छिड़कती है। भाव यह है कि आराम पहुँचाने की अपेक्षा तू उलटे दुःख ही देती है।

६० **शब्दार्थ**—नारि=स्त्री। कान करि=याद कर।

भावार्थ—ऐ मुरली! तू भी व्रज मे उत्पन्न हुई है और हम भी व्रज की नारी है। एक स्थान पर जन्मने की बात याद करके तू कुछ तो शील रख। इस प्रकार पढ़-पढकर मन्त्र न मार।

टिप्पणी—इस दोहे द्वारा मुरली की सम्मोहन शक्ति का पता चलता है।

६१ **शब्दार्थ**—सर=बाण। नातो=संबन्ध।

भावार्थ—ऐ मुरली! तू अपने स्वर रूपी शर को तानकर मत मार। वशी और व्रजनारि का थोड़ा सा नाता मान ले जिससे त्रिलोकी में मेरे तेरे यश का गायन हो।

६२ **शब्दार्थ**—हाथ में=क़ाबू में।

भावार्थ—एक हाथ की मुरली ने प्रियतम के ओठों से लगकर सब के मन को अपने अधिकार मे कर लिया और सब को नाच नचा डाला।

टिप्पणी—एक हाथ की मरलिया मे ध्वनि है इससे स्पष्ट

होता है कि यदि कही दूसरा भी हाथ मुरली के पास होता तो न जाने वह क्या गजब कर डालती।

६३ शब्दार्थ—बस-बंस=बाँस के कुल में। प्रसस=प्रशसा करते हैं।

भावार्थ—बाँस के कुल मे जन्म लेकर वशी श्रीकृष्ण के अधरों पर जा पहुँची, सारा जगत् इस बात की प्रशंसा करता है कि बाँस का वंश धन्य है। (जिसने ऐसी बड़भागिनी मुरली को जन्म दिया।)

६४ शब्दार्थ—तीर=बाण। चैनु=शांति। बिधाइकैं=छिदा करके। बैनु=वशी।

भावार्थ—छिद्रो में फूँको के गतिमय तीर लगने से शरीर को चैन नही मिलता यह वशी स्वयं अपने अग-अंग को फूँक रूपी तीर से बिधाकर के हमारे शरीर को भी वेध रही है।

६५ शब्दार्थ—अधीर=व्याकुल। पीर=वेदना।

भावार्थ—हा हा! हे मुरली तू हमें इतना क्यो अधीर करती है। जरा रुक जा और चुप रह। यदि मेरी भाँति तू गोपी बनकर अपना घातक शब्द सुन ले तब मेरी पीड़ा का तू कुछ अनुभव करे।

६६ शब्दार्थ—अनबोली=चुप। बकवादी=बहुत बोलने वाले।

भावार्थ—ऐ बकवादिनी मुरली! तू हमे इतना शब्द सुनाती है कि हमें तनिक भी चैन नही लेने देती, जरा तू चुप तो रह।

टिप्पणी—इस दोहे में 'अनबोली' और 'बकवादी' दोनों

परस्पर विरोधी स्वभाव रखने वाले शब्द बड़ी खूबी से प्रयुक्त किये गये हैं।

६७ शब्दार्थ—चर=चलने वाले। सुथिर=सुस्थिर

भावार्थ—हरि के मुख से बजकर मुरली ने जड़ पदार्थों को चैतन्य बना दिया और चैतन्य को जड़ बना दिया। अत्यंत अभिमान से गरजकर इसने सब का मद टुकड़े-टुकड़े कर दिया।

इश्क-चमन

६८-शब्दार्थ—इश्क=प्रेम। कादिर=शक्तिमान। नादिर=सर्वश्रेष्ठ।

भावार्थ—प्रेम उसी परमात्मा की एक झलक है जैसे सूर्य की झलक धूप होती है। जहाँ प्रेम है वहाँ परमात्मा स्वय कादिर और नादिर रूप मे वर्तमान है।

६९- शब्दार्थ=इस्तेमाल=प्रयोग। गँवार=मूर्ख।

भावार्थ—यदि प्रेम का प्रयोग कहीं सँभालकर नहीं किया गया है तो उस परमात्मा से मूर्ख मनुष्य क्या प्रेम कर सकेगा।

७०-शब्दार्थ—मजहब=धर्म। इल्म=विद्या। ऐस=आराम। स्वाद=मजा। असर=प्रभाव।

भावार्थ—सभी धर्म, सभी विद्याएँ और ऐश व आराम के सभी मजे बिना प्रेम के प्रभाव के एकदम बरबाद हैं। (भाव यह है कि सभी वस्तुएँ तभी आनन्ददायी होंगी जब प्रेम का भाव वर्तमान होगा)

७१—शब्दार्थ—चस्म-चपेट=आँखों की चपेट। खलक=संसार।

भावार्थ-प्रेम की लपेट मे आया नहीं कि व्यक्ति नेत्रों की

चपेट में पड़ गया। ऐसे लोगों का संसार में आना सफल है और बाकी तो केवल पेट भरने के लिए ही आते हैं।

७२-शब्दार्थ—आशिक़=प्रेमी। इश्क़-चमन=प्रेम की वाटिका।

भावार्थ—यों तो प्रेमी अनेक हैं पर उस परमात्मा तक कोई नहीं पहुँच सका। उसकी प्रेमवाटिका के बीच केवल एक मजनूं ही पहुँच सका।

टिप्पणी—इसमें फारसी साहित्य के उत्कृष्ट प्रेमी मजनूं के प्रेम की प्रशंसा की गयी है।

७३-शब्दार्थ—इश्क-चमन=प्रेम वाटिका। महबूब= जिससे मुहब्बत किया जाय। सभल=सावधानी। बीच राह= शास्त्रोक्त मार्ग। ऊबट=मरे मिटे प्रेमियों का मार्ग।

भावार्थ—उस महबूब की प्रेम वाटिका में बड़ी सावधानी से पैर रखकर आना चाहिए। इस वाटिका में यदि कोई शास्त्रोक्त बीच (गहरा) मार्ग का अनुसरण करेगा तो डूबने की आशंका रहेगी पर प्रेममार्गियों के उथले मार्ग में बचाव रहेगा।

७४-शब्दार्थ—जियै=जीवित रहे।

भावार्थ—उस महबूब (प्रिय) की प्रेमवाटिका ऐसी है जहाँ पर कोई नहीं जाता। यदि कोई जाता है तो वह जीवित नहीं रहता यदि जीवित भी रहता है तो एकदम पागल हो जाता है।

७५-शब्दार्थ—सीस=शिर। भू=पृथ्वी। पाँव=पैर।

भावार्थ—यदि प्रेम वाटिका में प्रवेश करना चाहते हो तो आओ, अपने शिर को काटकर भूमि पर गिरा दो और उस पर पैर रखकर इस वाटिका में प्रविष्ट होओ।

७६—शब्दार्थ—लग्न = प्रयत्न।

भावार्थ—ऐ प्यारे मैं क्या करूँ जिसके लिए तू इतनी लाग कर रहा है। मेरे दिल रूपी बारूद मे अब प्रेम रूपी आग क्योंकर छिप सकेगी। वह तो तुरंत ही भड़क जायगी।

७७—शब्दार्थ—राग = अनुराग, प्रेम।

भावार्थ—अनुराग रूपी आग की लपटें जब दिल के बीच पहुँच जाती हैं तो वहाँ दबी हुई इश्क रूपी बारूद भभक कर जल उठती है।

७८—शब्दार्थ—कानन = बन। भीर = भीड़। देवबधू = देवताओ की स्त्रियाँ। वितान = मडप, विस्तार। रमा = लक्ष्मी जी। उर अंचला = वक्षस्थल पर का वस्त्र। ललित = सुन्दर। त्रिभंगीलाल = श्रीकृष्ण।

भावार्थ—वृन्दावन के जंगल मे जहाँ पर रास हो रहा था उसको देखने के लिए वहाँ पर देवताओ के विमानों की बहुत भीड़ लग गयी। इन विमानो पर बैठी देवांगनाओ का मन इस रास को देख-देखकर बहुत चञ्चल हो गया। वंशी का सुमधुर स्वर चारों ओर फैल गया, उसकी ध्वनि के कारण वायु का चलना बन्द हो गया। लक्ष्मी जी और उनके लोक की अप्सराएँ इतनी विमोहित हो गयी कि उन्हे अपने वक्षस्थल पर से हटे हुए वस्त्र को ठीक करने का ध्यान ही न रहा। श्री नागरीदास जी कहते हैं कि रास मे दो-दो गोपियो के मध्य में भगवान् बाँके-बिहारी की एक-एक सुमूर्ति राजती थी, नृत्य करते समय सब के एक साथ पदन्यास करने से नूपुर आदि की छन-छन ध्वनि होती थी। इस रास-रंग की मंडली में अखण्ड प्रेम का भेद भाव

प्रकट करती हुई गोपियाँ इस प्रकार शोभा देती थीं मानों मेघ चक्र के साथ बिजली चमक रही हो।

टिप्पणी—इसमें रास का वर्णन है। इसमें मेघ-चक्र से आशय श्रीकृष्ण जी से है और चंचला से आशय गोपियों से है।

७९—शब्दार्थ—सैन=समय। हिय=हृदय।

भावार्थ—श्री नागरीदास जी कहते हैं कि यह वृन्दावन, यह समय, यह दम्पति (राधाकृष्ण) का प्रेम और नित्यविहार करने की रसमय रीति मेरे हृदय में बसे।

विहार-चन्द्रिका

८०—शब्दार्थ—पख=पक्ष। रैन=रात्रि। उडुराज=चन्द्रमा। अरुनद्युति=लाल आभा। छपा=रात्रि। अमंद=चटक। नभ=आकाश। जोत=ज्योति। नवद्रुम=नववृक्ष। किसलय दलनि=नये निकले हुए पत्ते। मैन उमहनी=कामोद्दीपक। पौन=वायु। दिन मनि=सूर्य। गिरिराज=पर्वत-राज गोवर्द्धन। निदूषन=दोष रहित। अंब=आम। पाइनि=पैर। ठौर-ठौर=स्थान-स्थान पर। भँवर=भ्रमर। विमोहत=मोहित करना। निरझरत=झरते हैं। गिरिधारी=श्री कृष्ण।

भावार्थ—शुक्लपक्ष की रात्रि है जो अपनी शुभ्रता से शान्ति और दिव्यानन्द प्रदान करने वाली है। इसमें अपनी अरुण आभा से सब के मन को हरने वाला चन्द्रमा प्रकाशित हुआ। यह चन्द्रमा ज्यों-ज्यों आकाश पर चढ़ता जाता है त्यों-त्यों रात्रि की चटक बढ़ती जाती है। यह गोपियों के मान रूपी नगर को नष्ट करता हुआ और उनके मन में मिलन की उत्कण्ठा

जागृत करता हुआ आता है। यह अमृतधारा का स्रोत सा लगता है इसकी ज्योति से वन जगमगा उठता है। वृक्षों के नये कोमल पत्तो पर पड़ी हुई रोशनी तारो की भाँति चमकती है। चाँदी जैसी उज्ज्वल रात्रि शान्त चित्त में भी कामोद्दीपन करने वाली है। सूर्य के प्रखर ताप रूपी दुख को नष्ट करने वाली सुन्दर वायु भी सुगधियुक्त होकर मन्द-मन्द वह रही है। पर्वतराज गोवर्द्धन ही यहाँ अधिनायक हैं उनके चरणो मे वृन्दावन रूपी आभूषण है। पर्वत की चोटियों और स्फटिक शिलाओं में शुभ्र कान्ति जगमगाती है। यहाँ चन्द्रमा की प्रतिच्छाया से प्रत्येक शिला चमक उठती है, इस चमक द्वारा उठी हुई किरणें अत्यन्त शोभा देने वाली होती हैं। शिलाओं के बीच-बीच में आम और कदम्ब आदि वृक्ष-समूह की डालियाँ झुककर पर्वतराज के पैरों पर पड़ रही हैं। यहाँ चारो ओर स्थान-स्थान पर पुष्पो के ढेर शोभा पा रहे हैं जिनकी सुखदायी सुगन्धि से मदांध होकर भँवरो का समूह विमोहित हो रहा है। कही पर सुखकारी झरना स्वच्छ जल झर रहा है जो मद हरने वाले केशर आदि की स्वाभाविक सुगन्धि से अत्यन्त सुवासित है। यहाँ के स्थान-स्थान को देखकर कामदेव उसी स्थान पर रम जाते है पर्वत के ऐसे ही स्थानों पर विविध प्रकार के विहार करते हुए गिरधारी श्रीकृष्ण घूमते हैं।

टिप्पणी—इस सम्पूर्ण पद मे प्रकृति-वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी हुआ है।

भगवत रसिक

ब्रज के भक्त कवियों मे श्री भगवत रसिक जी का भी नाम आदर से लिया जाता है। यह टट्टी सम्प्रदाय के महात्मा स्वामी ललित मोहिनीदासजी के शिष्य थे। इन्होने गद्दी का अधिकार नही लिया प्रत्युत निर्लेप होकर श्रीराधा-कृष्ण की भगवद्भक्ति में तल्लीन रहे। इन्होने द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत आदि मतवादो से अपने को बिल्कुल अलग रक्खा और भगवत इच्छा पर विश्वास रखकर युगलमूर्ति की टहल करते रहे। अपने सेवा भाव को आपने इस प्रकार व्यक्त किया है—

> चेला काहू के नहीं, गुरु काहू के नाहिं।
> सखी लडैती लाल की, रहैं महल के माहिं॥
> रहैं महल के माँहि, टहल सब करैं निरन्तर।
> दंपति अति अकुलाहि, पलक कहुँ धरै जु अन्तर॥
> 'भगवत' भगवत कहै, करै नहिं हम बिन केला।
> ताते हम परिहरे, देह मानी गुन चेला॥

इनमें त्याग की भावना प्रधान थी, विश्व के समस्त वैभव का सुख इन्होंने करुना का परम पावन पानी पीकर भुला दिया था। युगल सरकार का मनोहर रूप आँखों में भरकर और उनके प्रेम से छक कर ये वृन्दावन की गलियों में मतवाले होकर घूमा करते थे।

वर्ण्य विषय और समीक्षा—इन्होंने शृंगार और वैराग्य सम्बन्धी सुन्दर कविताएं की है। इनकी कुण्डलियो और पदों में भावगाम्भीर्य बहुत है। इनकी अधिकांश कुण्डलियाँ

लोक-व्यवहार सम्बन्धी सूक्तियों से भरी पड़ी हैं। प्रेमतत्व का निरूपण इन्होंने बड़ी सच्ची लगन के साथ किया है। इनकी कविता में कला का विशेष आग्रह नहीं है। शृंगार का चटकीला वर्णन इनकी रचना में बहुत कम मिलता है। इन्होंने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है—

नाचैं-गावैं, चित्र बनावैं, करैं काव्य चटकीली।
साँच बिना हरि हाथ न आवैं, सब रहनी है ढीली॥

इस प्रकार सच्चे भाव से भरी हुई कविता करना ही इन्हें इष्ट था। अपनी वाणी की ओर जो इन्होंने संकेत किया है कि 'भगवत रसिक' रसिक की बातें, रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना, यह सत्य ही है। वस्तुत. इनके काव्य को समझने के लिए गहरी अनुभूति की आवश्यकता है।

भाषा और शैली—इनका भाषा पर पूरा अधिकार प्रकट होता है। इन्होंने अपनी रचना में शिथिलता बिलकुल नहीं आने दी है पाद-पूर्ति के लिए लाए गये भरती के शब्द भी इनकी रचना में नहीं पाये जाते। पद, छप्पय और कुण्डलियाँ सभी में गम्भीरता लाने का इन्होंने प्रयत्न किया है। इनकी कविताओं में प्रवाह और सरसता की भी कमी नहीं है। अलंकारों की ओर इनका ध्यान नहीं गया है, इसलिए शब्दों और अर्थों की सजावट इनकी रचना में नहीं दृष्टिगत होती।

भगवत रसिक

टिप्पणी—इस छप्पय में श्री भगवत रसिकजी ने वृन्दावन स्थित साधुओं की आदर्श दिनचर्या का उल्लेख किया है ।

३. शब्दार्थ—साँचे=सत्य हैं । पेखनो = खेल ।

भावार्थ— एक श्री राधारमण भगवान कृष्ण ही सत्य हैं शेष समस्त संसार असत्य है, वह जादूगर के खेल जैसा है उसके नष्ट होने में देरी नही लगती अथवा भूति की संपत्ति तुल्य है जो क्षणिक होती है । स्त्री, नाती, पुत्र आकाश मे उड़ते हुए धुएँ के धुरहरे के समान हैं जो शीघ्र ही वायु मे मिलकर अपनी सत्ता खो देता है । श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि वे मनुष्य अत्यन्त नीच हैं जो लोभवश घर-घर नाचते फिरते है और याचना करते हैं । सुनार झूठ ही गढ़ता है, यदि वह साँचे में ढले हुए गहने के गढ़ने की मोम जैसी कोमल वाणी बोलता है ।

४. शब्दार्थ—नित्यविहारी=नित्य विहार करने वाले श्रीकृष्ण । पसार=विस्तार । जातें=जिससे । स्रुति=वेद ।

भावार्थ—नित्य विहारी भगवान् श्रीकृष्ण की कला से प्रथम पुरुष शेषशायी नारायण ने अवतार लिया । उनके अंश से माया की उत्पत्ति हुई जिसका विस्तार सर्वत्र है और जिससे महत्तत्व की उत्पत्ति हुई । वेद कहते हैं कि इस महत्तत्व से अहंकार के त्रिरूप सत्व, रज और तम गुण स्वरूप विष्णु, ब्रह्मा और शिव की सृष्टि हुई । भगवत रसिक जी कहते हैं कि श्री नित्य विहारी सब के तत्व-बीज हैं ।

टिप्पणी—इस कुण्डलिया मे सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम निश्चित किया गया है और नित्यविहारी भगवान् श्रीकृष्ण ही सब के आदि कारण माने गए हैं ।

५. शब्दार्थ—नित्यकिशोर=श्रीकृष्ण। जुगल-मंत्र=राधा-कृष्ण का मंत्र। स्यामा=राधिका। कारज=काम।

भावार्थ—स्वामी हरिदास जी हमारे आचार्य हैं जिनकी छाप रसिकों में है। वे नित्य किशोर भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं और युगल मंत्र (श्री राधाकृष्ण) का जप करते हैं एवं वेद की प्रेम-वाणी सुनते हैं। श्री वृन्दावन धाम है, और महारानी राधिका उनकी इष्ट हैं। श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि प्रेम देवता के मिले बिना कार्य-सिद्धि नहीं हो सकती इसलिए सब को सुख देने के लिए रसिकाचार्य स्वामी हरिदास जी प्रकट हुए।

६. शब्दार्थ—तुरक=मुसलमान। सुमन=पुष्प। कुञ्ज विहारी=कुंजों में भ्रमण करने वाले श्रीकृष्ण। ललितासखि=स्वामी हरिदास जी।

भावार्थ—हम न तो हिन्दू हैं, न मुसलमान हैं, न जैनी हैं और न अँग्रेज हैं। हम तो केवल कुञ्जविहारी भगवान् श्रीकृष्ण की पुष्प-शैया के पुष्पों को सँवारते रहते हैं। वैदिक और वाम-मार्गी तान्त्रिकों का पथ छोड़कर ही हम कुञ्ज विहारी की शैया सँवारते हैं। हमारा नाम भगवत रसिक है और हम युगल सरकार की केलि को देखने में मग्न रहते हैं। स्वामी हरिदास जी की कृपा पाकर हम सुख से श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं। हमें न तो किसी से द्रोह है और न किसी से मोह।

७. शब्दार्थ—कुधातु=निम्न श्रेणी की धातु। कचनै=सोना को। कालिमा=कालापन। खाड़=गड्ढा।

भावार्थ—जिस प्रकार कुधातु के मिलने से सोना दागी हो जाता है, पर सुहागे से मिलने पर उसकी समस्त कालिमा

दूर हो जाती है। जिस प्रकार जल गड्ढे में समा जाता है और करकट उस पर उतराती रहता है। इस प्रकार का जब संयोग हो तो समझना चाहिए कि यह ललिता की रीति है। श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि हम अनन्य महल में इस प्रकार शोभा पाते हैं जैसे आँखों में अंजन लगा रहता है और बरौनी उससे अलग बाहर रहती है।

८. **शब्दार्थ**—चसमा=नेत्र। निरंतर=सदैव। निगमागम, वेद-शास्त्र।

भावार्थ—श्री राधिका जी ने नित्य विहार का स्वरूप देखने के लिये हमें दिव्य नेत्र दिये हैं। इन नेत्रो के द्वारा हम ने अपने हृदय में देख लिया जिससे उनके प्रति प्रेम और विश्वास उत्पन्न हो गया। हमने अंतर में सदैव उस नित्यविहारी का दर्शन किया है जिसे वेद-शास्त्र और नारद, शुकदेव और सनकादि ऋषि 'नेति' कहते हैं। श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि (हृदय में नित्यविहारी प्रभु का) यह रस-रीति का पूर्णचन्द्रमा प्रकट हुआ है। पर बिना भाव रूपी नेत्र हुए यह प्रेम रूपी अमृत नहीं स्रवित करता। तात्पर्य यह है कि भाव-विभोर होने पर ही आँखों से आँसू प्रेम-पियूष के रूप में टपकता है।

९. **शब्दार्थ**—बनचर=बनचारी लोग। परसे=परसने

भावार्थ—हाट-बाजार में जौहरी जहाँ-तहाँ काँच के छोटे-छोटे दाने बिकते न देखकर बिना ग्राहक के अपना जवाहिर लिए लौट जाता है। बादल ऊसर में व्यर्थ ही बरसता है और छप्पन प्रकार के भोग बनाकर बनचरों को परोसना भी व्यर्थ है क्योंकि वे इसका कुछ स्वाद न बता सकेंगे। इसी तरह से शुष्क कर्मकाण्डी लोग धर्म के रति-रंग की क्या विशेषता जानें। श्री भगवत रसिक

जी कहते हैं कि रस-रहस्य को जानने वाले अनन्य भक्त कहीं-कहीं दिखायी देते हैं।

१०. शब्दार्थ—मुकुर=दर्पण। आनन=मुख। जोइ=देखा। मरदन करै=मालिश करने से।

भावार्थ—बिना अनुभव के सारा संसार अन्धा है, उसे किसी भी वस्तु का वास्तविक रूप नहीं सूझता। ऐसे व्यक्ति को दर्पण दिखाने से क्या होगा उससे तो मुख भी न देखा जायगा। इसी प्रकार शब्द का अर्थ भी कहना कठिन ही है। वाणी के अंतर्गत गूढ़ मन्त्रों को सुनने से प्रतीति न हो सकेगी और बिना प्रत्यक्ष रूप से देखे हृदय भी टहला रहेगा। श्री भगवतरसिकजी कहते हैं कि अनेक प्रकार से मालिश करने पर भी जिस प्रकार शव को चैतन्य नहीं किया जा सकता उसी प्रकार बिना अनुभव के रस-रहस्य की बातें हृदयगम नहीं होती हैं।

गुण। बयारि=वायु। डिगै=हिलै। मनसा=मन। सन्तत= सदैव। स्यामा-स्याम=राधा कृष्ण।

भावार्थ—श्री भगवत रसिक जी कहते है कि हम अनन्य मति होकर श्री राधा-कृष्ण के भक्ति-रंग मे रंगे हुए है। अमर कोष से धूम समान कस्तूरी नही छोड़ी जाती जैसे हारिल पक्षी की पकड़ी हुई लकड़ी। यह पक्षी जब लकडी को पकड़ता है तो चुम्बक की तरह उस (लकडी) को नही छोड़ता। इसी प्रकार सत, रज और तम आदि गुणो की वायु जब शरीर मे लगती है तो भी हमारा मन पर्वत के समान अडिग रहता है। (उसमें किसी प्रकार का विकार नही होता) वह निरन्तर श्री राधाकृष्ण को अपने हृदय रूपी धाम मे रखता है।

१३ **शब्दार्थ**—दई=दैव। प्रारब्ध=भाग्य। मरकट= बन्दर। मूठ=मुट्ठी। कीट=कीड़ा, भ्रमर आदि। नलिनी= कमलिनी।

भावार्थ—जो चलनी मे तो गाय दुहते हैं और दूध के बहने का उल्टा दोष दैव पर देते हैं ऐसे लोग हरि रूप गुरु की आज्ञा का पालन नही करते। फलत· अपनी मर्जी के अनुसार उल्टा काम करने से इन्हे अपनी करनी का फल भुगतना पड़ता है। इसमें ईश्वर की इच्छा भी नहीं रहती इसलिए देश, काल और भाग्य के अनुसार कोई देवता भी रक्षा नहीं करता। मूर्ख बन्दर जिस प्रकार तंग मुँह वाले बरतन में हाथ डालकर मुट्ठी बाँधकर मिठाई निकालना चाहता है और इसी समय हाथ न निकलने पर शिकारी द्वारा पकड़ लिया जाता है अथवा हठवश जो कीट कमलिनी में घुसा रहता है उसे प्रातःकाल हाथी विनष्ट कर देता है। इन दृष्टांतो को देते हुये भगवत रसिक जी कहते है कि जो अभागा है, उसके भाग्य के लिए बेचारी चलनी क्या करे। अर्थात् उसका कुछ भी दोष नहीं हैं।

१४ शब्दार्थ—समरथ=समर्थ । भरता=पति । गुर=गुरु । परमेगुर=श्रीकृष्ण । व्याल=सर्प । यामें=इसमे ।

भावार्थ—अनहोनी कुछ नहीं है, पर होनी (भवितव्यता) किसी के मिटाये नहीं मिट सकती । देखो, जानकी जी और महाराज दशरथ दोनों ही समर्थ थे । जानकी जी के पति यद्यपि भगवान रामचन्द्र जी थे फिर भी उन्हें वन में निर्वासित होकर रहना पड़ा और दशरथ जी के गुरु यद्यपि महर्षि वशिष्ठ थे तो भी उन को श्री राम का पुत्रशोक सहना पड़ा और अंत में इसी ग्लानि के कारण प्राणत्याग करना पड़ा । परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के होते हुए भी सभी यदुवंशी आपस में (भावीवश) लड़ झगड़ कर मर मिटे । चन्द्रवंशी राजा परीक्षित ने (भावीवश होकर ही), मरा हुआ सर्प ध्यानमग्न ऋषि के गले में डाल दिया था जिससे ऋषि द्वारा उन्हें अभिशाप सहना पड़ा । श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि इसमें प्रभु की इच्छा ही प्रधान है. भगवान् को अनहोनी भी कोई बात नहीं है ।

१५ शब्दार्थ—सजाती=सजातीय । बिगारी=बिगाड़ करने वाला ।

१६. **शब्दार्थ**—परसि=छू कर। सन्ताप=दुःख। बिगारै=बिगाड़ता है।

भावार्थ—पैसा इतना पापी है कि वह स्पर्श करके साधु को भी पापी बना देता है। यह गुरु और परमेश्वर से विमुख कर देता है और हृदय में अनेक प्रकार के संताप उत्पन्न करता है। यही नही, यह ज्ञान और वैराग्य को नष्ट कर देता है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मात्सर्य आदि को यह बढ़ाता है। सभी प्रकार के वैरियों में यह पल्ले दर्जे का है। संसार में कोई भी भक्तों का ऐसा द्रोही नहीं है। श्री भगवत रसिक अनन्य जनों से कहते हैं कि तुम भूलकर भी पैसा का स्पर्श न करो।

टिप्पणी—इसमें पैसा (धन) के प्रति क्षोभ व्यक्त किया गया है।

१७. **शब्दार्थ**—चून=चूना। चखनि=आँखों मे। नून=न्यून, कम। विहाय=छोड़कर। स्यामा-स्याम=श्री राधाकृष्ण।

भावार्थ—जो आता है वह चूने के लिए और जहाँ कोई जाता है वहीं चूना दृष्टिगत होता है। नेत्रों में चून लोभ या प्रतिष्ठा) का चश्मा देने से भक्ति-भाव में न्यूनता हो जाती है। साधु का वास्तविक रूप नहीं ज्ञात होता। लोग अपनी प्रतिष्ठा के मद में डूबकर और का और समझने लगते है तथा भगवान और गुरु का आश्रय छोड़कर अपनी प्रभुता का गान करने लगते हैं। श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि श्री राधा-कृष्ण की भक्ति ऐसी दशा में भला कहाँ हृदय में समा सकती है।

टिप्पणी—अपनी प्रभुता की प्रशंसा करते समय भक्ति-भाव एकदम खो जाता है। ऐसी स्थिति में भक्ति का आवेश भला कैसे आ सकता है।

१८. शब्दार्थ—परिहरैं=त्याग दें। विरक्त=वैरागी। अधोमुख करि=मुख नीचा करके। नाखैं=छोड़ देते हैं।

भावार्थ—गृहस्थ यदि गृह-कार्य छोड़ दे और सन्यासी यदि संचय की प्रवृत्ति रक्खे तो समझना चाहिये कि दोनों हरि और गुरु के द्रोही हैं और उनकी आज्ञा का उल्लंघन करते हैं। ऐसे व्यक्ति यमदूतों के सिपुर्द किए जाते हैं। वे इन्हें ले जाकर नीचा मुख करके अपने रौरवादि अट्ठाइस नरकों में डाल देते हैं। श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि अनन्यता के साथ भगवान श्री कृष्ण के प्रेमी बनो और वैरागी या गृहस्थ को यदि वह अपने कर्म से विरक्त हो तो उन दोनों का संग छोड़ दो।

१९. शब्दार्थ—लखि परी=दिखायी पड़ता है। षोथी=गली। साखि=साक्षी। सुमोपे=सुन्दर मुक्ति देता है।

भावार्थ—जिसको जैसा दुनिया में दिखायी देता है वह वैसा ही कहा करता है। यह सत्य है कि प्रभु से मिलने का एक ही मार्ग नहीं हो सकता। वेद, स्मृति, शास्त्र, भागवत पुराण और गीतादि भारी ग्रन्थ इसके साक्षी हैं ये सभी पृथक्-पृथक् मार्गों का उल्लेख करते हैं। राजा यद्यपि सब के लिए समान होता है पर प्रजा उसे विभिन्न भावों से देखती है राजा भी उसके भाव के अनुसार ही वैसी ही मुक्ति करता है।

टिप्पणी—इसमें 'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।' वाले सिद्धांत का निरूपण किया गया है।

२०. शब्दार्थ—आँधरिन=अंधों ने। निगम=वेद। आगम=शास्त्र।

भावार्थ—अंधों ने हाथी देखा पर अपने मन के अनुमान

से किसी ने हाथीके कान छुए, किसी ने पूँछ, किसी ने पैर और किसी ने पीठ, जिसके नीचे वड़ा भारी पेट रहता है। सब ने हाथी को प्रणाम किया। इसी प्रकार सत, महत और वेद-शास्त्र व पुराण आदि ईश्वर रूपी हाथी के बारे म अधो जैसा अनुमान करते हैं और आपस में झगड़ते हैं। श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि अनन्य दिव्य-दृष्टि प्राप्त महात्मा को साथी कीजिए जिसने अपने हृदय में सगुण रूप मे ईश्वर रूपी हाथी देखा है।

२१. शब्दार्थ—चेला=शिष्य। लड़ैती=प्यारी राधिका।

भावार्थ—हम न तो किसी के चेला हैं और न किसी के गुरु हैं। हम श्री राधा-कृष्ण की सखी बनकर उनके रंगमहल के अन्दर रहते हैं और उनकी सर्वदा टहल करते रहते है। यदि हमारी पलकें कहीं अन्यत्र जा पड़ती हैं तो दम्पति श्रीराधा-कृष्ण को अत्यन्त कष्ट होता है श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि प्रभु हमारे बिना केलि तक नही करते इसलिए हमने शरीर पर अभिमान करनेवाले गुनी शिष्यो को छोड़ दिया।

२२ शब्दार्थ—निरलेप=सबसे अलग।

भावार्थ—श्री हरि द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत आदि सिद्धांतो के अंतर्गत नहीं हैं। वे किसी भी मतवाद मे बँधे नही हैं प्रत्युत इनसे परे हैं। उनकी इच्छा ही द्वैत भाव उत्पन्न करती है इसके अनुसार वे सभी की रक्षा करने वाले है, स्वय निर्लेप रहते हैं और भक्तों से प्रसन्नता मानते हैं। श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि श्री राधा-कृष्ण परस्पर गलबाहीं दिए अनन्य भाव से डोलते हैं, वे सब के मनोरथ सिद्ध करते हैं। उनकी दृष्टि में उचित-अनुचित कुछ भी भाव नहीं रहता है।

टिप्पणी—इसमें मतवादों के भ्रम में पड़ने से बचने के लिए संकेत किया गया है।

२३ शब्दार्थ—मुकता = मोती। तोय=जल।

भावार्थ—जब सतगुरु का शब्द सुन्दर स्वाति नक्षत्र का जल बन और शिष्य का हृदय सीपी हो, उसमें शील रूपी मछली का टक्कर लगे तब वह ऐसा दिव्य मोती बने जैसे सजातीय की सङ्गति से दिव्यता प्राप्त होता है। अन्यथा स्वाति का जल भी साधारण जल के समान ही रहेगा और इस प्रकार मोती न हो सकेगा। श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि अनन्य आत्मा रूपी वधू ने नव गर्भ उरु में धारण किया है तो ऐसी अवस्था में सदैव सासु या स्वामी रूप सतगुरु ही उसके सहायक होंगे।

टिप्पणी—इस कुण्डलिया में सतगुरु ही सदा सहायक बताये गए हैं।

२४ शब्दार्थ—माछी=मक्खी। माछर=मच्छर। मूसे= चूहे। बादर=बादल। असन-बसन=भोजन वस्त्र। दुस्तर= कठिन। माछर-माँछी=मत्सर्य रूपी मक्खी।

भावार्थ—मक्खी, मच्छर, भिखारी, चूहा, बादर, चोर, काँटा और दीमक आदि से अनेक प्रकार का घोर दुःख जीव के लिए उत्पन्न हुआ, ऐसी दशा में प्राणी वन में क्योंकर वास करे वहाँ तो भोजन और वस्त्र की दुर्लभता से मन का धैर्य तुरन्त ही छूट जाता है। श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि अनन्य प्रभु का मिलना अत्यन्त दुस्तर है, श्रुति इस बात का साक्षी है। श्री राधा और श्री कृष्ण वहाँ विहार करते है जहाँ मात्सर्य रूपी मक्खी का लेश नहीं है। (भाव यह है कि जिसके मन में किसी प्रकार का मात्सर्य नही रहता उसमें प्रभु निवास करते है।)

२५. शब्दार्थ—स्वान=कुत्ता । रासभ=गदहा । हय=घोड़ा । साखि=साची । हरि=श्रीकृष्ण । बाँभन=ब्राह्मण । नौवा=नाई ।

भावार्थ—कौआ धोने से हंस नहीं होगा और न कुत्ता धोने से बछड़ा ही बन जायगा । गदहा भी धोने से घोड़ा नही हो सकेगा, भले ही धोने का कार्य भगवान स्वयं करें । दुर्योधन का दृष्टांत लेकर देखिए कि भगवान श्रीकृष्ण उसके दरबार मे पांडवो के दूत बनकर गए और बहुत प्रकार से उस को समझाया पर उसे उनके वचन से कुछ ज्ञान (बोध) नहीं हुआ । श्रीभगवतरसिकजी कहते है कि नाई कितना ही क्यो न करे पर वह ब्राह्मणों की सी अनन्यता को नहीं प्राप्त कर सकता इसी प्रकार कौवा हंस-सङ्गति कितनी भी क्यो न करे उसके स्वभाव का गुण मिट नही सकता ।

टिप्पणी—यह सूरदास जी के 'प्रकृति जो जाके अंग परी' वाले पद से मिलता-जुलता है ।

२६. शब्दार्थ—कूकर=कुत्ता । बावरो=पागल । पूत=पुत्र । काम=कामदेव ।

भावार्थ—जिस को पागल कुत्ते ने काटा हो या जिसको भूत लगा हो वह पराये पुत्र को दाब करके उसे वशीभूत करके अपना अलग ही अमल साधता है । प्रेम की यह गति समझनी चाहिए कि इसके द्वारा जीव ब्रह्म रूप को प्राप्त हो जाता है जैसे गोपियाँ प्रेम की तन्मयता वश अपने को ही कृष्ण समझने लगी थीं । श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि श्री राधा कृष्ण का अनन्य भक्त होकर प्रेम के अद्भुत रस का आस्वादन

करना चाहिये। जो श्री राधाकृष्ण के नित्य विहार को देखकर उसी मे मग्न रहता है उसे काम आदि कभी नहीं सताते।

टिप्पणी—'जिय तें ईश्वर होय'—गोपियों की इस अनन्यता पर किसी कवि ने कहा है :—

'प्रान भये कान्ह मय कान्ह भये प्रान मय
हिय में न जानि परै कान्ह हैं कि प्रान हैं।"

२७. शब्दार्थ—साँचो = सत्य। कासों = किससे। परतीत = विश्वास। मन माफिक = मन चाहा।

भावार्थ—अपना कोई धर्म सत्य नहीं है, ऐसा जानकर फिर किससे प्रेम किया जाय। अपने धर्म मे अनेक प्रकार के मार्गों व रीतियों का उल्लेख किया गया है जिन पर सहसा विश्वास नहीं होता। ऐसी अवस्था मे किसे अपना धन (प्राण) अर्पित किया जाय। वन और वस्ती में खोजकर देखा पर वह कहीं मन माफिक न मिल सका। श्रीभगवतरसिकजी कहते है कि जो अनन्य रसिक हैं उनके साथ में उनकी प्रेम-अग्नि को कोई सह नहीं सकता। इसी प्रकार जो सिंह है वह तो सचमुच हाथी को मार डालता है पर जो कुत्ता है वह सूखा हाड़ चबाकर ही संतोष मानता है।

२८. शब्दार्थ—वैद=वैद्य। काको = किसको। परिहर= छोड़कर।

भावार्थ—घर-घर में सब के वैद्य और गुरु हैं ऐसा कोई नहीं है जिसके वैद्य और गुरु न हो। वैद्य औषधि और गुरु मन्त्र बताता है और यह विश्वास दिलाता है कि यह औषधि या मंत्र हमारा अजमाया हुआ है इसके सेवन करने से शीघ्र ही कार्य-सिद्ध हो जायगा। इसलिये हमारा कहना मानो और इसके द्वारा मन चाहा आनन्द प्राप्त करो। अब रोगी के सामने यह समस्या आ

जाती है कि वैद्य और गुरु मे वह किसे हीन समझे और किसे छोड़ें। श्रीभगवतरसिकजी कहते हैं कि इनमें निश्चय रूप से एक को चुन लेना चाहिए और व्यर्थ मे घर-घर न डोलना चाहिए।

टिप्पणी—इसमे यह बताया है कि मनुष्य को द्विविधा (संशय) मे न पड़ना चाहिए और अपने मन मे एक विश्वास दृढ़ रखना चाहिए।

२६. शब्दार्थ—परम पावन=अत्यन्त पवित्र। क्रीड़ा= राधाकृष्ण की केलि। मनमानी=स्वच्छन्दता।

भावार्थ—करुवा का पानी अत्यन्त पवित्र होता है, जिसके पीने से भगवान श्रीकृष्ण और महारानी राधिका का हृदय मे आगमन होता है तथा श्रीराधा-कृष्ण के केलि का साक्षात् अनुभव होता है और उनके आमोद-प्रमोद की कथा ज्ञात हो जाती है। श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि ऐसी अवस्था मे निकुञ्ज-महल की मनमानी टहल मिलती है।

३०. शब्दार्थ—लाल=प्यारे। बिसरी=भूल गयी। ऐंचिकै =खींचकर।

भावार्थ—जिसने प्यारे श्रीकृष्ण की मधुर मुस्कान देखी है उसको वेद की विधि, जप, जोग, संयम और ध्यान सब कुछ भूल जाता है। नेम-व्रत, आचार-पूजा और पाठ तथा गीता का ज्ञान भी भूल जाता है। श्रीभगवतरसिकजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण के नेत्रो ने भाव रूपी म्यान से मुस्कान रूपी तलवार को खींचकर भक्त नेत्रों पर वार किया जिससे वे रक्तमय हो रहे हैं। (भाव यह है कि श्री कृष्ण की वक्र चितवन और मधुर मुस्कान को देखकर भक्त की आँखों में अनुराग की लाली दौड़ जाती है।)

भक्त नामावली

३१. शब्दार्थ—गनपति=गणेश। अज=ब्रह्मा। महेशा=

शिवजी। पंछी=पक्षी। पटतर=समता। ग्रह=गृह, घर। परिकर करि=टहल करके। अनादर=अप्रतिष्ठा।

भावार्थ—हम इन साधुओं की पंक्ति में हैं जिनका नाम लेने ही दुःख छूट जाता है और शरीर इनकी सङ्गति को प्राप्तकर आनन्द लूटता है। शेषशायी नारायण, शिव, ब्रह्मा, गणेश और कामदेव व रति श्रेष्ठ हैं। देवता, मनुष्य, राक्षस, मुनि, पशु और पक्षी आदि में जो हरि-भक्ति का पारायण करते हैं वे भी मुख्य हैं। वाल्मीकि, नारद, अगस्त्य शुकदेव, वेदव्यास, कुलहीन सूतजी, शबरी, स्वपच, वशिष्ठ, विदुर, प्रेम-प्रवीणा विदुरानी, गोपी, गोप, द्रौपदी, कुन्ती, पंच पाण्डव, उद्धव, विष्णु स्वामी, निंबार्क, माधो और रामानुजाचार्य का मत सीधा है। लालाचार्य धनुर्दास और कूरेश तो भावरस में भीगे हुये हैं। गुरु ज्ञानदेव और उनके शिष्य त्रिलोचन की उपमा किससे दी जाय? (यह बड़े अपूर्व भक्त थे) पद्मावती के चरणों का यशोगान करनेवाले (जायसी) और यशस्वी कवि जयदेव और प्रेमी बिल्वमंगल जिन्हें चिन्तामणि ने भगवान के चित स्वरूप का दर्शन कराया। केसवभट्ट नारायण भट्ट, गदाधरभट्ट, स्वामी वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ और ब्रज के गूजर जाट लोग, नित्यानन्द, अद्वैतस्वामी, सचीपुत्र महाप्रभु चैतन्य, भट्टगोपाल, गोस्वामी रघुनाथ, मधु गोस्वामी और रूप सनातनजी जिन्होंने अपनी स्त्री, पुत्र और सम्पत्ति का त्याग करके वृन्दावन को भजा। श्रीव्यासदास और गोस्वामी हितहरि वंश जिन्होंने प्रति दिन श्रीराधाकृष्ण का दुलार किया था। श्री स्वामी हरिदास, विट्ठलविपुल और बिहारिनि-दासी श्री नागरीदास जो नित्यविहार करने वाले दम्पति की उपासना तथा उनकी भक्ति की नवल माधुरी में रत थे। तानसेन अकबर करमैती, मीरांबाई, रत्नावती, मीर, माधो और रसखानि जिन्होंने प्रेम

की रीति का गायन किया। स्वामी अग्रदास और भक्तवर नाभा
जी आदि श्री राम-सीता क उपासक थे। सूरदास, सूरदास
मदन मोहन, नरसी आदि माखनचोर श्रीकृष्ण के उपासक है।
माधवदास, गोस्वामी तुलसीदास, कृष्णदास, परमानद, विष्णु
पुरी, श्रीधर, मधुसूदन, पीपा और स्वामी रामानन्द, अलि
भगवान, रसिकमुरारि, स्यामानन्द, रका वका, चोधर और सज्जन
भक्त परमत्यागी और नि.शक थे। लाखा, अगद भक्त, गोविन्द
महाजन प्रबोधानन्द, मुरारिदास, प्रेमनिधि, विट्ठलदास आदि
मथुरा के वीर भक्त थे। लालमती, सीता, प्रभुता, आभी गोपाली
बाई जिसने मिलपिल्ले की पूजा करके अपने सुत को विष दे
दिया और रसीली भक्ति प्राप्त की। पृथ्वीराज, खैमाल, चतुर्भुज
स्वामी, आशकरण, मधुकर जैमल नृप, हरीदास ये सब रस-राशि
श्रीराम के प्रेमी थे। सैना, धना, कबीर, नामा कूबा, कसाई सदन
पिंगला वेश्या और सन्त रैदास जिन्होने सभा मे श्याम की
सहायता नहीं सहन की। चित्रकेतु, प्रह्लाद, विभीषण और बलि
जिसके गृह पर भगवान वामन रूप धर कर गये थे। जामवंत,
हनुमान, जटायु, गुह आदि जिनको श्री रामजी ने पवित्र किया
था। प्रेम, विश्वास और साधुओ की कृपा से हम इन्हे अपना
इष्टदेव और गुरु जानते है। अपना ऐश्वर्य और वेद की मर्यादा
छोडकर मैं इनके हाथ बिक गया हूँ। चौदहो लोक मे भूत
भविष्य में जो हरि-भक्त हो गये हों अथवा होगे उन अभिमान
रहित विरक्त सन्तों से हमारा व्यवहार है। श्री भगवत रसिकजी
कहते है कि प्रेमी सन्तो की चाकरी करके सादा भोजन पाता हूँ।
ऊँचे कुल के योग्य आचार न देखकर अथवा अपना अनादर
देखकर भी इन साधुओ की सङ्गति मे इसका ध्यान नही आता है।

टिप्पणी—इसमे प्रायः सभी ऊँचे सन्तो-महतो व भगवान
के भक्तों के नाम गिनाये गए हैं।

३२. शब्दार्थ—बकता = कथा सुनाने वाले। वासा = निवास।

भावार्थ—कपट से जो साधुओं का वेष धारण करते हैं उनसे भगवान के हृदय में कष्ट पहुँचता है। ये लोग स्वप्न में भी परमार्थ-चिंतन नहीं करते और सदा पैसों को खींचने में व्यस्त रहते हैं। कभी ये लोभवश वक्ता का रूप धारण कर लेते हैं और भागवत की कथा कहते हैं उसमें ये अर्थ-अनर्थ कुछ भी नहीं कहते पर पैसे की ओर ही अपनी इच्छा दौड़ाते हैं। कभी ये भगवान के मन्दिर का सेवन करते हैं और वहाँ सदैव वास करते हैं। इनमें भक्ति भाव लेशमात्र भी नहीं आता है, ये सदा पैसा पाने का लोभ किये रहते हैं। ये नाचते हैं, गाते हैं, मन को मुग्ध करने वाली गीत कविता करते हैं पर बिना सच्ची भावना के श्री हरि इनके वशीभूत नहीं होते। इनका सब प्रकार का रहने का ढंग व्यर्थ ही रहता है। बिना ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के इनमें से किसी को भी सत्य न मानना चाहिए। श्री भगवत रसिकजी कहते हैं कि ये भगवान से विमुख रहकर जो कपटभरी चतुरता करते हैं, उसे पाखंड ही समझना चाहिए अर्थात् उस पर कभी विश्वास न करना चाहिए।

३३. शब्दार्थ—जामें = जिसमें। सर्वभूत पर = सभी प्राणियों पर। इन्द्रीजित = इन्द्रियों को जीतने वाला।

भावार्थ—इतने गुण जिसमें हैं, वही सन्त है। जो परम भागवत संतों के मध्य बैठकर अपने श्रीमुख से श्रीकृष्ण के गुणों का गान करता है, जो सदैव भगवद्भजन करता है, साधुजनों की सेवा करता है और संसार के सभी प्राणियों पर दया करता है, जो हिंसा, लोभ, दम्भ और छल-कपट को त्याग देता है और माया

को ज़हर के समान देखता है, जो अत्यन्त सहनशील, उदार आशय (विचार) रखने वाला, धैर्य के साथ विवेक रखनेवाला होता है तथा सत्य वचन बोलता है, सब को सुख देने वाला होता है और एक इष्ट देव की अनन्यता का व्रत ग्रहण करता है, जो इंद्रिय पर विजय प्राप्त किये रहता है, जिसको कुछ अभिमान नहीं होता है और जो संसार को अपने विचारों से पवित्र रखता है। श्री भगवतरसिक जी कहते हैं कि ऐसे सन्तों की संगति दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के तापों को नष्ट करने वाली होती है।

३४. शब्दार्थ—वासना = इच्छा। अमल = मलरहित, स्वच्छ। अलौकिक = विलक्षण। ठौर = स्थान।

भावार्थ—हमारे हृदय में दूसरा ही वृन्दावन है, जहाँ रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण भगवान नित्य रहते हैं वहाँ माया और काल का प्रभाव नहीं व्यापता है। मन की सत और असत् भावनाएं और चंचलता सभी वहाँ पर छूट जाती हैं। श्रीभगवतरसिक जी कहते हैं कि हमारे श्रीगुरु (ललित मोहिनी दास जी) ने यह विमल और विलक्षण स्थान बताया है।

३५. शब्दार्थ—वर वारज = श्रेष्ठ कमल। कर गहि = हाथ पकड़ कर। संभारे कारज = कार्य सिद्ध किये।

भावार्थ—रसिकों के आचार्य स्वामी हरिदास जी पर मैं बलिहार होता हूँ जिन्होंने हृदय-सिन्धु को मथकर नित्यविहार रूपी श्रेष्ठ कमल का उद्धार किया है। हमारे सारे भ्रम, अज्ञानांधकार और श्रम को उन्होंने हर लिया और हाथ पकड़ हमें सँभाला एवं हमारे सभी कार्यों को सिद्ध किया। श्री भगवतरसिक जी कहते हैं कि आर्यों के सहायक होकर उन्होंने श्री राधाकृष्ण भक्ति को प्रतिष्ठित किया।

३६. शब्दार्थ—वृन्दावन-चंद=वृन्दावन में चन्द्रमा की भाँति प्रकाश करने वाले। विहरत=घूमते हैं।

भावार्थ—श्री वृन्दावन के चन्द्रमा श्री कृष्णजी को नमस्कार है, नमस्कार है। श्री राधा-कृष्ण जी नित्य हैं, अनन्त हैं, अनादि हैं, सदैव एकरस में रहते हैं और स्वच्छन्द विहार करते हैं। वृन्दावन के पक्षी, मृग, वृक्ष और सुन्दर लताओं का समूह सभी सत, चित और आनन्दमय हैं (क्योंकि इनमे सच्चिदानन्द भगवान श्रीकृष्ण की सत्ता व्याप्त है) श्री भगवतरसिक जी कहते हैं कि हम निरन्तर भगवान की सेवा में सलग्न रहते और भ्रमर बनकर उनके आनन्द रूपी पराग का पान करते हैं।

३७. शब्दार्थ—भुगतै=भोगै। शंक=शंका। राव=राजा। रंक=गरीब। मम नैन=मेरे नेत्र।

भावार्थ—हमारा शरीर दुख सुख का भोग करता है, हमें इसके विषय मे कुछ शंका नही है। कोई हमारी निन्दा या स्तुति करे वह चाहे राजा हो या रक पर हमें उससे क्या लाभ ? श्री भगवतरसिकजी कहते हैं कि मुझसे परमार्थ व जगत का व्यवहार बने या न बने पर हे मेरे प्यारे ! तुम अजन रूप होकर मेरे नेत्रो में वास करो।

३८. शब्दार्थ—मकरंद=पराग। छके=मस्त।

भावार्थ—तुम्हारे मुख रूपी कमल का पराग पान करने के लिए मेरे नेत्र भ्रमर रूप हैं। बिना तुम्हें देखे मेरी आँखो की पलकें क्षण भर के लिए भी नहीं लगतीं ! मेरे ये भ्रमर रूपी नेत्र फड़फड़ाते हैं और नेहाने से बिल्कुल नहीं लौटते। ये सदैव आपके सौन्दर्य-रस-रूपी पराग का पान करते हैं और भूलकर भी इधर उधर नहीं

देखते। श्रीभगवतरसिक जी कहते हैं कि ये नेत्र तुम्हारे रूप-मद से छककर मतवारे बने घूमते रहते हैं।

३९. शब्दार्थ—पलहुँ = क्षण भर के लिए भी।

भावार्थ—ऐ प्यारे! तेरा मुख चन्द्रमा है और मेरे ये नेत्र चकोर हैं। ये अत्यन्त आर्त हैं, अनुरागी है, और लोभी हैं। इनकी गति भूल गयी है, अब ये क्षण भर को भी नही लगते हैं। ये रात दिन मिलने के लिये फड़फड़ाते हैं। ये आपसे मिलकर ही रहते हैं पर इन्हे ऐसा प्रतीत होता है मानो ये कभी मिले ही नही (इसलिए और भी उत्सुकतापूर्वक ये मिलने की चेष्टा करते हैं) श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि प्रेमी की रहस्यमयी बातें बिना प्रेमी हुए कोई समझ नही सकता।

४०. शब्दार्थ—काया = शरीर। अभिराम = सुन्दर। हृदय-सरोज = हृदय रूपी कमल।

भावार्थ—जिसका शरीर, कुंज है, मन निकुंज है और मन सुन्दर द्वार हैं। श्री भगवतरसिकजी कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति के हृदय-कमल में श्रीराधाकृष्ण सुखपूर्वक विहार करते हैं।

४१. शब्दार्थ—जुगुल = श्रीराधाकृष्ण। दृगन = नेत्रो से।

भावार्थ—अपनी जिह्वा से युगल दम्पति श्री राधाकृष्ण के नाम का स्मरण करना चाहिए और नेत्रों से उनके सौन्दर्य का अवलोकन करना चाहिए। श्वान, मृग और राजा की वृत्ति को छोड़कर मधुकरी वृत्ति द्वारा भिक्षा ग्रहण करके पेट भरना चाहिए।

४२. शब्दार्थ—भ्रमत = घूमता है।

भावार्थ—श्री भगवत रसिकजी कहते हैं कि अनन्य भगवद्भक्ति के बिना ही जीव संसार मे भ्रमित होकर घूमता

रहता है और जप, तप, तीर्थ, दान, व्रत, योग, यज्ञ और आचार आदि में व्यर्थ ही लगा रहता है।

४३. शब्दार्थ—भजै=दूर हो जावै।

भावार्थ—जो शरीर की वेदना अथवा पीडा को अपनी औषधि द्वारा नष्टकर दे वही सच्चा वैद्य है और जो भगवान से मिलाप करावे वही सच्चा गुरु है, जो भूख को मिटा दे वही भोजन है। श्री भगवत रसिक जो कहत हैं कि इनके अतिरिक्त और सब कुछ व्यर्थ है।

४४. शब्दार्थ—गुन लीने=गुन को समेटे।

भावार्थ—श्री भगवत रसिकजी कहते है कि मनुष्य स्वाधीन नहीं है वह तो पतंग के समान ही पराधीन है जैसे पतग की डोरी बढ़ाने से वह आकाश मे बहुत दूर चली जाती है और डोरी समेटने से वह एकदम पास आ जाती है। जीव रूपी पतग की डोरी परमात्मा के हाथ में रहती है। जीव जब अपने गुण का विस्तार करता है तो परमात्मा उससे दूर रहते हैं पर जब वह गुण का विस्तार नहीं करता तो परमात्मा उसके संग में रहते हैं।

टिप्पणी—कविवर बिहारीलालजी ने भी इसी प्रकार का सा एक दोहा कहा है—

> दूरि भजत प्रभु पीठ दै, गुन विस्तारन काल।
> प्रगटत निर्गुन बीच ही, चग-रंग गोपाल॥

४५. शब्दार्थ—चकरी=चकई।

भावार्थ—श्री भगवत रसिकजी कहते हैं कि मचा को चकई सा बनाकर उसमें ध्यान की डोर लगाकर श्रीराधिकाजी

रात-दिन खेलती रहती है और कभी सुरत रूपी डोर नहीं तोड़ती

४६. शब्दार्थ—विपिन=जंगल।

भावार्थ—ग्रामसिंह जंगली सिंह का रूप देखकर (अपना प्रति द्वन्द्वी समझकर) गर्जता है। उसके शब्द को सुन-सुनकर सभी बेवकूफ कुत्ते भी गलियों में भूँकने लगते हैं। इस प्रकार वे अपनी मूर्खता प्रकट करते हैं।

४७. शब्दार्थ—निरगुन=निर्गुण। नेरे=निकट।

भावार्थ—वह न तो निर्गुण है, न सगुण है, न निकट है और न दूर ही है। श्री भगवत रसिकजी कहते हैं कि वह अनन्य भक्तों की अद्भुत संजीवनी है।

४८. शब्दार्थ—जरा=वृद्धावस्था। व्यापै=समावै।

भावार्थ—बाल्यावस्था और फिर युवावस्था में उन वस्तुओं का भोग न करना चाहिए जिनसे बुढ़ापे में रोग व्यापे। इन अवस्थाओं में ऐसी वस्तुओं का सेवन करना चाहिए जिससे सन्तुष्टि और दृढ़ता आवे।

४९. शब्दार्थ—निसि-दिवस=रात दिन।

भावार्थ—जहाँ पर जन्म-मरण का प्रश्न नहीं है, माया नहीं है और जहाँ दिन-रात कुछ नहीं होता वहाँ पर सत-चित और आनन्द रूप में एक रस होकर दो अनुपम रूप—श्रीराधा और श्रीकृष्ण' रहते हैं।

५०. शब्दार्थ—निसिबासर=रातदिन।

भावार्थ—रात-दिन, तिथि, महीना और ऋतु आदि जो जग के व्यवहार हैं इन सबको साधारण व्यवहार से परे रखकर इनमें नित्य, एकरस, भगवत्-प्रेम का भाव देखना चाहिए।

५१. शब्दार्थ—वारुनी=मदिरा । व्याल=सर्प ।

भावार्थ—जो युगल श्री राधा-कृष्ण की छवि रूपी मदिरा का पान करके छका हुआ है और जिसे प्रेम के श्रेष्ठ सर्प ने डस लिया है। इन दोनों के खेल देखकर मंत्र-बल से सर्प का विष उतारने वाला गारुड़ी अपने नेम का ध्यान (पालन) नहीं करता। वह उसे भूल जाता है।

५२. शब्दार्थ—नित्त=नित्य ।

भावार्थ—नवरस रूपी नित्य विहार में रस-प्रवीण नायक श्री कृष्णजी नित्य मस्त रहते हैं। श्री भगवत रसिकजी कहते हैं कि हम अनन्य वर की सेवा मन, बुद्धि और चित्त से करते है।

५३. शब्दार्थ—अजीरन=अजीर्ण, अपच । ववन=वमन। दारिद-दवन=दरिद्रता को नष्ट करने वाले। मवन=मौन।

भावार्थ—रसिक श्री राधावल्लभ की जय हो, जय हो। तुम रूप, गुण, सुन्दरता, प्रभुता और प्रेम के पूर्ण भवन हो। तुम हमारे मन की मलीनता हरो जिससे माया रूपी वायु व्याप्त न होने पावे। विषय-रस में लुब्ध इन्द्रियों को अति अजीर्ण हो गया है इसे वमन कराइए। अपना हृदय नेत्र खोलिए जिससे सुखद वन भूमि दिखलायी पड़े। दयानिधि श्रीकृष्ण जी चिन्तामणि के सदृश हैं और दुसह दरिद्रता को नष्ट करने वाले हैं। श्री भगवत रसिकजी कहते हैं कि हे प्रभु! हमारी व्यथा मिटाइए और मौन-व्रत त्यागकर हँसकर हमसे मेंटिए।

५४. शब्दार्थ—दुरास=दुराशा। असन=भोजन। वसन=वस्त्र। तिमिर=अंधकार। दिनेस=सूर्य।

भावार्थ—कुंजबिहारी श्रीकृष्णजी ही उनकी एक आशा हैं, उन्होंने समस्त दुराशाओं का त्याग कर दिया है, भोजन और वस्त्र से वे उदास रहते हैं और प्रेम का महाकठिन व्रत धारण करने वाले हैं। गान विद्या, दया और गुण के वे भंडार हैं, रसिकों के प्रधान मुकुटमणि हैं, समयानुसार प्रेम भोग में तल्लीन रहते हैं और प्यारे श्रीकृष्ण व प्यारी राधिका जी को सदैव प्रसन्न रखते हैं, अज्ञानान्धकार को हरने के लिए वे ज्ञान रूपी सूर्य हैं। हृदय का ताप हरने के लिए चन्द्रमा के समान हैं, पाप को जलाने के लिए वे अग्निदेव के समान हैं और गुरुता की दृष्टि से वे ब्रह्मा के समान हैं, वे सदैव निधिवन में रहा करते हैं, दम्पति का विहार ही उनका सरस धन है। भगवत रसिकजी कहते हैं कि ऐसे रसिक श्री हरिदास स्वामी की जय हो, जय हो। मैं उन पर बलिहार होता हूँ।

५५. शब्दार्थ—प्रिय प्रिया=श्रीकृष्ण व राधा। मोद=प्रसन्नता। परसत=छूते ही,

भावार्थ—श्रीकृष्ण व राधिका जी का यह दिव्य प्रसाद है कि उनका दर्शन मन मे प्रसन्नता की वृद्धि करता है, उनका स्पर्श हृदय का समस्त पाप दूर करता है और परम प्रेम को उत्पन्न करता है एवं स्त्री पुरुष का शारीरिक भेद-भाव भुला देता है। श्री भगवत रसिक जी कहते हैं कि ऐसे समय मे युगलमूर्ति श्रीकृष्ण व राधिका जी हृदय के प्यारे आभूषण होते हैं।

ललितकिशोरी

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रारम्भ में श्री ललित किशोरी जी ने ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवियों की भाँति रचना की है। इनका वास्तविक नाम शाह कुन्दनलाल था। किसी कारण से इन्होंने लखनऊ का अपना शाही वैभव त्याग कर वृन्दावन धाम में रहने का निश्चय किया। यहाँ आकर इन्होंने 'ललित-निकुञ्ज' नाम का एक सुन्दर मन्दिर बनवाया और उसमें सं० १९२५ में श्री राधारमण जी की मूर्ति स्थापित की। अपने वैभव-त्याग और विरक्ति-जनित आनन्द के सम्बन्ध में आपने लिखा है—

> छोड़ दिया सब माल-खजाना, हीरा मोती लुटाया है।
> फेंक-फाँककर शाल दुशाले, जग से चित्त उठाया है॥
> 'ललित किसोरी' छोड़ि कानि कुल, मन-माशूक लुभाया है।
> धीरज धरम सभी छोड़ा, तब मजा फकीरी पाया है॥
> जंगल में अब रमते हैं, दिल बस्ती से घबराता है।
> मानुस गंध न भाती है, मृग मरकट मोर सुहाता है॥
> चाक गरेबाँ करके दम-दम, आहें भरना भाता है।
> 'ललित किसोरी' इश्क रैन-दिन, ये सब खेल खिलाता है।

वर्ण्य विषय—प्राचीन कृष्ण भक्त कवियों की भाँति आपने रासविलास अष्टयाम और समय-प्रबन्ध सम्बन्धी पद लिखे हैं। श्रीकृष्ण की छद्म लीला लिखने में तो आप बड़े ही कुशल थे। आपने दस हजार पदों की रचना की है।

समीक्षा—आपका प्रेम-वर्णन अत्यन्त अनूठा है पर उस

र कहीं-कहीं फारसी के सूफी कवियों की प्रेम-पद्धति की भी छाप मिलती है, आपके पहले कृष्ण-भक्त श्री नागरीदास जी ने इस प्रकार का वर्णन अपने 'इश्क चमन' आदि में किया है, इस परम्परा का पालन आपने भी किया है, पर सर्वत्र नहीं। कुछ ही स्थलों पर आपने 'गरेबाँ चाक' किया है फिर भी आप मस्ती में झूमने वाले रसोन्मत्त कवि कहे जा सकते हैं आप सदैव भगवान श्रीकृष्ण की प्रत्येक चेष्टाओं व क्रियाओं पर मोहित होते रहे हैं। 'लटकि-लटकि मनमोहन आवनि और 'मुरकि मुरकि चितवनि चोरनि' आदि बहुत से पदों में इस का आभास मिलता है। भगवान के सुन्दर रूप के प्रति आपकी अत्यन्त मोहासक्ति ज्ञात होती है। देखिए—

रे निरमोही छवि दरसाय जा।
कान चातकी स्याम विरह-घन, मुरली मधुर सुनाय जा॥
'ललित किसोरी' नैन-चकोरनि, दुति मुख-चंद दिखाय जा।
भयो चहत अब प्रान बटोही, रूसे पथिक मनाय जा॥

शरीर की अनित्यता आदि से उदासीन होकर आप वैराग्य के विषयों की ओर मुड़ गये थे। विनय के पद आपने बहुत अच्छे लिखे हैं।

भाषा और शैली—आपकी काव्य भाषा बहुत ही प्रवाहमय, सरल, सुबोध और स्पष्ट है, सरसता भी भरपूर है। आपने ब्रजभाषा में तो पदों की पर्याप्त रचना की है पर खड़ी बोली में भी कई झूलना छन्द लिखकर उसे अछूता नहीं छोड़ा है। आपकी खड़ी बोली की रेखता तो रासधारियों में खूब प्रचलित है।

अलंकारों का प्राचुर्य और काव्य शास्त्र की अन्य विशेषताएँ आपकी कविता में नहीं पायी जाती।

ललितकिशोरी

१. **शब्दार्थ**—तुव = तुम्हारे। पदतर-रेनु = चरण के नीचे की धूलि। वारने = निछावर। दसांस = दशम अंश, दसवाँ भाग। सतांस = शतांश, सौवा भाग।

भावार्थ—ऐ रसीली राधिके मैं तुम्हारे चरण के नीचे की धूलि हूँ। प्रेम की मूर्ति ऐ मानिनी! तेरी समता कौन कर सकता है। ऐ प्रेम-रँगीली! करोड़ो प्राणो की निछावर करके भी तुम से उऋण नही हुआ जा सकता। ऐ दया करने वाली छबीली! आप अपनी प्रेम-छटा का दान करुणा करके कीजिए श्री ललितकिशोरी जी कहते हैं कि केलि में हठ करने वाली देवि! आपकी बड़ाई हम किस मुख से करें। ऐ प्रेम में मतवाली! तेरे प्रेम का दसवाँ और सौवाँ भाग भी मुझमें नही है।

टिप्पणी—इस पद में श्री राधिका जी की वन्दना की गयी है।

२. **शब्दार्थ**—कमलमुख = कमल जैसा मुख। विकसित = खिले हुए। मुकुलितः अर्द्ध खिले हुए। निरखौ = देखो। उघारे = खोलकर।

भावार्थ—हे प्यारे! आज अपना कमलमुख खोलो। देखो, कमल खिल रहा है, कुमोदिनी अर्द्ध-स्फुटित है, भ्रमर समूह मस्त होकर गुंजार कर रहा है। पूर्व दिशा सूर्य रूपी थाली की आरती हाथ मे लिए आपकी आरती उतारने को प्रस्तुत है। श्री

मूल आदि पाकर ही सन्तोष कर लेते हैं तो फिर विविध प्रकार की खट्टी मीठी वस्तुएँ खाने से क्या लाभ ? यदि कोई हमे क्षण में बादशाही का पद दान करदे और अपना सारा मालखजाना और मोती आदि दे दे तो भी हमें उससे क्या लाभ ? श्री ललितकिशोरी जी कहते हैं कि जो ससार हमारा रूप नहीं पहचानता (हमारे सतस्वरूप को नही जानता) उस संसार में आने और सम्पर्क बढ़ाने से क्या लाभ ?

९. **शब्दार्थ**—इकत=एकान्त। कदरा= खोह। मानुष= मनुष्य। भजन-अहारी=भजन मे तल्लीन रहने वाले।

भावार्थ—हम अपने मन के मौजी हैं, जहाँ हमारा मन चाहता है वहीं हम घूमते हैं। एकांत मे बैठ कर अपने प्यारे इष्टदेव का ध्यान करते हैं और कंद-मूल तथा फल आदि का आहार करते हैं। हम कंदरा मे बसते हैं, बन मे घूमते हैं और मनुष्यो के पास कभी नही आते। श्री ललितकिशोरी जी कहते हैं कि हम लोग नित्य भजन में तल्लीन रहते हैं और लोगों की भीड से घबड़ाते हैं।

१०. **शब्दार्थ**—कानि= मर्यादा। मन-माशूक=मन रूपी प्रेमी। फकीरी = साधुता।

भावार्थ—हमने अपना सारा माल-खजाना त्याग दिया है और हीरा मोती दूसरों को लुटा दिया है। अपने शाल-दुशालो को फेंक-फाँक कर जगत से चित्त को हटा लिया है। श्री ललित-किशोरीजी कहते हैं कि हमने अपने वश की मर्यादा को छोड़ कर अपने मन रूपी माशूक को (कन्हैया की छवि से) लुब्ध किया है। जब हमने धैर्य और धर्म को भी छोड़ दिया है तभी साधुता का असली आनन्द हमने प्राप्त किया है।

११ शब्दार्थ—मानुस-गंध = मनुष्य की महक। मरकट = बन्दर। चाक गरेबाँ करके = अपने कपड़े को फाड़ करके। इश्क = प्रेम। दम-दम = हर समय।

भावार्थ—हम अब जंगल में घूमते हैं, बस्ती में जाने से हमारा हृदय घबराता है। हमें मनुष्य की गंध अब अच्छी नहीं लगती है (अर्थात् अब हम मनुष्यों के सम्पर्क से बहुत दूर रहते हैं) हमें तो अब बन्दर और मोर आदि वन के जंतु ही पसन्द आते हैं। अपने शरीर पर पड़े हुए कपड़े को फाड़कर अब हमें हर समय आहें ही भरना आता है। श्री ललित किशोरी जी कहते हैं कि यह सब खेल हमें प्रेम ही खिलाता है।

१२ शब्दार्थ—जिनि—मत। लाड़िली—प्यारी राधिके। जमुना-पुलिन—जमुना तट। निसिदिन—रात्रि दिन। निरखौं देखूँ।

भावार्थ—प्यारी राधिके! अब आप विलम्ब न करें। जरा अपनी कृपा दृष्टि से आप मेरी ओर भी देखें जिससे मैं यमुना के किनारे और घने जंगल की गलियों में सुबह-शाम को घूमा करूँ। रात-दिन मैं युगल (राधाकृष्ण) के रूप-माधुर्य को देखता रहूँ और प्रेमी जनों से भेंट करता रहूँ। श्री ललितकिशोरी जी कहते हैं कि वृन्दावन में वास करने के लिये मेरा तन-मन आकुल है।

१३ शब्दार्थ—मधुप = भौंरा। बन-बीथिन = जंगल की गलियाँ। सीथ = पके हुए चावल का एक-एक दाना। मम = मेरी।

भावार्थ—मैं वृक्ष की कोयल बनकर यमुना के तट पर और सघन कुञ्जों में कूक मचाऊँ और श्रीकृष्ण जी के चरण-कमल का भ्रमर बनकर मैं मधुर-मधुर गुंजार करूँ। वृन्दावन की

गलियों में मैं कुत्ता होकर डोलूं और प्रेमी भक्तों का बचा हुआ जूठन खाऊँ। श्री ललितकिशोरी जी कहते हैं कि मेरी यही इच्छा है कि मैं ब्रज-रज को छोड़कर अन्यत्र कहीं न जाऊँ।

टिप्पणी—'कूकर ह्वै बन बीथिन डोलौं, बचे सीथ रसिकन के खाऊँ' मे भक्त कवि के उत्कृष्ट मनोराज्य का हमे दर्शन होता है।

१४. शब्दार्थ—बारौमासा = बारहमासा। बेकल = व्याकुल। जुगुल-रूप-रस = श्रीराधा-कृष्ण के सौन्दर्य का रस।

भावार्थ—हे प्रभो! हमारी यही इच्छा है कि आप हमें वृन्दावन का निवास प्रदान करे। जहाँ यमुना के तीर पर माधुर्य रस से ओत-प्रोत होकर प्रेमी-जन निवास करते हैं और जहाँ पर परम मनोहर सेवा-कुंज है जिसमें बारहों मास एक रस का भाव विद्यमान रहता है। श्रीललितकिशोरी जी कहते हैं कि हमारा हृदय युगल-सौन्दर्य के रस का प्यासा है।

१५ शब्दार्थ—राधारमन—श्रीकृष्णजी। छके रहत—मस्त रहते है। दसनन—दाँतों। निस दिन—रात्रि दिन। हिय पर—हृदय पर।

भावार्थ—इन साधुओं के सग में मनोहर राधारमन श्री कृष्ण जी रहा करते हैं। ये साधुजन प्रभु के ललित माधुर्य की शोभा मे मस्त रहते हैं और किसी से कुछ भी नहीं चाहते। श्रीकृष्ण के चितवन, और हँसन की चोट ये रात्रि-दिन अपने हृदय पर सहन करते हैं। श्रीललितकिशोरी जी कहते है कि ये साधुजन चोटों से बचने के लिये बहाना नहीं करते और न ये चोटों से अपने को बचाने का डंडा ही हाथ में रखते हैं।

१६. शब्दार्थ—हितू=प्रेमी । छकावै=मस्त करे । कालिन्दी=यमुना ।

भावार्थ—जो वृन्दावन की धूलि का दर्शन करावै वही हमारा प्रेमी है, जो राधाकृष्ण की सुन्दर शोभा में हमें मस्त करे, वही हमारा प्यारा प्रियतम है, जो यमुना के जल का पान करावे वही पूर्ण उपकारी है। श्री ललितकिशोरी कहते हैं कि जो युगल सरकार श्रीकृष्ण से मिलावे वही हमारे नेत्रों का तारा है।

१७. शब्दार्थ—विहतर=अपेक्षाकृत अच्छा। सचु=सुख।

भावार्थ—घर में रहने और रत्नों से प्यार करने की अपेक्षा वन-वन में फिरना हमें कहीं अच्छा लगता है। हमें लता के नीचे पड़े रहने में ही सुख मिलता है, सेज तो हमें बिलकुल नहीं अच्छी लगती। सिर के नीचे हाथ रखकर सोना अत्यन्त भला ज्ञात होता है, तकिया का विचार हमारे हृदय में आता ही नहीं। श्री ललित किशोरी जी कहते हैं कि प्रभु का नाम जप-जपकर ही मन को शान्ति मिलती है।

१८ शब्दार्थ—पवन पान करि=हवा पीकर। भावे हैं=अच्छा लगता है।

भावार्थ—हे सखी ! वायु पीकर हम महीनों रह जाते हैं। हमें अन्न बिलकुल अच्छा नहीं लगता। हम न तो पानी पीकर अपना समय व्यर्थ में काटते हैं और न रात-दिन सोते ही रहते हैं प्रत्युत बैठकर समाधि लगाते हैं। यदि हमारी पलक क्षण भर के लिए खुल गई तो हाथ में बीन लेकर बजाते हैं। श्री ललितकिशोरी जी कहते हैं कि यमुना के किनारे बैठकर भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों का गायन करते हैं।

१६ शब्दार्थ—झूमि-झूमि=झूम-झूमकर। मातंग=हाथी। गोखुर रेनु=गौओं के खुरो से उठी हुई धूलि। दामिनी=बिजली। दसनावलि=दाँतों की पंक्ति। मुक्तमाल=मोतियों की माला। बग-पाँति=बगलों की कतार।

भावार्थ—श्रीकृष्ण जी विचित्र प्रकार की लटकनि बनाये हुए आते हैं। झूम-झूम कर पृथ्वी पर पैर रखते हैं, उनकी मंद-मंद चलने की गति हाथी को भी लजाती है। गौओं के धूलि से उनका अंग-अंग शोभित है, इसे देखकर उपमा के नेत्र भी संकुचित हो जाते हैं। यह शोभा ऐसी प्रतीत होती है मानो नव मेघ पर शोभा का रस बरसाने वाली कोई हल्की बदली छा गयी हो। श्रीकृष्ण के मुख खोलते ही दंत-पक्ति की चमक रस में बिजली की सी कांति मुख भर में प्रकाशित कर देती है। जिस प्रकार मेघ रह-रहकर शब्द करता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण जी भी मधुर-मधुर वशी बजाते हैं। इनके वक्षस्थल पर मोतियों की माला ऐसी शोभा देती है मानों बगुलो की पंक्ति हो। श्रीकृष्ण के गालो पर गुलाल के छीटे ऐसे ज्ञात होते हैं मानों इन्द्रवधूटी शोभा दे रही हो। कटि की किंकिणी की रुनन झुनन-ध्वनि ऐसी लगती है मानों हंस चहचहा रहे हो। श्री कृष्ण की अलके बिथुरी हुई हैं, शरीर धूल-धूसरित है मानो पृथ्वी पर लोटकर आ रहे हो। पीत वर्ण की कछनी पर सुन्दर जाँघिया शोभा देता है, इस पर उन्होने दुपट्टा खींचकर बाँध लिया है। पीताम्बर की फहरानि, मुकुट की शोभा और नटवर वेप में उनका सजना बहुत सुन्दर लगता है। श्री ललितकिशोरी जी कहते हैं कि मुख मे पान का बीड़ा होने से उनका अधर लाल रंग से रच उठता है, ऐसे लाल अधर पर जब नाक का बुलाक मधुर-

मधुर बात करते समय तिरछे हिल ढंग से उठता है तो मुख से फूल झड़ता सा प्रतीत होता है।

टिप्पणी—इस पद में श्रीकृष्ण का रूप वर्णन किया गया है।

२० शब्दार्थ—नंदकिसोर=नंद के पुत्र श्रीकृष्णजी। बनमाली=श्रीकृष्ण। आली=प्यारी। निर्त=नृत्य

भावार्थ—श्रीकृष्णजी की मुड़-मुड़कर देखने की क्रिया चित्त को चुराती है। श्रीकृष्ण का ठुमक ठुमक कर चलना, हेरा देकर गायों का बुलाना, मन में पुलकित होना, चौंकनी गायों को हाथ से सहलाना और थपकी देना, प्यारी गायों का धौरी, धूमरि आदि नाम ले-लेकर बुलाना, बिचकने वाली गायों को झपट करके तुरन्त चुचकारना और 'हूँ हूँ रँगीली रहो' कहकर उन्हें ठहराना, छबीली बछियों का रास्ते में ही उनके पास आकर झुक कर दूध पीना तथा उनका चक्करदार नृत्य करना और बीच में रसीली तान भरना तथा कभी गाय की पीठ से उढ़ककर ठिठकते हुए देखना और मधुर ढंग से सीटी बजाना आदि श्रीकृष्णजी की क्रियाएँ मन को मोह लेती हैं।

२१ शब्दार्थ—पछितैहो—पछताओगे। आनन्दकंद=श्रीकृष्ण।

भावार्थ—ऐ मन! बिना भजन किए तुम्हें पछताना पड़ेगा। कमल नेत्र भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों पर ध्यान दिये बिना धन-सम्पत्ति कुछ भी काम नहीं आयेगी। यह संसार देखने मात्र के लिए साथी है, माता पिता आदि सभी अपने सुखों में मग्न रहते हैं। श्री ललितकिशोरी जी कहते हैं कि बिना

आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण को पहचाने सांसारिक प्रपंच नहीं मिट सकता।

२२ शब्दार्थ—मुसाफिर=यात्री। सुखनीद=सुख की नींद। त्यागि दै=छोड़ दो। मंजिल=यात्री के रुकने का स्थान। भूरि=बहुत। कूरमति=दुर्बुद्धि।

भावार्थ—ऐ जीव रूपी यात्री! अब रात्रि थोड़ी ही शेष है। तू जाग और अपनी मीठी नींद को छोड़। यहाँ (आत्म-ज्ञान रूपी) वस्तु की चोरी होती है। तेरी मंजिल दूर है और संसार-सागर बहुत बड़ा है इसलिए हे दुर्बुद्धि! तू मेरा कहना मानकर प्रभु से डर, उनसे बरजोरी न कर।

२३ शब्दार्थ—कंचन तन=सोने जैसा शरीर। धाम=घर।

भावार्थ—सोने जैसा शरीर पाने से क्या लाभ, यदि इस के द्वारा कोमल कमल के पत्तों से नेत्रों वाले भगवान का भजन नहीं किया और दुखों को नष्ट करने वाले भगवान का ध्यान हर्षित होकर नहीं किया। यदि अपना तन-मन-धन उन्हें अर्पित नहीं किया और हृदय से भगवान के गुणों का गान नहीं किया; यौवन, धन, स्वर्ण और भवन ये सब मिथ्या हैं, इनमें व्यर्थ ही आयु गँवाना है। गुरुजनों के गर्व में फूले हुए, हरि-विमुख जीवों के कुसंग में पड़े हुए तथा आत्मानन्द रूपी धन को भुलाए हुए इधर उधर घूमने से हृदय की जलन नहीं जा सकती। इसलिए तो हृदय में चिन्तामणि लाने की आवश्यकता है।

२४ शब्दार्थ—[illegible]=प्यारा। डगर=राह। [illegible]।

भावार्थ—कोई प्यारे कन्हैया की राह [illegible] है। जिसने

नेत्र कमल सदृश्य हैं तथा जिसकी भृकुटि और अलक टेढ़ी है, उस श्रीकृष्ण की कथा मेरे कानों में कोई सुना दे। श्रीललित किशोरी जी कहते हैं कि मेरे और उसके चित्त के जोड़ को कोई मिला दे। मेरा शरीर और मन जिसके रंग में रँगा हुआ है उस परमात्मा की कोई हमें झलक दिखा दे।

२५ **शब्दार्थ**—वीथिन=गलियाँ। विगसित=खिली हुई। मल्ली=मल्लिका।

भावार्थ—हे राधाकृष्ण! आप से हमारी इतनी प्रार्थना है कि वृन्दावन की इन गलियों में धीरे-धीरे चलिए। यहाँ मल्लिका जूही और निवारी के पुष्प खिल रहे हैं। आपके पास में खड़े ये सुन्दर निकुंज और वृक्ष आपके सौन्दर्य-रस के उपासक हैं। इसलिए इसी क्षण आप शोभा रूप होकर इन सब के हृदय-कमल में बसें। मैं आप पर बलिहार होता हूँ।

२६ **शब्दार्थ**—नासा=नाक । नीको ध्यान कियो=अच्छा ध्यान लगाया। कौन काज=किस कारण

भावार्थ—योगिनी का छद्म-वेष धारण करने पर कवि कृष्ण से पूछता है कि ऐ मोहन! तुमने क्यों वैराग्य ले लिया? नाक मूँद कर और हाथ में माला लेकर आपने अच्छा ध्यान लगाया। आपने योगी बनकर भिक्षा ग्रहण की यह अच्छा किया और हम लोगो को अच्छा प्रसाद दिया। भला बताइए, आपने किस कारण यह कपट गूदरी लिया है।

२७ **शब्दार्थ**—अवास=शून्य। टुक=जरा। ध्याऊँ=ध्यान करूँ।

भावार्थ—मैं श्याम रूप में तेज तत्व और अधर-रस मे जल तत्व को मिला दूँ। मुरली के छिद्रों मे आकाश तत्व

मिलाकर प्यारे के प्राणों में अपने प्राण (वायु तत्व) मिला दूँ। ऐ सखी ! यदि गोधूलि-मडित उनका मुख देखने पाऊँ तो पृथ्वी अंश को उसमें मिलाकर मैं प्रियतम का ध्यान लगाऊँ।

टिप्पणी—इसमें,श्रीकृष्ण की मूर्ति मे पंचतत्वो (पृथ्वी, जल तेज, वायु और आकाश) का समावेश किया गया है। आकाश का गुण शब्द है और मुरली के छिद्रों से शब्द निकलते भी हैं इसलिए 'मुरलि अकास मिलाय' कहा गया है। शेप अन्य तत्वों का भाव स्पष्ट है।

२८ शब्दार्थ—अँगुरी = उँगली । चपल = चंचल।

भावार्थ—ऐ श्याम ! मेरी इच्छा है कि मै तेरे संग में मुरली बजाती रहूँ। प्यारे ! आपकी ही भाँति मुरली के सब छेदों पर अपनी चञ्चल उंगली चलाती रहूँ। मैं पचम, ऋषभ और निषाद स्वरो तक आपके सङ्ग मे टीप लगाती रहूँ और आपको ईमन, काफी व सोरठ राग गाकर सुनाती रहूँ।

२६ शब्दार्थ—निरमोही = मोह न करने वाले। बटोही = पथिक, यात्री।

भावार्थ—ऐ निर्मोही ! तू अपनी छवि का दर्शन करा जा। श्याम के विरह रूपी मेघ के लिए हमारे कान चातकी बने हुए हैं, इसलिए इनको तू अपनी मधुर मुरली सुना जा। ललित किशोरीजी कहते हैं कि मेरे नेत्र रूपी चकोरो को तू अपने मुख-चंद की द्युति दिखा जा। मेरे ये प्राण तेरे कारण बटोही होने वाले हैं, दया करके इस रूठे हुए यात्री को तू मना जा।

३० शब्दार्थ—वृन्दाविपिन = वृन्दावन । अरविन्द = कमल। कलित = सुन्दर। कुंज = निकुंज । अली = भ्रमर । राजही = शोभा देती हैं। भ्राजही = शोभा देती हैं। छौना =

बच्चे, शिशु । लजै=लज्जित होते हैं । भामिनी=स्त्री । जामिनी=रात्रि।

भावार्थ—सखी ! मैं बलि-बलि जाती हूँ । वृन्दावन में चलकर दो चन्द्रमा (राधा और कृष्ण का मुख-चन्द्र) का दर्शन कीजिए । श्री राधाकृष्ण के मुख-कमल की सुन्दरता देखकर अपने नेत्रों से उनका रूप-रस पीजिए। जहाँ सुन्दर कोमल माधवी पर लताएँ झुककर झूम रही हैं वहाँ सुन्दर कुंजों के बीच भ्रमर गुञ्जार करते हैं और छवि-पुञ्ज श्रीराधिका और श्री कृष्ण विश्राम करते हैं। विविध प्रकार की लताएँ सुमन चित्रित और पुष्पित सी होकर झुकी हुई हैं। पक्षी गण दम्पति राधा कृष्ण का नाम रटते हुए पत्रों और पुष्पों पर शोभा देते हैं। वहाँ यमुना का स्वच्छ जल हिलोरें मारता है और यमुना तट के मन को रमणीय बनाता है। यहाँ मन्द, सुगन्ध और शीतल वायु चलती है और अत्यन्त शोभा को प्राप्त होती है। सुन्दर घटाएँ घिर आती हैं और चारों ओर बिजली चमकने लगती है। इस समय वृक्षों के नीचे नवनागरी गोपियों का चंचल मुख-चन्द्र चमकता है। इन गोपियों के मध्य में सुन्दर युगल दम्पति राधा-कृष्ण सुन्दर गलबाहीं दिये हुए झुकते और झूमते हैं. उनके नेत्र मत्त रहते हैं, उनके अंग-अंग माधुर्य रस का पान किये से दिखते हैं। सुन्दर नागर और नागरी आँख से आँख लड़ाकर हाव-भाव प्रदर्शित करते हुए नाचते हैं। दोनों संकेतों द्वारा नाना प्रकार के भाव प्रदर्शित करते हैं और अंगों को मोड़कर गति लेते हैं। रास करते समय वेणी में लगे हुए पुष्प झड़ पड़ते हैं मानों वे अपने को दंपति पर निछावर करते हैं। ताता-ताता, थेई-थेई शब्दों के साथ घुँघरू झनकारते हैं। श्रीकृष्णजी अपने अधरों पर मनोहर मुरली को धर कर धीरे-धीरे बजाते हैं और

मोहिनी राधिका जी अपना मन मिलाकर मंद-मंद मलार गाती हैं। सुन्दरी गोपियाँ ताल देती हैं और मधुर धुनि से बीन बजाती हैं। कटि में कसी हुई किंकिणी के गम्भीर शब्द को सुनकर हंस के शिशु लज्जित होते हैं। नवतरुणियों और सुन्दर गोप-बंधुओं ने अपना हाथ जोड़कर एक सुन्दर मण्डल बनाया है इसके बीच श्रीराधिका और श्रीकृष्ण नृत्य करते हैं। यह रात्रि धन्य है जिसमें राधा-कृष्ण के मुख-चन्द की चाँदनी दशों-दिशाओं में छा जाती है और चन्द्रमा की प्रभा श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर पड़ी हुई मणियों की माला में शोभित होती है। ललितकिशोरीजी कहते हैं कि झरोखों में होकर उनके मुख-चन्द्र की जो शोभा दिखायी पड़ती है वह मेरे नेत्रों में नित्य बसे।

टिप्पणी—इसमें प्रकृति और रास का वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट हुआ है।

३१ शब्दार्थ—ह्वै हौं=होऊँगा। महि=में। लाड़िले=प्यारे। बिहरैंगे=घूमेंगे।

भावार्थ—श्री ललित किशोरीजी कहते हैं कि मैं कब वृन्दावन के कदम कुंज में होऊँगा जिसकी छाया में प्यारे कन्हैया भ्रमण करेंगे।

३२ शब्दार्थ—कर=हाथ। भावते=प्यारे।

भावार्थ—मैं कब वृन्दावन की पुष्प-वाटिका में पुष्प बनूँगा जिसे प्यारे अपने दोनो कोमल करों से चुनकर अपने दुकूल पर रखेंगे।

३३ शब्दार्थ—त्रिविधि समीर=शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु।

भावार्थ—मैं कालीदह-तट का कब शीतल, मन्द और

सुगन्धित पवन बनूँगा और उड़कर युगल अंगों का स्पर्श करूँगा उस समय मेरे द्वारा उनका नवीन चार आकाश में उड़ेगा।

३४ शब्दार्थ—श्रीवन = वृन्दावन। जीवनमूरि = जीवन के मूल (सर्वस्व)।

भावार्थ—मेरा शरीर कब राख होकर वृन्दावन की गलियों की धूलि में मिल जायगा और इसमें मेरे जीवन के सर्वस्व राधा-कृष्ण का चरण-कमल कब पड़ेगा।

३५ शब्दार्थ—गहवर—सघन वन।

भावार्थ—मैं कब सघन वृन्दावन की गलियों का चकोर बनकर फिरूँगा और नागरी श्रीराधिकाजी तथा नवलकिशोर श्रीकृष्णजी के मुख-चन्द्र का दर्शन करूँगा।

३६ शब्दार्थ—कालिन्दी कूल = यमुना तट। लाड़िले = प्यारे। डारि = डालकर।

भावार्थ—श्रीललितकिशोरी जी कहते हैं कि मैं कब कालिंदी तट के वृक्ष की शाखा बनूँगा जिसमें प्यारे श्रीकृष्ण झूला डालकर झूलेंगे।

३७ शब्दार्थ—निहचें = निश्चय रूप से।

भावार्थ—ऐ सखी! श्यामा (श्री राधिका) के चरणों को दृढ़ता से पकड़, इसके द्वारा श्याम निश्चय रूप से मिल जायँगे। यदि तुझे मेरी बात पर विश्वास नहीं होता तो तू प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देख ले कि 'श्यामा' शब्द के बीच में 'श्याम' शब्द किस प्रकार छिपा हुआ है। (तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्णजी राधिकाजी के प्रेम में ही सन्निहित रहते हैं इसलिए श्रीराधिकाजी की ही उपासना करनी चाहिये)